एमपीएचडी-01

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

ऐतिहासिक शोध

भाषा वैज्ञानिक शोध

पाठालोचन

शोध प्रविधि

सांस्कृतिक शोध

शैली वैज्ञानिक शोध

समाजशास्त्रीय शोध

तुलनात्मक शोध

मनोविश्लेषणात्मक शोध

शोध का स्वरूप एवं प्रविधि

एमपीएचडी–01

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

शोध का स्वरूप और प्रविधि

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक एवं समन्वयक

संयोजक

प्रो. (डॉ.) कुमार कृष्ण

विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग

हिमाचल विश्वविद्यालय, शिमला

समन्वयक

डॉ. मीता शर्मा

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

- **प्रो. (डॉ.) जवरीमल पारख**
  अध्यक्ष, मानविकी विद्यापीठ
  इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
- **प्रो. (डॉ.) नन्दलाल कल्ला**
  पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
  जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
- **डॉ. पुरुषोत्तम आसोपा**
  पूर्व प्राचार्य
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
- **प्रो. (डॉ.) सुदेश बत्रा**
  पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **डॉ. नवलकिशोर भाभड़ा**
  प्राचार्य
  राज. कन्या महाविद्यालय, अजमेर

संपादन एवं पाठ्यक्रम-लेखन

संपादक

डॉ. हरिचरण शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर (सेवानिवृत्त), हिन्दी विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

पाठ लेखक		इकाई संख्या
डॉ. टी.सी. गुप्ता पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग **राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा**	–	1, 4
प्रो. (डॉ.) नन्दलाल कल्ला हिन्दी विभाग **जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर**	–	2
डॉ. मीता शर्मा सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**	–	3
प्रो. एम. पी. शर्मा विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग **जामिया मिलिया इस्लामिया केन्द्रीय विश्वविद्यालय, नई दिल्ली**	–	6
डॉ. महावीर प्रसाद शर्मा सेवानिवृत्त, उपाचार्य **राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाड़मेर**	–	7

- **प्रो. (डॉ.) सुरेन्द्र दुबे** – 8
  हिन्दी विभाग
  गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उत्तरप्रदेश)
- **डॉ. रमेश रावत** – 5, 9
  रीडर, हिन्दी विभाग
  अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)
- **प्रो. दुर्गाप्रसाद गुप्ता** – 10
  हिन्दी विभाग
  जामिया मिलिया इस्लामिया केन्द्रीय विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
- **डॉ. देवेन्द कुमार गुप्ता** – 11
  प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
  वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान
- **डॉ. नन्दकिशोर भाभड़ा** – 12
  प्राचार्य
  राजकीय महिला महाविद्यालय, अजमेर
- **डॉ. पुरुषोत्तम आसोपा** – 13
  पूर्व प्राचार्य
  राजकीय महाविद्यालय, सरदारशहर (चुरू)
- **डॉ. प्रेमप्रकाश भट्ट** – 14, 15
  एसोसिएट प्रोफेसर (सेवानिवृत्त)
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो. (डॉ.) सत्यकाम** – 16, 17
  सोफिया विश्वविद्यालय, बुल्गारिया

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच	प्रो. (डॉ.) अनाम जैतली	प्रो. (डॉ.) पी. के. शर्मा
कुलपति	निदेशक	निदेशक
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	संकाय विभाग	पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन जुलाई 2008

इस सामग्री के किसी भी अंश को व.म.खु.वि. कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व.म.खु.वि. कोटा के लिये कुलसचिव व.म.खु.वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित
मैसर्स हरिहर प्रिण्टर्स, जयपुर द्वारा 500 प्रतियाँ मुद्रित जुलाई–2008

एमपीएचडी–01

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

खण्ड–क

शोध का अर्थ, स्वरूप व प्रक्रिया

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई–1	शोध की परिभाषा व स्वरूप	3–16
इकाई–2	शोध की प्रक्रिया भाग–1 विषय निर्वाचन, संकलन तथा संदर्भ लेखन	17–27
इकाई–3	शोध की प्रक्रिया भाग–2	28–57
इकाई–4	शोध और आलोचना	58–69

खण्ड–ख

शोध प्रविधि के प्रकार भाग–1

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई–5	ऐतिहासिक शोध–प्रविधि	70–82
इकाई–6	तुलनात्मक शोध प्रविधि	83–95
इकाई–7	पाठालोचन शोध प्रविधि	96–126
इकाई–8	भाषा वैज्ञानिक / शैली वैज्ञानिक, शोध प्रविधि	127–142

खण्ड–ग

शोध प्रविधि के प्रकार भाग–2

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई–9	समाजशास्त्रीय शोध प्रविधि	143–155
इकाई–10	सांस्कृतिक शोध प्रविधि	156–165
इकाई–11	मनोविश्लेषणात्मक शोध प्रविधि	166–179

खण्ड–घ

शोध सामग्री संकलन व लेखन पद्धति

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई–12	विषय का चयन, वर्गीकरण व रूपरेखा	180–197
इकाई–13	सामग्री–संकलन	198–211
इकाई–14	प्रस्तुति की भाषा शैली (लघुशोध प्रबन्ध)	212–221
इकाई–15	उद्धरण, संदर्भ, अनुक्रमणिका तथा सहायक ग्रन्थ सूची	222–231

खण्ड–ड.

शैक्षिकी एवं भाषा प्रौद्योगिकी

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई–16	कम्प्यूटर एवं अन्य प्रौद्योगिकी	232–242
इकाई–17	इन्टरनेट का उपयोग	243–253

खण्ड–परिचय

परिवर्तन की प्रक्रिया निरन्तर प्रत्यक्ष – अप्रत्यक्ष रूप से गतिमान रहती है । जब यह गतिमान होती है तब युगधर्म के संदर्भ में शोध की आवश्यकता होती है । शोध–कार्य सरल नही है, उसमें शोधक को सम्बन्धित कृति या विषय के अन्तर में प्रवेश करके मूल्यवान तथ्यों को उद्घाटित करना है । एम.फिल. की परीक्षा में प्रथम प्रश्न पत्र के रूप में शोध का स्वरूप व प्रविधि को स्थान दिया गया है । इस पुस्तक मे प्रश्न पत्र की पाठ्य सामग्री का विभाजन पाँच खण्डों (क, ख, ग, च, और ड.) में किया गया है ।

खण्ड 'क' (शोध का अर्थ, स्वरूप व प्रक्रिया) में विवेचन – विश्लेषण के क्रम में चार इकाईयाँ लिखी गई है । प्रथम इकाई में **शोध की परिभाषा व उसके स्वरूप** को विवेचित किया गया है तो द्वितीय व तृतीय इकाई में **शोध की प्रक्रिया–विषय–निर्वाचन, सामग्री–संकलन, चयन, वर्गीकरण, विश्लेषण, संदर्भ – लेखन, उद्धरण व पाद टिप्पणी** आदि का विवेचन किया गया है । चतुर्थ इकाई में **शोध और आलोचना** के सम्बन्ध और अन्तर को विश्लेषित करने का प्रयत्न किया गया है ।

खण्ड 'ख' (शोध प्रविधि के प्रकार भाग–1) में भी चार इकाईयाँ हैं । इनमें इकाई 5, 6, 7, और 8 में क्रमशः **ऐतिहासिक शोध–प्रविधि, तुलनात्मक शोध–प्रविधि, पाठालोचन शोध प्रविधि और भाषा – वैज्ञानिक/शैली वैज्ञानिक शोध प्रविधि** पर प्रकाश डाला गया है। खण्ड 'ग' (शोध प्रविधि के प्रकार भाग–2) में शोध प्रविधि के प्रकार चर्चित व विवेचित हुए हैं । इसमें इकाई संख्या 9,10 तथा 11 में क्रमशः **समाजशास्त्रीय शोध प्रविधि, सांस्कृतिक शोध प्रविधि तथा मनोविश्लेषणात्मक शोध प्रविधि** पर विचार करते हुए उपयोगी निष्कर्ष दिए गए हैं।

खण्ड'घ' (शोध सामग्री संकलन व लेखन पद्धति) मे सम्बधित चार इकाईयाँ प्रस्तुत की जा रही है। इकाई संख्या 13 में **विषय का चयन, वर्ग्रीकरण व रूपरेखा,** इकाई संख्या 14 में **सामग्री–संकलन**, इकाई संख्या 15 में **प्रस्तुति की भाषा–शैली** और इकाई 16 में **उद्धरण, संदर्भ, अनुक्रमणिका तथा सहायक ग्रन्थ सूची** किस प्रकार प्रस्तुत की जानी चाहिए इसका विशद् विवेचन किया गया है। खण्ड 'ड.' (शैक्षिकी व भाषा प्रौद्योगिकी) में दो इकाईयों को स्थान दिया गया है। इकाई संख्या 17 में **कम्प्यूटर व अन्य प्रौद्योगिकी** तथा इकाई संख्या 18 में **इन्टरनेट का उपयोग** जैसे विषय पर सामग्री प्रस्तुत की गई है।

इस प्रकार सम्पूर्ण प्रथम प्रश्न प्रत्र के अन्तर्गत सत्रह इकाईयों को समाहित करते हुए पूरे प्रश्न पत्र के लिए अपेक्षित और अनिवार्य सामग्री जुटायी गई है। सभी आलेख विषय के विद्वानों, सुधी समीक्षकों व चिन्तकों द्वारा लिखे गए है। यह सामग्री एम. फिल के छात्रो के लिए तो उपयोगी है ही. साथ ही साथ उनके लिए भी परम उपयोगी है जो शोध कार्य करना चाहते हैं।

इकाई–1 शोध की परिभाषा व स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 शोध की परिभाषा

1.2.1 शोध की व्युत्पत्ति

1.2.2 शोध के विभिन्न पर्यायवाची शब्द

1.3 शोध की उपयोगिता

1.4 शोध का उद्देश्य

1.5 शोध का स्वरूप

1.5.1 शोध के प्रकार

1.5.2 शोध की प्रकृति

1.5.3 शोध की विशेषताएँ

1.6 शिक्षा एवं मनोविज्ञान में शोध की आवश्यकता एवं महत्त्व

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य

"शोध का स्वरूप" व प्रविधि की यह पहली इकाई है। इसमें आप शोध का अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप का अध्ययन करने जा रहे हैं। अनुसंधान एक ऐसा कार्य है, जिसे कठोर परिश्रम, विवेक, एकाग्रता, एकनिष्ठता, गम्भीर अभिरूचि आदि के आधार पर सम्पन्न किया जाता है। इसके फलस्वरूप महत्त्वपूर्ण नवीन ज्ञान या ज्ञात तथ्यों का नवीन आख्यान मानव जाति को प्राप्त होता है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- शोध के शब्दार्थ एवं भावार्थ को समझ सकेंगे,
- शोध के उद्देश्य को जान सकेंगे,
- शोध की उपयोगिता से परिचित हो सकेंगे,
- शोध के विविध प्रकारों को समझ सकेंगे।

हमने प्रस्तुत इकाई का अध्ययन_विश्लेषण इन्हीं प्रश्नों और बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए करने का प्रयास किया है, अतः इस पाठ का अध्ययन ध्यानपूर्वक करें।

1.1 प्रस्तावना

कारण–कार्य अथवा कार्य–करण श्रृंखला के सहारे ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ने की प्रक्रिया को अनुसंधान कहा जाता है। अनुसंधान जीवमात्र की स्वाभाविक प्रक्रिया है। तुच्छ से तुच्छ कीटाणु भी अपनी घ्राणेन्द्रियों के सहारे खाद्य–पदार्थ की प्राप्ति के लिए अनुसंधान करता है, किन्तु यह शक्ति मनुष्य में अपेक्षाकृत अधिक बलवती तथा उन्नत है। यह मनुष्य की जिज्ञासा का साधारण परिणाम है। प्रगति की ओर अग्रसर होने के लिए अनुसन्धान एक माध्यम है। आज के मानव की चतुर्दिक प्रगति की आधारशिला ही उसकी अनुसंधान प्रवृत्ति है।

अनुसंधान–विश्लेषण की एक नियमित, विधिबद्ध तथा गहन वैज्ञानिक प्रणाली है। अनुसंधान में प्रायः नियमित ढांचा काम में लाया जाता है और अन्त में उसमें प्रयुक्त नियमों का निर्णय अथवा परिणाम सहित लेखा–जोखा देना होता है।

ज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान–कार्य अपरिहार्य हैं। ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में अनुसंधान का महत्त्व दिनों–दिन बढ़ता जा रहा है। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्रत्येक युग में नए तथ्य एवं नए विचार आविष्कृत हुए हैं। अनुसंधान का प्रयोजन वैज्ञानिक प्रणालियों द्वारा प्रश्नों के उत्तरों की खोज हैं । एकत्र तथ्यों की विश्वसनीयता, वैषयिकता एवं तार्किकता की जाँच के लिए वैज्ञानिक प्रणालियों को विकसित किया गया है।

प्रत्येक अनुसंधान किसी प्रश्न या समस्या को लेकर शुरू किया जाता है। क्यों, क्या, कैसे और कौन शब्दों को यदि हम अनुसंधान के प्राण कहें तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

1.2 शोध की परिभाषा

पृथ्वी पर मानव ही ऐसा प्राणी है जिसे बुद्धि का वरदान प्राप्त है। चूँकि बुद्धि ही जिज्ञासाओं के अंकुरित होने की भूमि है। यही कारण है कि अपनी विकास–यात्रा के प्रारम्भ होने से लेकर आज तक मानव मस्तिष्क में नाना प्रकार की जिज्ञासाएँ उत्पन्न होती रही है। इन जिज्ञासाओं के शमन के लिए किए गए प्रयासों को ही खोज का नाम दिया गया है। शोध की प्रकृति सत्य की खोज है और हम तथ्यों के आधार पर ही सत्य तक पहुँच सकते हैं। विविध तथ्यों की व्याख्या करना सत्य तक पहुँचने का साधन है। खोज का परिष्कृत और प्रामाणिक रूप ही "शोध" है।

1.2.1 शोध की व्युत्पत्ति :

"शोध" शब्द तत्सम संज्ञा शब्द है जो "शुद्ध" धातु से व्युत्पन्न" हुआ है। शोध का अर्थ है – शुद्ध करना, साफ करना, स्वच्छ करना, रूप देना आदि। संस्कृत कोष में इस शब्द का प्रयोग प्रामाणिक, शुद्ध या परिष्कृत करने के अर्थ में दिया जाता है।

"शोध" शब्द अंग्रेजी के "रिसर्च" का पर्याय है। जिस प्रकार अंग्रेजी कोष में रिसर्च के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग किया गया है, उसी प्रकार हिन्दी कोष में भी शोध के लिए अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं। जैसे : अन्वेषण, अनुसंधान, गवेषणा, जाँच–पड़ताल, प्रयत्न, आयोजना अनुशीलन, परिशीलन, खोज आदि।

"शोध" शब्द में ज्ञान की शुद्धि का भाव रहता है। शोधकर्ता विस्मृत ज्ञान को पुनः प्रकाश में लाकर उसे शुद्ध रूप से प्रस्तुत करता है। ज्ञान की क्रमबद्धता और शुद्धि तथा उसके

सत्य का जीवनोपयोगी पक्ष शोधकर्ता की दृष्टि में रहता है।

"द न्यू सेन्चुरी डिक्शनरी" के अनुसार, "तथ्यों या सिद्धान्तों के लिए किया गया अन्वेषण, जाँच–पड़ताल अनुसन्धान कहलाता है।

विनयमोहन शर्मा के अनुसार, "शोध एक स्वतः प्रवाहमान प्रक्रिया है, जिसका आदि तो है पर अंत नहीं।"

आचार्य विश्वनाथ मिश्र के अनुसार, "किसी विषय में सच क्या है? क्या सच नहीं, इसका विश्लेषण करके एक परिणाम तक पहुँचने के लिए हम जो प्रयत्न करते हैं, वह शोध ही है।"

डॉ. शशिभूषण सिंहल के अनुसार, "अनुसंधान या शोध विषय में निहित तन्त्र के उद्घाटन का विधिवत् प्रयत्न है।" शोध, खोज, अन्वेषण, गवेषणा, अनुसंधान आदि सभी हिन्दी में पर्यायवाची हैं, इसी को मराठी में "संशोधन" तथा अंग्रेजी में "रिसर्च" कहते हैं। शोध में सर्वथा नूतन सृष्टि का नहीं बल्कि अज्ञात का ज्ञात करने का भाव है। स्थूलतः ये सभी शब्द पर्याय ही माने जाते हैं, परन्तु संस्कृत में इनके अर्थों में सूक्ष्म अन्तर है।

1.2.2 शोध के विभिन्न पर्यायवाची शब्द

खोज : "खोज" की व्युत्पत्ति प्राकृत के "खोज्ज" से हुई है, जिसका अर्थ है, "पदचिन्ह"। खोज में निहित खोजी शब्द का प्रयोग चोरी इत्यादि का पता लगाने वाले के अर्थ में किया जाता है। "खोजी व्यक्ति" अथवा "खोजी कुत्ते" पदचिन्हों से चोरी के गन्तव्य तक पहुँच जाते हैं। खोजी के लिए ढूँढना, अज्ञात को ज्ञात करना, लापता का पता लगाना आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। 'खोज' शब्द की अर्थ व्यापकता सीमित है। किसी मौलिक एवं सर्वथा नूतन ज्ञान का निर्माण खोज का अन्तिम लक्ष्य नहीं है, केवल अज्ञात को ज्ञात बना देना मात्र खोज की कार्य सीमा है।

अन्वेषण : अन्वेषण का अर्थ है "खोज", किसी वस्तु अथवा तथ्य को ढूँढने का प्रयत्न। "अन्वेषण" शब्द अनु+एषण से बना है। जिसका सामान्य अर्थ है – पीछे लगने की इच्छा या खोज करने का कार्य। अंग्रेजी में अन्वेषण के लिए "डिस्कवरी" और "इन्वेन्शन" शब्द का प्रयोग किया जाता है। (इनमें प्रथम शब्द भौगोलिक खोज का सूचक है, जैसे, कोलम्बस ने अमेरिका की खोज की और जैम्स वाट ने रेल के इंजन की खोज या आविष्कार किया) साहित्य में अन्वेषण के कई अर्थ और कोटियाँ हो सकती हैं, जैसे – अज्ञात का ज्ञात, अनुपलब्ध की उपलब्धि।

गवेषणा : गो+एषण से बना "गवेषणा" शब्द खोज के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है।

अनुसंधान :अभी तक 'शोध' के पर्याय के रूप में आपने जितने भी शब्दों को समझा है, उन सबसे अधिक शोध के स्थानापन्न रूप में प्रयुक्त होने वाला शब्द 'अनुसन्धान' ही है। यही नहीं अनेक विद्वान तो 'अनुसंधान' को 'शोध' की तुलना में अधिक संगत और सार्थक शब्द मानते हैं।

'अनुसंधान' शब्द, अनु+सम्+धा+न से मिलकर बना है। 'धा' का अर्थ है धारण करना, रखना आदि। 'अनु' उपसर्ग है, जिसका अर्थ है, पीछे लगना, अनुसरण करना, पुनः करना आदि। 'संधान' का अर्थ है, खोजना, निश्चित करना, लक्ष्य केन्द्रित करना आदि। अतः अनुसंधान का शाब्दिक अर्थ है किसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर उसके पीछे लग जाना है।

शोध, अन्वेषण, गवेषणा, अनुसंधान, खोज, अनुशीलन, परिशीलन आदि विभिन शब्द शोध के व्यापक परिवेश को ही व्यक्त करते हैं। डॉ. तिलक सिंह के अनुसार विभिन्न विद्वानों ने अंग्रेजी में शोध के पर्याय विभिन्न नामों को स्वीकार किया है –

(अ) **डिस्कवरी –** 'डिस्कवरी' शब्द डिस+कवर+ई से बना है। 'डिस' विलोमार्थ है, 'कवर' का अर्थ है, आवरण या ढका हुआ, 'ई' प्रत्यय है। अतः डिस्कवरी का अर्थ है अनावरण करना अथवा ढके हुए को खोलना। 'शोध' में डिस्कवरी का अर्थ है गुप्त तथा अज्ञात तथ्यों को स्पष्ट करना।

(ब) **रिसर्च –** 'रिसर्च' रि+सर्च से बना है। 'रि' का अर्थ है पुनः 'सर्च' का अर्थ है 'खोजना', तलाशी लेना। इस प्रकार 'रिसर्च' का अर्थ है, बार–बार खोजना या तलाशी लेना। लेकिन बहुत से विद्यार्थी 'रिसर्च' का अर्थ हिन्दी रूपान्तर में 'अनुसंधान' मानते हैं।

(स) **डॉक्टरेट –** 'डॉक्टरेट' शब्द 'डॉक्टर' से निकला है। डॉक्टर का अर्थ है 'चिकित्सक'। लेकिन 'शोध' के क्षेत्र में इसका अर्थ हुआ उपाधि से अलंकृत व्यक्ति।

'डॉक्टरेट' का अर्थ है, शोध–उपाधि। इस प्रकार डॉक्टर वह व्यक्ति है जो विश्वविद्यालय परिधि में रहकर विश्वविद्यालय के नियमों का पालन करता हुआ शोध–उपाधि को प्राप्त करता है।

(द) **थीसिस –** 'थीसिस' का शाब्दिक अर्थ है – प्रतिज्ञा, विचार–तत्व, चिन्तन, अवधारणा आदि। शोध के क्षेत्र में इसका अर्थ है, वह शोध–प्रबन्ध जो शोधार्थी की एक निश्चित प्रतिज्ञा, चिन्तन, विचार–तत्व अथवा अवधारणा का परिणाम होता है।

(य) **पीएच.डी. –** 'पीएच.डी.' एक संक्षिप्त शब्द है, जिसका पूर्ण रूप है 'डॉक्टर ऑफ फिलोसफी'। 'फिलोसफी' का अर्थ चिन्तन है तथा 'डॉक्टर' का अर्थ चिन्तन प्रधान व्यक्ति। इस प्रकार अंग्रेजी के शोध व्यंजक शब्द 'शोध' प्रकृति के परिचायक हैं। इनसे शोध के तत्व ही नहीं, अपितु उसका स्वरूप भी स्पष्ट परिलक्षित हो जाता है।

इन विभिन्न शब्दों के स्थान पर 'अनुसंधान' शब्द का प्रयोग ही 'शोध' के पर्याय रूप में उचित संगत व सार्थक प्रतीत होता है। अनेक विद्वानों ने 'अनुसंधान' को शोध से अधिक सार्थक व सुसंगत मानते हुए इस प्रकार परिभाषित किया है :

एडवान्स्ड लर्नर्स डिक्शनरी ऑफ करेंट इंग्लिश के अनुसार, "किसी भी ज्ञान की शाखा में नवीन तथ्यों की खोज के लिए सावधानीपूर्वक किए गए अन्वेषण या जाँच पड़ताल को अनुसंधान की संज्ञा दी जाती है।

दी न्यू सेन्च्युरी डिक्शनरी के अनुसार, "तथ्यों या सिद्धान्तों की खोज के लिए किसी वस्तु या किसी के लिए सावधानीपूर्वक किया गया एक अन्वेषण, किसी एक विषय में किया गया निरन्तर सावधानीपूर्वक जाँच या अन्वेषण अनुसंधान कहलाता है।

वाल्टर ई. स्पार और राइनहार्ट जे. स्वेन्सन के अनुसार, "सत्य तथ्यों निश्चितताओं के लिए किया गया कोई विद्वतापूर्ण अन्वेषण अनुसंधान कहलता है।" रेडमेन एवं मोरी के शब्दों में, "नवीन ज्ञान प्राप्ति के व्यवस्थित प्रयत्न को हम अनुसंधान कहते हैं। डोनाल्ड और स्टीफेन्स के अनुसार, "अनुसंधान वस्तुओं, धारणाओं या प्रतीकों का ज्ञान की वृद्धि, सत्यता अथवा प्रामाणिकता के सामान्यीकरण के उद्देश्य से किया गया दक्षतापूर्ण कार्य है, चाहे वह ज्ञान, किसी सिद्धान्त के निर्माण के लिए हो अथवा कला के अभ्यास के लिए।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अनुसंधान, नवीन तथ्यों या सिद्धान्त की खोज के लिए संचालित किया जाता है। नवीन ज्ञान की प्राप्ति के लिए सावधानीपूर्वक जाँच, पर्याप्त अवलोकन एवं वस्तु विषयक अध्ययन करना होता है। इस पद्धति द्वारा जो नए तथ्य प्रकाश में आते हैं वे ज्ञानवृद्धि के लिए बड़े सहायक हैं एवं भविष्य में किए जाने वाले अनुसंधानों के लिए मार्गदर्शक हैं।

विभिन्न विद्वानों ने अनुसंधान को इस प्रकार परिभाषित किया है :

- डॉ. एम. वर्मा के अनुसार, "अनुसंधान एक बौद्धिक प्रक्रिया है जो नये ज्ञान को प्रकाश में लाती है अथवा पुरानी त्रुटियों एवं भ्रान्त धारणाओं का परिमार्जन करती है तथा व्यवस्थित रूप में वर्तमान ज्ञान–कोष में वृद्धि करती है।"
- सी.सी. क्रॉफोर्ड के अनुसार, "अनुसन्धान किसी समस्या के अच्छे समाधान के लिए क्रमबद्ध तथा विशुद्ध चिन्तन एवं विशिष्ट उपकरणों के प्रयोग की एक विधि है।"
- एल.वी. रेडमैन के अनुसार, "अनुसंधान नवीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक व्यवस्थित प्रयास है।" एडवान्स्ड लर्नर डिक्शनरी ऑफ करेन्ट इंग्लिश के अनुसार, "किसी भी ज्ञान की शाखा में नवीन तथ्यों की खोज के लिए सावधानीपूर्वक किए गए अन्वेषण या जाँच पड़ताल को अनुसंधान की संज्ञा दी जाती है।"

1.3 शोध की उपयोगिता

शोध या अनुसंधान का हर क्षेत्र में बहुत महत्त्व है। ज्ञान के क्षेत्र में तो इसकी सर्वाधिक आवश्यकता है, क्योंकि शिक्षा का मुख्य कार्य केवल ज्ञान का प्रसार करना ही नहीं है, बल्कि ज्ञान को शुद्धता की कसौटी पर कसना भी है। इस दृष्टि से ज्ञान के संशोधन में शोध या अनुसंधान की बहुत उपयोगिता है।

आलोचना को विश्वसनीय बनाने के लिए भी शोध उपयोगी है। शोध से रचना के मूल में छिपे आनन्द तक हम पहुँचते हैं। शोध के द्वारा ही आलोचना को किसी मर्म तक पहुँचाया जा सकता है।

साहित्य के विषय अनेक प्रकार के होते हैं। शोध के बिना इन सभी प्रकार के विषयों को समझना या समझा पाना सम्भव नहीं। समय की सीमा पार करके शोधकर्ता उन विषयों के रहस्य खोलता है और तभी उनका सही अर्थ प्रकाश में आता है, इसलिए भी शोध की उपयोगिता सिद्ध है। सामान्य भाषा साहित्य नहीं बन सकती। जब भाषा के विशेष प्रयोग की ओर कवि या लेखक बढ़ता है, तब उसके हर शब्द के पीछे उसके मन की एक भूमिका रहती है। शोधकर्त्ता इस भूमिका को स्पष्ट करता है और तभी पाठक एवं आलोचक भी रचना को सही ढंग से समझ पाते हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि शोध की साहित्य के क्षेत्र में भी बहुत उपयोगिता है।

1.4 शोध का उद्देश्य

अनुसंधान का सत्यान्वेषी और सत्य–संशोधन का कार्य इतना महत्वपूर्ण है कि उसके उद्देश्य को समझना कठिन नहीं रह जाता। शोध का मुख्य उद्देश्य वस्तुओं और उनसे सम्बन्धित ज्ञान को उपयोगी बनाना है, ताकि वे मानव जीवन में व्यवहार योग्य बन सकें। शोध एक निरन्तर प्रक्रिया है। जिस प्रकार ज्ञान की कोई सीमा नहीं होती है, उसी प्रकार शोध का भी कोई सीमित उद्देश्य या लक्ष्य नहीं होता। शोध किसी भी प्रक्रिया से होकर

गुजरे, उसका मूलभूत उद्देश्य मानव–कल्याण ही होता है।

टर्नी तथा रोब ने अनुसंधान के निम्नलिखित चार उद्देश्यों की चर्चा की है :

1. भूत तथा वर्तमान की घटनाओं की स्थिति ज्ञात करना।
2. चुनी गई घटनाओं की प्रकृति, गठन तथा प्रक्रिया की विशेषताओं को ज्ञात करना।
3. कुछ घटनाओं के विकास का इतिहास, होने वाले परिवर्तन तथा वर्तमान स्थिति को ज्ञात करना।
4. कुछ घटनाओं अथवा चरों के कार्य–कारण सम्बन्ध को ज्ञात करना।

इसके अतिरिक्त अनुसंधान के निम्नलिखित उद्देश्य भी हैं :

1. अनुसंधान का मुख्य उद्देश्य वैज्ञानिक विधियों द्वारा विशिष्ट प्रश्नों का उत्तर अथवा विशिष्ट समस्याओं का समाधान प्राप्त करना है।
2. नये ज्ञान को प्रकाश में लाना तथा पुरानी त्रुटियों एवं भ्रान्त धारणाओं का परिमार्जन करना।
3. अनुसंधान योग्य वस्तुओं, प्रत्ययों एवं संकेतों आदि को कुशलतापूर्वक व्यवस्थित करना।
4. इसका उद्देश्य सामान्यीकरण द्वारा विज्ञान का विकास, परिमार्जन और सत्यापन करना है।
5. शोध पुराने नियमों को युगानुरूप नवीनता प्रदान करता है।
6. शोध का परम उद्देश्य उन विचारों, भावों और अनुभवों का परिशोधन करना है, जो मानव जाति के कल्याण में सहभागी हो सकते हैं।
7. शोध निरन्तर अज्ञान को मिटाते हुए ज्ञान का प्रकाश फैलाने वाली प्रक्रिया है।
8. शोध का एक अन्य उद्देश्य है – वस्तुओं और उनसे सम्बन्धित ज्ञान को उपयोगी बनाना, ताकि वे मानव–जीवन में व्यवहार योग्य बन सके।
9. शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान के दो प्रमुख उद्देश्य हैं –
   (अ) सैद्धान्तिक रूप से ज्ञानवर्धन तथा
   (ब) उपयोगितावादी दृष्टि से अनुसंधान द्वारा प्रस्तुत सामग्री का जो विश्लेषण होता है और उससे जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं उनसे शिक्षा को लाभ पहुँचे।

1.6 शोध का स्वरूप

इस अध्याय के प्रारम्भ में शोध के अर्थ एवं विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं के अध ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अनुसंधान एक क्रमबद्ध वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसमें वर्तमान ज्ञान का परिमार्जन, उसका विकास अथवा किसी नये तथ्य की खोज द्वारा ज्ञान–कोष में वृद्धि की जाती है। उपर्युक्त अध्ययन के पश्चात् कहा जा सकता है कि अनुसंधान में वही शोधार्थी सफलता प्राप्त करता है जिसने –

- किसी नये सत्य की खोज की हो,
- पुराने सत्यों को नए ढंग से प्रस्तुत किया हो, तथा

- प्रदत्तों में व्याप्त नये सम्बन्धों का स्पष्टीकरण किया हो।

इस दृष्टि से अनुसंधान के क्षेत्र के अन्तर्गत केवल नए सत्यों एवं नये सिद्धान्तों की खोज ही नहीं होती है, वरन् पुराने सत्यों एवं पुराने सिद्धान्तों को नया कलेवर देना, पुराने नियमों को युगानुरूप नवीनता प्रदान करना, प्रदत्तों एवं तथ्यों का नये सिरे से स्पष्टीकरण करते हुए उनमें व्याप्त अन्तर्सम्बन्धों का विश्लेषण करना भी सम्मिलित है।

1.6.1 शोध के प्रकार

अब हम शोध के विभिन्न प्रकारों के सम्बन्ध में चर्चा करेंगे। शोध के व्यापक अर्थ को ध्यान में रखते हुए शोध के निम्नलिखित प्रकारों पर चर्चा की जा सकती है। शोध की दो प्रमुख कोटियाँ हैं –

(अ) शुद्ध साहित्यिक शोध तथा

(ब) अन्तर विधावर्ती शोध

(अ) शुद्ध साहित्यिक शोध

(i) **साहित्यिक शोध :** यदि साहित्य मानव जीवन के लिए आनन्द का स्रोत है, तो उसके जीवन सम्बन्धी रहस्यों को जानने की जिज्ञासा भी आनन्द तथा ज्ञान की वृद्धि का कारण हो सकती है। साहित्यिक शोध के दो मूल पहलू हैं, जिन्हें आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने स्थूल और सूक्ष्म दो अंगों में विभाजित किया है स्थूल अर्थों में वह नवीन और विस्तृत तत्वों का अनुसन्धान है, जिसको अंग्रेजी में Discovery of facts कहते हैं, और सूक्ष्म अर्थ में वह ज्ञात साहित्य के पुनर्मूल्यांकन और नयी व्याख्याओं का सूचक है।

साहित्यिक शोध मूलतः रागात्मक साहित्य की शुद्ध प्रक्रिया होती है। इसमें अज्ञात रचनाओं को प्रकाशित करना तथा प्रकाशित रचनाओं में निहित तथ्यों की नवीन व्याख्या द्वारा ज्ञान क्षेत्र की वृद्धि करना समाहित है।

(ii) **भाषा वैज्ञानिक शोध :** किसी रचना, साहित्यिक धारा अथवा कवि द्वारा प्रयुक्त भाषा प्रयोग, अर्थ परिवर्तन, वाक्य–विन्यास, रूप और ध्वनि तथा व्याकरण–सम्मतता आदि का अध्ययन जब अनुसंधान का विषय बनाया जाता है, तो वह भाषा–वैज्ञानिक शोध होता है। मैक्समूलर आदि विद्वानों ने विभिन्न प्रदेशों की भाषाओं अथवा एक ही प्रदेश में भाषाओं में परिवर्तन का अध्ययन करते हुए सर्वप्रथम एक ऐसी मौलिक भाषा की कल्पना की थी जिसे "भारोपीय" नाम दिया गया था।

(iii) **काव्य–शास्त्रीय शोध :** काव्य की परिभाषा काव्य के तत्व, प्रयोजन, स्वरूप, अभिव्यक्ति के अंक, शैलीगत विश्लेषण–विवेचन, रस–सौन्दर्य, व्यंजना एवं असाधारण अर्थबोध आदि का विस्तृत अध्ययन–क्षेत्र काव्यशास्त्र के अन्तर्गत माना जाता है। किसी कवि या लेखक, रचना–धर्मी प्रवृत्ति, वाद विशेष अथवा साहित्यिक धारा की धारणाओं को स्थापित करने के सम्बन्ध में किया गया अनुसंधानात्मक कार्य काव्यशास्त्रीय शोध

कहलायेगा।

(iv) **साहित्येतिहास सम्बन्धी शोध :** इतिहास की मूल भावना 'विकास' है। किसी भी घटना के पीछे एक समूची विकासात्मक पृष्ठभूमि मौजूद रहती है। उसका सही उद्‌घाटन करना ही ऐतिहासिक शोध का विषय होता है। साहित्य की विभिन्न धाराओं, विधाओं, प्रवृत्तियों आदि के उद्‌गम और विकास के अन्तर्गत भी इसी दृष्टि से अन्वेक्षण का उपक्रम साहित्येतिहास को रूप देता है।

साहित्येतिहास सम्बन्धी शोध मुख्यतः तीन प्रकार का हो सकता है –

1. ज्ञात तथा अज्ञात साहित्य के आधार पर उसका इतिहास अंकित करना।
2. विभिन्न विधाओं या धाराओं का उद्‌भव और विकास।
3. किसी साहित्यिक धारा की पृष्ठभूमि, धाराओं के पारस्परिक प्रभाव तथा निष्कर्ष अथवा किसी साहित्यिक प्रवृत्ति या काव्य–रूढ़ि का ऐतिहासिक सर्वेक्षण।

(v) **तुलनात्मक साहित्यिक शोध :** तुलनात्मक साहित्यिक शोध से हमारा तात्पर्य उन सभी शोध विषयों से है, जो दो भाषाओं, दो लेखकों, दो विधाओं, दो कालों अथवा दो परिवेशों को अध्ययन सामग्री बनाकर दोनों में एक समानान्तर तौल अथवा एक के दूसरे पर प्रभाव की छाप का निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं।

(ब) अन्तर विधावर्ती शोध

(i) **सामाजिक अनुसंधान :** श्रीमती पी.वी. यंग के अनुसार, "सामाजिक अनुसंधान नये तथ्यों की खोज और पुराने तथ्यों के सत्यापन, उनके क्रमबद्ध पारस्परिक सम्बन्ध, कारणों की व्याख्या तथा उन्हें संचालित करने वाले प्राकृतिक नियमों के अध्ययन की सुनियोजित विधि है।" इस प्रकार सामाजिक अनुसंधान सामाजिक सम्बन्धों की व्याख्या करता है, सामाजिक घटनाओं और उसके कारणों में कार्य–कारण सम्बन्धों की खोज करता है तथा इनसे सम्बन्धित नये तथ्यों की खोज तथा पुराने तथ्यों की व्याख्या वैज्ञानिक ढंग से करने का प्रयास करता है।

(ii) **मनोवैज्ञानिक शोध :** साहित्य की विभिन्न विधाओं में मनोवैज्ञानिक तत्वों का अध्ययन एवं नवीन उत्सर्जित मानसिक वृत्तियों का अंकन मनोवैज्ञानिक शोध कहलाता है। इस प्रकार का शोध व्यक्तिप्रधान एवं विषयी प्रधान होता है। कथा–साहित्य में व्यक्ति की प्रधानता होती है, तो काव्य में विषयी–परकता की। इस प्रकार जब उक्त प्रकार की रचनाओं में से किसी पक्ष का शोध अपेक्षित होता है, तो हम उसे मनोविज्ञान–धारित साहित्यिक शोध कहते हैं।

मनोवैज्ञानिक शोध के क्षेत्र में प्रवेश करने वाले शोधार्थी को सामान्य मनोविज्ञान से परिचित होना चाहिए। क्योंकि आजकल असामान्य अथवा विकार–युक्त

मनोभावों का चित्रण लेखकों को अधिक ग्राह्य है, इसलिए असामान्य मनोविज्ञान का अध्ययन भी शोधार्थी के लिए अनिवार्य हो जाता है।

1.6.2 शोध की प्रकृति

- अनुसंधान एक उद्देश्यपूर्ण सुव्यवस्थित बौद्धिक प्रक्रिया है। इसके द्वारा किसी सैद्धान्तिक अथवा व्यावहारिक समस्या के समाधान का प्रयास किया जाता है।
- अनुसंधान के द्वारा या तो किसी नये तथ्य, सिद्धान्त विधि या वस्तु की खोज की जाती है अथवा प्राचीन तथ्य, सिद्धान्त विधि या वस्तु में परिवर्तन किया जाता है।
- अनुसंधान एक तर्कपूर्ण एवं वस्तुनिष्ठ प्रक्रिया है। इसके द्वारा प्राप्त निष्कर्ष वास्तविक आँकड़ों पर आधारित एवं तर्कपूर्ण होते हैं तथा व्यक्तिगत पक्षपात से मुक्त होते हैं।
- अनुसंधान चिन्तन की एक सुव्यवस्थित एवं परिष्कृत विधि है जिसके अन्तर्गत किसी समस्या के समाधान के लिए विशिष्ट उपकरणों एवं प्रक्रियाओं का प्रयोग होता है।
- अनुसंधान की प्रक्रिया में प्राथमिक एवं माध्यमिक स्रोत से प्राप्त आँकड़ों से नये ज्ञान को प्राप्त किया जाता है।
- इसके अन्तर्गत जटिल घटनाक्रम को समझने के लिए विश्लेषण–विधि का प्रयोग किया जाता है।
- अनुसंधान द्वारा प्राप्त ज्ञान सत्यापित किया जा सकता है क्योंकि इसके अन्तर्गत किया गया निरीक्षण नियन्त्रित एवं वस्तुनिष्ठ होता है।
- अनुसंधान एक अनोखी प्रक्रिया है जिसके द्वारा ज्ञान के प्रकाश एवं प्रसार के लिए सुव्यवस्थित प्रयास होता है।
- आँकड़ों को प्राप्त करने के लिए विश्वसनीय एवं वैध उपकरणों का प्रयोग किया जाता है।
- सभी अनुसंधानों में अभिलेखन एवं प्रतिवेदन सावधानी से किया जाता है।

1.6.3 शोध की विशेषताएँ

- **सत्यान्वेषण और ज्ञान विस्तार** – सत्यार्थ दर्शन ही ज्ञान है। अनुसंधाता स्वभावतः सत्यान्वेषी होता है। उसका अविकल्प कर्त्तव्य है कि वह तथ्य की यथार्थता का गवेषण एवं उद्घाटन करे, सत्य की प्रस्थापना करे और ज्ञान का विस्तार करे। इस प्रकार अनुसंधान का प्रथम कार्य सत्यान्वेषण और ज्ञान विस्तार है।
- **अनवरत चिंतन** – किसी भी बाह्य रचना के पूर्व उसकी मानस–कल्पना आवश्यक हुआ करती है। "तैत्तिरीयोपनिषद्" पर भाष्य करते हुए शंकराचार्य ने कहा है कि सृष्टि से पूर्व उस ब्रह्मा ने सृज्यमान् जगत की रचना के विषय में आलोचना की अर्थात् पहले मानस–बिंब का निर्माण हुआ तत्पश्चात् उसे दृश्य–विश्व के रूप में कार्यान्वित किया गया। तुलसीदास ने भी "रामचरित–मानस" में कहा है, "रचि महेस निज मानस राखा, पाइ सुसमउ सिवासन भाखा।"

शोध–प्रबंध के सम्बन्ध में भी यह सत्य है कि अनुसंधाता भी शोध प्रबंध की रचना के पूर्व रचनीय वस्तु का मानस बिंब निर्मित करता है और फिर उसे प्रबन्ध के रूप में लिपिबद्ध करता है। इस मानस–बिंब के लिए अनवरत चिन्तन की आवश्यकता होती है।

- **विषय की एकतानता** – अनुसंधान में निश्चित लक्ष्य बाँधकर आगे बढ़ना पड़ता है। उसके विषय की सीमा नियमित निर्धारित रहती है। उस मर्यादा का उल्लंघन नितांत वर्जित है। तथ्यों के संग्रह, विवेचन–विश्लेषण, प्रेरक तत्वों और प्रभावों आदि का आकलन करते समय लक्ष्यपथ से दूर जाना अहितकर है। भूमिका का अनावश्यक विस्तार भी विषयांतर है। किसी प्रबन्ध की भूमिका उसके षष्ठांश या पंचमांश से अधिक नहीं होनी चाहिए।

- **व्यापक पट भूमिका** – "विषय की एकतानता" का अर्थ यह नहीं है कि अनुसंधाता अपनी दृष्टि को संकुचित बनाकर कूपमंडूक हो जाए। उसका तात्पर्य इतना ही है कि असंबद्धालाप से बचना चाहिए। अपने विवेचन को निर्धारित विषय की परिधि में मर्यादित रखना चाहिए। किसी विषय के सम्यक् निरूपण के लिए अनुसंधाता की गति और संवेदना का क्षितिज व्यापक होना चाहिए।

- **प्रमाणोल्लेख** – व्यवस्थित ज्ञानवत्ता के कारण अनुसंधान मूलतः विज्ञान है। अतएव उसकी पद्धति भी वैज्ञानिक हैं, अनुसंधाता को यह नहीं भूलना चाहिए कि अनुसंधान केवल सर्च नहीं है, वह 'रि–सर्च' है। अतएव प्रमापक तथ्यों का उल्लेख करते समय वह इस बात के लिए बाध्य है कि अपने कथन को, निष्कर्षों की स्थापना को सिद्ध करने के लिए अपेक्षित प्रमाणों का निश्चित संदर्भ भी दे दें।

- **तर्कसंगत विभाजन और वर्गीकरण** – किसी भी विषय के सम्यक् अध्ययन के लिए अध्येतव्य वस्तु का वैज्ञानिक विभाजन आवश्यक है। विभिन्न अध्यायों का उपविभाजन भी होना चाहिए। उनके अन्तर्गत शीर्षकों एवं उपशीर्षकों की उपयुक्त व्यवस्था होनी चाहिए। विषय विभाजन के अनुसार ही संकलित तथ्यों का वर्गीकरण करके शोध–प्रबंध की रचना में प्रवृत्त होना चाहिए। प्रतिपाद्य विषय की सामग्री, प्रवृत्तियों, अंगों, रूपों, विशेषताओं आदि के तर्कसंगत विभाजन और वर्गीकरण की अवहेलना शोध–प्रबंध का दूषण है।

- **विवेचन और विश्लेषण** – शोध प्रबंध की निष्पन्नता के लिए विवेचन और विश्लेषण की आवश्यकता है। 'विश्लेषण' का अर्थ है – संश्लिष्ट तथ्यों या तथ्यगत तत्वों का पृथक्करण। 'विवेचन' का अर्थ है – उन तत्वों या तथ्यों का विवेकपूर्ण परीक्षण, उनकी तर्क संगत मीमांसा। अनुसंधान का विषय जितना ही सीमित होगा सूक्ष्म विवेचना की आवश्यकता भी उतनी ही अधिक होगी। तथ्य प्रधान अनुसंधान में भी विषय–विभाजन, ग्राह्य के ग्रहण, त्याज्य के त्याग, तथ्यों के वर्गीकरण आदि के लिए भी विवेचन शक्ति का उपयोग अनिवार्य है।

- **तत्वाभिनिवेशी दृष्टि** – अनुसंधान चाहे जिस विषय पर किया जाए, उसका रूप चाहे जो भी हो, अनुसंधाता में उसे समझने–समझाने की भावकोचित आलोचन शक्ति और दृष्टि नैर्मल्य का होना आवश्यक है।

- **सत्यनिष्ठ मौलिकता** – अनुसंधान या शोध – प्रबंध की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक विशेषता है – मौलिकता। अनुसंधान के क्षेत्र में मौलिकता का अर्थ है– अनुसंधेय विषय की अज्ञात एवं अनाख्यात सामग्री का आख्यान अथवा आख्यात

सामग्री का नूतन दृष्टि से पुनराख्यान। अनुसंधान का मुख्य प्रयोजन ज्ञान–विस्तार है। अतः अनुसंधाता का धर्म है कि वह अपने मौलिक योगदान से संचित धनराशि को अभिवृद्ध करने का प्रयत्न करे। अनुसंधानकर्ता सत्यान्वेषी है। अतः उसकी मौलिकता सत्यनिष्ठ होनी चाहिए।

- **सुष्ठु प्रतिपादन–शैली** – हिन्दी साहित्य की डॉक्टरेट उपाधि के लिए प्रस्तोव्य शोध–प्रबंध एक साहित्यिक कृति है। अतः प्रत्येक साहित्यिक रचना में, और विशेषकर उच्चतम उपाधि के लिए लिखित प्रबंध में शब्दार्थ–संतुलन का सम्यक निर्वाह अपेक्षित है। अभिव्यंजना के तीन विशिष्टगुण हैं – शुद्धता, मिताक्षरता और स्पष्टता। अन्य गुण हैं : प्रसन्नता, स्वच्छता, प्रभावोत्पादकता, शिष्टता, धारावाहिकता, संबंध–निर्वाह, अर्थ–गौरव, औचित्य, संगति, निष्ठा आदि। साहित्यिक शोध प्रबंध में इन गुणों की उपस्थिति आवश्यक है।

1.7 शिक्षा एवं मनोविज्ञान में अनुसंधान की आवश्यकता एवं महत्त्व

आज विश्व की चहुँमुखी प्रगति का कारण विभिन्न क्षेत्रों में किए जा रहे अनुसंधान ही हैं। यदि ज्ञान के विस्फोट को समझना है और प्रगति की होड़ में आगे बढ़ना है तो उसका एकमात्र साधन अनुसंधान ही है। शिक्षा और मनोविज्ञान में हमारा प्रयास, मानव के व्यवहार को समझना और उस पर नियन्त्रण रखना है। इसके लिए अनुसंधान–कार्य एक प्रमुख साधन है। व्यवहार के विभिन्न घटकों को जानने, उसे उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों को जानकर उनके संबंध में भविष्यवाणी करने तथा व्यवहार के नियन्त्रण का मार्ग केवल अनुसंधान के द्वारा ही ढूँढा जा सकता है। अतः इन क्षेत्रों में अनुसंधान का निम्नलिखित महत्त्व है–

- **ज्ञान के विकास में सहायक** – अनुसंधान ज्ञान के किसी एक सूक्ष्म अंग का विस्तृत, सम्पूर्ण एवं नवीन चित्र प्रस्तुत करता है। इसके द्वारा ज्ञान–कोष में वृद्धि एवं विकास होता है। गुड तथा स्केट का कहना है कि विज्ञान का कार्य बुद्धि का विकास करना है तथा अनुसंधान का कार्य विज्ञान का विकास करना है। अतः यदि हम बुद्धिमत्ता का विकास चाहते हैं तो अनुसंधान करना ही होगा।

- **उद्देश्य प्राप्ति हेतु सर्वोत्तम साधन** – यह एक उद्देश्यपूर्ण क्रिया है। इसकी समूची क्रिया एक निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर रहती है। इसके अन्तर्गत व्यर्थ की बातों के लिए स्थान नही होता है।

- **मानव–जीवन को गति एवं दिशा परिवर्तन में सहायक** – मानव समाज परम्पराओं तथा रूढ़ियों की लीक सदियों तक पीटता रहता है। उसके प्रभाव की गति को मोड़ना सरल नहीं है। रेल के आविष्कार के पूर्व मानव ने अपनी उसी स्थिति का समायोजन कर रखा था, किन्तु रेल के आविष्कार के पश्चात् समाज में एक बड़ा परिवर्तन आया। इसी प्रकार अनुसंधान मानव–जीवन को गति प्रदान करने एवं दिशा–परिवर्तन में अत्यन्त सहायक होता है।

- **राष्ट्रीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास में सहायक**–राष्ट्रीयता की भावना के विकास में शिक्षा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य केवल इतना नहीं है कि हमारा देश सर्वश्रेष्ठ हो अपितु देशवासियों में "वसुधैव–कुटुम्बकम्" के भाव भी विकसित करना है। अनुसंधान के अन्तर्गत लोक–हितकारी भावनाओं का समन्वय होता है, इसी कारण अनुसंधान से

राष्ट्रीयता की भावना को भी आघात नहीं पहुँचता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता की कोमल पुष्पलतिका भी पुष्पित होती रहती हैं।

- **सुधार का मार्ग प्रशस्त करना** – अनुसंधान रूढ़िगत विचारों एवं व्यवहारों में सुधार का मार्ग प्रस्तुत करता है, क्योंकि इसका पथ वैज्ञानिक होता है जिसमें इस प्रकार की भ्रान्तियों एवं अपुष्ट धारणाओं के लिए स्थान नही होता।
- **संतुष्टि प्रदान करना** – अनुसंधानकर्ता सदैव सत्य–ज्ञान की खोज में व्यस्त रहता है। अतः अनुसंधान उसकी उत्सुकता को शान्त एवं सत्य की खोज की पिपासा को संतुष्ट करता है।
- **विभिन्न क्षेत्रों में सहायक** – अनुसंधान अनेक प्रशासनिक गुत्थियों को सुलझा कर स्वस्थ प्रशासनिक व्यवस्था के सफल संचालन में सहायक होता है। अध्यापक के लिए तो यह प्राण ही है। अनुसंधान उनकी सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक समस्याओं का समाधान कर प्रगति का पथ प्रशस्त करता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि अनुसंधान शिक्षकों, छात्रों, अभिभावकों तथा प्रशासकों एवं पर्यवेक्षकों को स्वयं के ज्ञान, परस्पर एक दूसरे के ज्ञान एवं मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक समस्याओं का सुनियोजित समाधान प्रस्तुत करने के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

1.8 सारांश

आपने 'शोध का स्वरूप एवं प्रविधि' की प्रथम इकाई में 'शोध की परिभाषा एवं स्वरूप' का अध्ययन किया है। इस इकाई का संबंध शोध के अर्थ, विभिन्न रूपों, शोध के उद्देश्य, उपयोगिता आदि से है। प्रस्तुत इकाई में आपने जाना कि शोध एक निरन्तर प्रक्रिया है। ज्ञान के क्षेत्र में इसका विशेष महत्त्व है। अनुसंधान एक बौद्धिक प्रक्रिया है जो नये ज्ञान को प्रकाश में लाती है अथवा पुरानी त्रुटियों एवं भ्रान्त धारणाओं का परिमार्जन करती हैं तथा व्यवस्थित रूप में वर्तमान ज्ञान–कोष में वृद्धि करती है। आशा है आप इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् निम्नलिखित जानकारी प्राप्त कर पाए हैं–

- खोज का परिष्कृत और प्रामाणिक रूप ही 'शोध' है।
- शोध शब्द में ज्ञान की शुद्धि का भाव रहता है। शोधकर्ता विस्मृत ज्ञान को पुनः प्रकाश में लाकर उसे शुद्ध रूप से प्रस्तुत करता है।
- हिन्दी कोष में 'शोध' के लिए अन्वेषण, अनुसंधान, गवेषणा, जाँच–पड़ताल, खोज आदि विभिन्न शब्दों का प्रयोग हुआ है।
- शोध' के पर्याय के रूप में 'अनुसंधान' सर्वाधिक सटीक, सुसंगत व सार्थक शब्द है।
- शोध साहित्य के क्षेत्र में बहुत उपयोगी है। शोध के द्वारा ही हम रचना के मूल में छिपे आनन्द तक पहुँच पाते हैं।
- शोध का मुख्य उद्देश्य उन विचारों भावों और अनुभवों का परिशोधन करता है, जो मानव जाति के कल्याण में सहभागी हो सकते हैं।
- अनुसंधान की दो प्रमुख कोटियाँ – शुद्ध साहित्यिक शोध तथा अन्तर विधावर्ती शोध होती है।

- अनुसंधान के द्वारा किसी सैद्धान्तिक अथवा व्यावहारिक समस्या के समाधान का प्रयास किया जाता है।
- शिक्षा एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान का विशिष्ट महत्व है।

1.9 शब्दावली

प्रविधि	–	किसी विशेष विषय से संबंध रखने वाली या किसी विशेष प्रकार की विधि
आख्यान	–	वर्णन, वृत्तान्त
घ्राणेन्द्रियाँ	–	नाक आदि
चतुर्दिक	–	चारों ओर
अपरिहार्य	–	अनिवार्य, जिसके बिना काम न चले, अत्यावश्यक
अवधानपूर्वक	–	मन एकाग्र करके किसी ओर लगाना, ध्यान देना
गवेषणा	–	खोज, अन्वेषण
परिमार्जन	–	दोष, त्रुटियाँ आदि दूर करके ठीक करना
परिशोधन	–	पूरी तरह साफ या शुद्ध करना
प्रदत्तों	–	दिया हुआ
अन्वीक्षण	–	भली–भाँति देखना या सोचना–समझना, खोज, तलाश
परिष्कृत	–	जिसका परिष्करण हुआ हो; सुधारा हुआ
वस्तुनिष्ठ	–	वस्तु से संबंध रखने वाला
अभिलेखन	–	स्थायी रूप से घटनाओं को लेख के रूप में सुरक्षित रखना
अविकल्प	–	निश्चित, असंदिग्ध जिसमें कुछ भी हेर–फेर न हो सके
प्रस्थापना	–	प्रस्थान करने या कराने की क्रिया का भाव
अध्येतव्य	–	अध्येय
नैर्मल्य	–	निर्मलता, स्वच्छता
पिपासा	–	तृषा, प्यास

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सहगल डॉ. मनमोहन – हिन्दी शोध तन्त्र की रूपरेखा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, द्वितीय संस्करण–1989
2. शर्मा डॉ. रामगोपाल 'दिनेश' – अनुसंधान : स्वरूप एवं प्रविधि, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण 1994
3. नाथराय पारस – अनुसंधान परिचय, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा – प्रथम संस्करण : 1973
4. शर्मा डॉ. विनय मोहन – शोध प्रविधि नेशनल पेपर बैक्स, नई दिल्ली, दूसरा

संस्करणः 2006

5. जैन डॉ. बी.एम. – रिसर्च मैथडोलॉजी

6. शर्मा वीरेन्द्र प्रकाश – रिसर्च मैथडोलॉजी

1.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भाषा वैज्ञानिक शोध किसे कहते हैं? तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिये।
2. साहित्येतिहास संबंधी शोध मुख्यतः कितने प्रकार का होता है? साहित्यिक शोध का लक्ष्य बताइए।
3. अनुसंधान की प्रकृति पर 100 शब्दों में टिप्पणी लिखिए।
4. शिक्षा एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान का महत्त्व प्रतिपादित कीजिए। 150 शब्दों में उत्तर दीजिये।
5. मनोवैज्ञानिक शोध के शोधार्थी के लिए क्या–क्या अपेक्षित है?
6. अनुसंधान की किन्हीं पाँच विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
7. सुष्ठु प्रतिपादन शैली के लिए किन गुणों की अपेक्षा होती है?
8. "अनुसंधान, गवेषणा, अन्वेषण, खोज और शोध ये सभी शब्द एक दूसरे के पर्याय होते हुए भी अपनी विशिष्ट अर्थ छाया से युक्त हैं।" पुष्टि कीजिए।
9. साहित्यिक शोध के विविध भेदों को बताते हुए उनकी विशेषताएँ बताइये।
10. साहित्य में शोध की उपयोगिता व महत्त्व बताइये।
11. शोध का उद्देश्य निर्धारित कीजिए।

□

इकाई–2 शोध की प्रक्रिया : विषय निर्वाचन, संकलन तथा संदर्भ लेखन

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्धेश्य

2.3 शोध का स्वरूप और प्रविधि का परिचय :

2.3.1 शोध क्या है?

2.3.2 गवेषणा

2.3.3 अनुशीलन

2.3.4 समीक्षा

2.3.5 आलोचना

2.3.6 अनुसंधान

2.4 विषय–चयन

2.5 सामगी संकलन

2.6 संदर्भ लेखन

2.7 सारांश

2.8 संदर्भ ग्रन्थ

2.8.1 संदर्भ संकेत

2.8.2 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

एम.फिल. के विद्यार्थियों के लिए इस इकाई का लेखन सप्रयोजन है। एम.फिल. का पाठ्यक्रम एक प्रकार से स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त विद्यार्थियों को शोध प्रविधि से परिचित करवाता है जिससे भविष्य में वे स्वयं एक अच्छे शोधार्थी तो बनें ही, साथ ही आगे चलकर उत्कृष्ट कोटि के शोध–निर्देशक का दायित्व भी निभा सकें। शोध की प्रक्रिया किसी एक विषय पर पूर्व रचित सम्बन्धित पुस्तकों की नकल करना नहीं होता है, बल्कि सम्बन्धित विषय पर वैज्ञानिक पद्धति से चिन्तन–मनन करके सोदाहरण प्रामाणिक विवेचन करना होता है। इस इकाई में शोध प्रविधि के अतिरिक्त शोध के लिए

विषय चयन, तत्सम्बन्धी सामग्री संकलन तथा विवेचित सामग्री की प्रामाणिकता के लिए संदर्भ लेखन की सैद्धांतिक जानकारी दी जा रही है। एम. फिल. के विद्यार्थियों के लिए यह एक दिशा निर्देशक अध्याय है। इसी के अनुरूप वह शोध–लेखन का कार्य इतनी आसानी से कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त जीवन के कर्मक्षेत्र में अनेक विकल्प सामने होते हैं। आप यह भी जानते हैं कि साहित्य मात्र ज्ञानार्जन का ही विषय नहीं है, बल्कि जीवन और समाज की परिस्थितियों तथा प्रवृत्ति को समझने व उसे आत्मसात करने का सशक्त रचनात्मक माध्यम भी है। इसीलिए साहित्य और समाज को परस्पर एक दूसरे का पूरक माना जाता है। साहित्य समाज का सजीव प्रतिबिम्ब होता है। इस प्रतिबिम्ब को वैज्ञानिक धरातल पर समझने तथा इस प्रतिबिम्ब की रचना प्रक्रिया को समझने का एक प्रभावशाली उपाय शोध का क्षेत्र भी है। इस इकाई के पढ़ने के बाद आपः

- शोध के स्वरूप तथा समानार्थी शब्दों से परिचित हो सकेंगे ।
- शोध के लिए विषय चयन की आवश्यकता व महत्त्व को समझ सकेंगे ।
- सामग्री–संकलन की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- संदर्भ लेखन की आवश्यकता व विधि से परिचित हो सकेंगे ।

2.3 शोध का स्वरूप और प्रविधि का परिचय

प्रस्तुत इकाई के इस बिन्दु के अन्तर्गत शोध का स्वरूप और प्रविधि का परिचय दिया जा रहा है।

2.3.1. शोध क्या है?

यह तो आप जानते ही हैं कि ईश्वर द्वारा रचित इस पृथ्वी के धरातल का सर्वाधिक चिन्तनशील तथा मनस्वी प्राणी मनुष्य है। सभ्यता के उषाकाल से अद्यतन काल तक ज्ञान, विज्ञान तथा कला–साहित्य के क्षेत्र में अनुसंधान करना मनुष्य की शाश्वत बौद्धिक नियति रही है। इसी अनुसंधान को विविध नामों से सम्बोधित किया जाता है। अन्वेषण, गवेषणा, समीक्षा, आलोचना, खोज और शोध इसी अनुसंधान के पर्याय कहे जाते हैं, लेकिन इन सबमें परस्पर अर्थ–भेद की सूक्ष्मता भी है। 'अन्वेषण' शब्द की व्युत्पत्ति 'अनु' उपसर्ग पूर्वक 'इष' धातु के साथ ल्युट (अन) प्रत्यय के संयोग से होती है। अन्विष का तात्पर्य है– खोजना, ढूँढ़ना अथवा अभीष्ट की खोज। खोज किसी भौतिक या स्थूल पदार्थ की प्राप्ति की चेष्टा का अर्थ ध्वनित करता है। अंग्रेजी में इसके लिए डिस्कवरी या इन्वेन्शन शब्द प्रयुक्त होते हैं। इस दृष्टि से शोध तथा अन्वेषण में सूक्ष्म अर्थभेद है। वास्कोडिगामा भारत की तो कोलम्बस अमरीका की खोज करता है। अन्वेषण को

अनुसंधान के अर्थ तक लाने के लिए तत्व शब्द जोड़ना पड़ेगा। हमारे पुरातन ऋषि मनीषियों को इसीलिए तत्वदृष्टा कहकर सम्बोधित किया गया है।

आइये, अब हम 'शोध' शब्द के अर्थ को स्पष्ट करके समझ लें, क्योंकि आपका यह अध्याय शोध प्रविधि से सम्बन्धित है। अब तक शोध के लिए जिन समानार्थक अन्वेषण, गवेषणा, अनुशीलन, समीक्षा, आलोचना या अनुसंधान शब्दों का प्रयोग किया जाता रहा है, वे सभी शोध के निकट होते हुए भी उससे किंचित् भिन्न हैं।

शोध शब्द की व्युत्पत्ति 'शुध' धातु से, 'घञ' (अ) प्रत्यय के संयोग से होती है जिसका तात्पर्य शुद्ध अथवा संस्कारित अथवा शोधन करना होता है। आयुर्वेदशास्त्र में भी द्रव्यों तथा धातुओं के शोधन प्रक्रिया का उल्लेख प्राप्त होता है। जिस प्रकार इन द्रव्यों की शुद्धीकरण की एक सुनिश्चित वैज्ञानिक विधि होती है, ठीक उसी प्रकार साहित्यिक तथा सामाजिक तथ्यों के शोधन की प्रक्रिया होती है। साहित्यिक सामाजिक तथ्यों के शोधन की प्रक्रिया के माध्यम से किसी शाश्वत सत्य की उपलब्धि का प्रयत्न किया जाता है। डॉ. विनयमोहन शर्मा लिखते हैं कि "शोध खोज, अनुसंधान, अन्वेषण, गवेषण सभी हिन्दी में पर्यायवाची शब्द हैं। इसी को मराठी में संशोधन और अंग्रेजी में रिसर्च कहते हैं। खोज में सर्वथा नूतन सृष्टि का नहीं, अज्ञात को ज्ञात करने का ही भाव है।"1

2.3.2 गवेषणा

'अनुसंधान' के समानार्थक शब्दों में 'गवेषणा' का भी प्रयोग किया जाता है। यह शब्द व्युत्पत्त्यर्थ की दृष्टि से गवेषणा 'गो' शब्द के साथ 'इष' (इच्छा या गतिशील होना) धातु में ल्युट (अन) प्रत्यय जोड़ने से बनता है। इसका अर्थ है– गायों को खोजने की इच्छा रखने वाला। कालान्तर में अर्थ परिवर्तित हुआ तथा 'गो' अंश लुप्त–सा हो गया तथा केवल 'गवेषणा' रह गया। अर्थ–विस्तार की दृष्टि से यह शब्द भी श्रमसाध्य हो गया। अर्थ–विस्तार की दृष्टि यह शब्द भी श्रमसाध्य खोजपूर्ण प्रयास के अर्थ तक ही ग्रहण किया जाने लगा अतएव अनुसंधान की अर्थ व्याप्ति से फिर भी यह दूर है।

2.3.3 अनुशीलन

'अनुसंधान' की समानार्थक भाव साम्य शब्द सम्पदा में एक शब्द 'अनुशीलन' है। इसका अर्थ है– ध्यान, चिन्तन, मनन अथवा अध्ययन। इसमें 'अनु' उपसर्ग है। एतदर्थ अनुशीलन का तात्पर्य हुआ– किसी विषय के संदर्भ में सम्यक् तथा गम्भीर चिन्तनपूर्ण अध्ययन। 'अनुशीलन' अनुसंधान का अंग तो हो सकता है, लेकिन वह अंगी नहीं हो सकता। अनुसंधान शब्द में अर्थ की व्यापकता है और व्यंजना की गम्भीरता भी सन्निहित है।

2.3.4 समीक्षा

'समीक्षा' शब्द का प्रयोग प्रायः किसी .ति की आलोचना अथवा समालोचना के अर्थ में प्रयुक्त होता है। समीक्षा शब्द की व्युत्पत्ति सम+ईक्ष+अ से हुई है, जिसका तात्पर्य है

'देखना'। यजुर्वेद में एक स्थान पर कहा गया है– 'मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि विचार समीक्षन्ताम्।' कालक्रम से समीक्षा का प्रयोग किसी कार्य पर विचार अथवा परीक्षण करने के संदर्भ में होने लगा। यह शब्द किसी भी विषय या कार्य की व्यावहारिक दृष्टि से समझने की तात्पर्यवृत्ति का बोध कराता है।

2.3.5 आलोचना

'आलोचना' शब्द को यदा–कदा शोध के समानार्थक मान लिया जाता है, तथापि दोनों में पार्थक्य है। आलोचना का अर्थ है– किसी भी चिन्तनीय विषय को बौद्धिक अथवा विवेकीय दृष्टि से मनन करना। शोध अथवा अनुसंधान के व्यापक क्षेत्र का एक अंश आलोचना है। शोधार्थी आलोचना के द्वारा किसी विद्वान की मान्यता को अन्य मतों से तुलनीय बनाकर निष्कर्ष तक पहुँचा सकता है। अनुसंधान का व्युत्पत्यर्थ स्पष्ट करते हुए डॉ. बैजनाथ सिंघल लिखते हैं कि ''अनुसंधान शब्द की निष्पत्ति 'धा' धातु के साथ 'अनु' तथा 'सम' उपसर्ग पूर्वक 'ल्युट' 'अन' प्रत्यय से होती है। 'धा' का अर्थ है रखना, स्थिर करना। इस प्रकार इसका लक्षणा और व्यंजनागत अर्थ हुआ– दृष्टि को किसी वस्तु अथवा विषय पर रखना या मन को किसी विषय पर केन्द्रित करना और इसी से अनुसंधान शब्द खोज, सोच–विचार, पूछताछ, परीक्षण इत्यादि रूपों में प्रयुक्त हुआ।''2

2.3.6 अनुसंधान

'अनुसंधान' शब्द का विश्लेषण संधान तथा 'अनुसंधान' के आधार पर किया जा सकता है। संधान का तात्पर्य है अभीष्ट या लक्ष्य स्थिर करना तथा अनुसंधान का अर्थ होता है– यत्र–तत्र बिखरे सूत्रों को व्यवस्थित करना। इन दोनों अर्थों को जोड़ने पर 'अनुसंधान' का अर्थ हुआ– किसी निश्चित लक्ष्य की पूर्ति के लिए सम्बन्धित तथ्यों का एकत्रीकरण तथा संगतपूर्ण व्यवस्थापन करना। अनुसंधान में हम एक सुनिश्चित सीमारेखा में वैज्ञानिक पद्धति से निरीक्षण–परीक्षण, अध्ययन–विश्लेषण करते हुए उसे प्रभावी.त बिन्दु तक पहुँचाने का लक्ष्य रखते हैं। अंग्रेजी शब्द 'रिसर्च' की अवधारणा के मूल में किसी सुनिश्चित विषय का तत्वाभिनिवेषी वैज्ञानिक अध्ययन का भाव विद्यमान है।

सारांश यह है कि शोध तथ्यों का अनुसंधान, नूतन व्याख्या, निरूपण तथा निष्कर्षों की मौलिक स्थापना का ही प्रतिरूप है। यह एक ऐसी विशुद्ध वैज्ञानिक कर्म पद्धति है जिसकी सीमाओं को शब्दों की लक्ष्मणरेखा में कैद नहीं किया जा सकता है। शोध का क्षेत्र अत्यन्त ही व्यापक है। सभ्यता, संस्कृति और साहित्य का कोई भी पक्ष शोध का केन्द्र बिन्दु हो सकता है। शोध ज्ञात तथ्यों की पुनर्व्याख्या तथा ये तथ्यों की स्थापना भी करता है। कोई भी साहित्यिक सत्य जब परिष्त, प्रमाणित, संदेहरहित और तथ्यपूर्ण होकर सामने आता है, तब वह शोध का परिणाम बनता है।3 इसी संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि ''शोध शब्द का प्रयोग रिसर्च शब्द के अर्थ में होने लगा है। रिसर्च में 'रि'

उपसर्ग मृशार्थक भी है और गम्भीर अभिनिवेशार्थक भी। स्थूल अर्थों में वह नवीन और विस्मृत तत्वों का अनुसंधान है जिसको अंग्रेजी में 'डिस्कवरी ऑफ फैक्ट्स' कहते हैं। सूक्ष्म अर्थ में वह ज्ञात साहित्य के पुनर्मूल्यांकन और नयी व्याख्याओं का सूचक है। दोनों ही अर्थों में वह मनुष्य के बाह्य और अन्तर विकास की कड़ियों का अनुसंधान है।"4 शोध का स्वरूप स्पष्ट करते हुए डॉ. तिलक सिंह लिखते हैं कि "सृष्टि का सम्पूर्ण ज्ञान शोध की वस्तु है। समस्त ज्ञान विश्लेष्य है। अज्ञात को ज्ञात बनाना तथा ज्ञात को पुनर्विवेचन द्वारा स्पष्ट तथा व्यवस्थित करना शोध कार्य है। इस प्रकार ज्ञान की तह तक पहुँचना तथा ज्ञान के ज्ञात–अज्ञात तथ्यों के विश्लेषण व सिद्धान्त निर्धारित करना शोध का दायित्व है। साहित्य तथा साहित्येतर सभी विषयों की शोध सम्भव है।"5

2.4 विषय चयन

विषय निर्वाचन शोध प्रक्रिया का शोध कार्य की दृष्टि से सर्वाधिक प्रभावी अंग है। शोध कार्य की सम्पूर्ण संरचना तथा स्वरूप शोध विषय से अनुशासित रहते हैं।6 सम्पूर्ण शोध लेखन की प्रक्रिया में विषय चयन आधारशिला की भूमिका का निर्वहन करता है। स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करते ही प्रायः विद्यार्थी शोध कार्य की ओर प्रवृत्त होने की कामना करते हैं, लेकिन उनके सामने सबसे पहली समस्या यह होती है कि यदि शोध करना है तो किस क्षेत्र में? यदि क्षेत्र का चयन भी हो गया तो दूसरी समस्या यह होती है कि विषय चयन कैसे किया जाये? विषय चयन में यदि त्रुटि हो जाती है तो सम्बन्धित शोध की सम्पूर्ण प्रक्रिया अपने आप में प्रश्नचिह्न बन जाती है। शोधार्थी स्वयं इतना परिपक्व नहीं होता, वह तो स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त मात्र जिज्ञासु ही तो होता है। उसकी तत्सम्बन्धी कल्पना कच्ची मिट्टी के समान होती है। इस कल्पना रूपी कच्ची मिट्टी को सुघड़ पात्र में परिवर्तित करने का दायित्व शोध–निर्देशक का होता है। मेरी दृष्टि में तो सर्वप्रथम शोध निर्देशक के साथ शोधार्थी की वैचारिक संगति की पारस्परिक तन्मयता व एकरूपता का होना अनिवार्य है।

शोध विषय का चयन अत्यन्त ही गम्भीर चिन्तन के साथ होना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि शोधार्थी को अपने मानस में यह स्पष्ट रूप से विचारित कर लेना चाहिए कि स्वयं उसकी रुचिगत प्राथमिकता क्या है। उदाहरणार्थ यदि वह हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल पर शोध करना चाहता है तो उसके समक्ष यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि वह निर्गुण भक्ति या सगुण भक्ति में से किस क्षेत्र में शोध करना चाहता है। उसके मनोमस्तिष्क में यह बात भी साफ होनी चाहिए कि वह संतकाव्य अथवा सूफी काव्य क्षेत्र में शोध करना चाहता है अथवा संत और सूफी काव्य का तुलनात्मक विवेचन करना चाहता है। यह तुलना चिन्तन पक्ष की होगी अथवा अभिव्यक्ति कौशल की होगी? यदि सूफी साहित्य विषय पर शोध करना है तो यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि वह भारतीय परम्परा में सूफी साहित्य का मूल्यांकन करना चाहता है अथवा जायसी परवर्ती सूफी काव्य की विशिष्टताओं तथा जायसी पूर्ववर्ती सूफी काव्य तथा भक्ति व रीति साहित्य के

संदर्भ में शोध करने का अभिलाषी है। यह तो एक उदाहरण मात्र है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि शोधार्थी साहित्य का विद्यार्थी है तो उसके समक्ष हिन्दी साहित्य का विशद् धरातल होना चाहिए। यदि वह उपन्यास साहित्य पर शोध करने का अभिलाषी है तो उसे उपन्यास लेखन की परम्परा तथा उसके विभिन्न युगानुरूप शैल्पिक संरचनात्मक पक्ष को ध्यान में रखना पड़ेगा। हिन्दी उपन्यास की तिलिस्मी, जासूसी, नैतिक, यथार्थवादी, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, आंचलिक, सांस्कृतिक, जीवनीपरक, व्यंग्यात्मक इत्यादि विभिन्न वैचारिक तथा शिल्पगत प्रवृत्तियों को केन्द्र में रखकर शोध विषय का चयन करना चाहिए। शोध विषय का चयन करते समय जिन मुख्य बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिए, उनकी ओर संकेत करते हुए डॉ. तिलक सिंह लिखते हैं कि "(1) शोध का क्षेत्र स्पष्ट हो, (2) विषय का स्वरूप तथा सीमाएँ निश्चित हों, (3) निर्वाचित विषय की शब्दावली सुपरिभाषित, स्पष्ट, संक्षिप्त तथा संदेहरहित हो, (4) विषय अव्याप्ति तथा अतिव्याप्ति दोषों से मुक्त हो, (5) विषय निर्वाचन में शोध विद्वानों से व्यापक सम्पर्क हो, और (6) विषय पुनरावृत्ति दोष से मुक्त हो।"

शोध विषय का चयन करते समय सबसे बड़ा खतरा अतिव्याप्ति या अव्याप्ति दोष का होता है। जैसे 'हिन्दी साहित्य में रौद्र रस' अथवा 'हिन्दी में अलंकार विधान' जैसा विषय अतिव्याप्ति दोष से ग्रस्त है तो 'राम की शक्तिपूजा में छंद विधान' तथा 'मतिराम सतसई में काव्यरूप का विधान' जैसे विषयों में अव्याप्ति दोष है। इस विषय में डॉ. बैजनाथ सिंघल लिखते हैं कि "ज्ञान का प्रतीक शाखागत रूप विषय कहलाता है। प्रत्येक विषय के दो रूप होते हैं– (1) सैद्धांतिक और (2) वर्णनात्मक या शोधपरक। इन दोनों रूपों में लेखन की नियति ही विषय का स्वरूप निर्धारण करती है। लेखन की यह नियति अथवा विषय मानव मनीषा के सम्बन्ध की दिशा में जीवन में से जीवन के लिए चिन्तनगत निष्कर्ष एवं विषय प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करता है। साहित्य चूँकि सभी ज्ञान शाखाओं और भाव समुदाय का समष्टिपरक रूप होता है, इसलिए साहित्यिक विषय जीवन के सीधे साक्षात्कार से बँधे होते हैं।"[8] यह तो स्पष्ट ही है कि प्रत्येक विषय के दो पक्ष होते हैं– सैद्धांतिक और व्यावहारिक अथवा प्रायोगिक। साहित्य शोध की अपनी मौलिक विशेषता होती है। साहित्य सामाजिक चेतना का ही प्रतिबिम्ब होता है। इसलिए शोधार्थी के लिए यह अपेक्षित है कि वह ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं साहित्यशास्त्रीय पृष्ठभूमि का परिचय रखे। विषय चयन में इसलिए सतर्कता की भी आवश्यकता होती है। भावावेश में आकर विषय चयन करना आगे चलकर शोधार्थी के लिए संकट उपस्थित कर सकता है। डॉ. तिलकसिंह विषय चयन के लिए तीन पद्धतियों को प्राथमिकता देते हैं–

(1) स्वच्छन्द प्रणाली के अन्तर्गत शोधार्थी स्वयं अभिलाषित तथा वांछित विषयों को अपनी स्वरुचि के अनुसार चयन कर लेता है। शोध निर्देशक भी शोधार्थी द्वारा चयनित विषय पर शोध निर्देशन कार्य करने की अनुमति प्रदान कर देता है।

इसे वैयक्तिक विषय निर्वाचन पद्धति कहा जा सकता है। इस पद्धति के चयन में शोध निर्देशक का पूर्ण नियंत्रण नहीं रह पाता है।

(2) विषय चयन की दूसरी पद्धति योजनाबद्ध पद्धति कहलाती है। इसके अन्तर्गत शोधार्थी विभिन्न शोध परिषदों, संस्थानों अथवा विश्वविद्यालयों द्वारा सूचीबद्ध शोध विषयों में से विषय का चयन करता है। इसमें संस्था या संस्थानों की अहम् भूमिका रहती है। इस प्रकार की पद्धति के शोध कार्यों का महत्व निम्नांकित होता है–

(अ) एक ही स्थान पर एक प्रकार के शोध–कार्यों की समस्त विषय–सूची मिल जायेगी, जिसको प्रकाशित कराने में सुविधा रहेगी।

(ब) अखिल भारतीय स्तर पर साहित्य तथा भाषा शोधों द्वारा राष्ट्रीय संस्कृति के सजातीय, विजातीय, समान तथा असमान तत्वों का भी निर्धारण हो सकेगा।

(ग) भारतीय शोध पद्धति विश्व शोध पद्धति का मार्गदर्शन कर सकेगी।

(घ) शोध विषयों की पुनरुक्ति से बचा जा सकेगा।

(3) विषय चयन की तीसरी प्रणाली सूचीबद्ध प्रणाली होती है। इस प्रणाली का सम्बन्ध शोध–निर्देशक से है। शोध–निर्देशक अपनी अभिरुचि, योग्यता तथा विशेषज्ञता के शोध–क्षेत्रों से प्रतिवर्ष 15–20 शोध विषयों की सूची बना लेता है और शोधार्थियों को उसी में से कोई एक विषय दे देता है। इस पद्धति में शोध निर्देशक की प्रमुखता रहती है।"[9] सारांश यह है कि विषय चयन में शोधार्थी, शोध विषय तथा शोध निर्देशक का परस्पर त्रिकोणीय सम्बन्ध होता है। इन तीनों के मध्य में वैचारिक तारतम्य होना आवश्यक है। कई बार इस तारतम्य के अभाव में शोध का स्तर या तो कमजोर हो जाता है अथवा शोध कार्य निलम्बित या अपूर्ण ही रह जाता है।

2.5 सामग्री संकलन

शोधार्थी शोधक, अन्वेषक, आलोचक, विश्लेषक तथ आस्वादक होता है। शोध–निर्देशक तो मार्गद्रष्टा होता है, शोध–मार्ग का पथिक तो स्वयं शोधार्थी ही होता है। शोध विषय का चयन करना जितना कठिन कार्य होता है, उतना ही गुरु–गम्भीर दायित्व शोध सामग्री के संकलन का भी होता है और यही शोध के सहायक स्त्रोत भी बनते हैं। इसलिए सामग्री संकलन के महत्यज्ञ में शोधार्थी को अपनी गुरु–गम्भीर अनुसंधित्सु प्रवृत्ति का प्रमाण देना पड़ता है। शोध विषय के चयन के साथ ही शोध का सारस्वत अनुष्ठान प्रारम्भ हो जाता है। शोध निर्देशक शोधार्थी के प्रबन्ध लेखन में मार्गदर्शन कर सकता है, लेकिन उसकी पूर्व पीठिका में विषय से सम्बन्धित सामग्री संकलन का कार्य

तो शोधार्थी का ही होता है। विषय सामग्री के चयन में शोधार्थी द्वारा सामग्री संकलन सम्बन्धी सतर्कता का पूर्ण ध्यान रखा जाना चाहिए। शोध की रूपरेखा निर्मिति के पश्चात् ही सामग्री संकलन का महायज्ञ प्रारम्भ होता है। शोधकर्ता के समक्ष सामग्री संकलन के निम्नलिखित स्त्रोत होते हैं:–

- शोध विषय से सम्बन्धित वह लिखित सामग्री, जो पुस्तकों के रूप में प्रकाशित है। हमारे देश में अनेक ऐसे प्रतिष्ठित पुस्तकालय हैं जहाँ प्रकाशित तथा दुर्लभ पुस्तकें सहज ही में प्राप्त हो जाती हैं, जैसे– नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दुस्तानी एकेडमी, नेशनल लाईब्रेरी, कलकत्ता, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता जैसी संस्थाएँ अत्यन्त ही समृद्ध शोध पुस्तकालय हैं। इसी प्रकार सूफी साहित्य सालारजंग पुस्तकालय (हैदराबाद), खुदाबख्श लाइब्रेरी (पटना), कांकरोली तथा नाथद्वारा में वल्लभ सम्प्रदाय, प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान (जोधपुर) जैसे शोधपरक प्रतिष्ठान उल्लेखनीय हैं।

- शोधार्थी को कई बार हस्तलिखित ग्रंथों से भी उपयोगी सामग्री का संकलन करना पड़ता है। इन हस्तलिखित ग्रंथों की प्रामाणिकता का प्रश्न कई बार शोधार्थी के समक्ष प्रश्नचिह्न उपस्थित कर देता है। अनेक महत्वपूर्ण हस्तलिखित ग्रंथों को प्राप्त करना ही शोधार्थी के लिए टेढ़ी खीर बन जाता है।

- समकालीन प्रवृत्तियों पर केन्द्रित शोध के विषयों पर तो सरकारी रिपोर्ट्स अथवा समयुगीन साहित्यकारों के पारस्परिक पत्र व्यवहार, साक्षात्कार अथवा भेंटवार्ताएँ भी शोध सामग्री जुटाने में सहायक बन जाती हैं। साहित्यकारों की अपनी आत्मकथाएँ, डायरी लेखन, पत्र लेखन, साक्षात्कार, संस्मरण, रेखाचित्र के अलावा सरकारी गजेटियर, पत्र–पत्रिकाएँ आदि भी शोध सामग्री के संकलन में अहम् स्थान रखते हैं। केवल यही नहीं, बल्कि समाज में बड़े बुजुर्ग, वृद्धाएँ, किसान आदि का अपना जीवन–अनुभव शोधार्थी की बड़ी सहायता करते हैं। लोक साहित्य का सामाजिक या समाजशास्त्रीय जैसीं दृष्टि से अध्ययन करने वालों को इन ग्रामीण बुजुर्गों द्वारा भी बहुत सहायता प्राप्त हो सकती है।

सामग्री संकलन करने की प्रक्रिया लेखन कार्य की अपेक्षा धीमी होती है, क्योंकि यह निर्णय करना बड़ा कठिन होता है कि कौन सी सामग्री कितनी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। संकलित सामग्री की प्रामाणिकता का निश्चय करना भी शोधार्थी के लिए अग्नि–परीक्षा से निकलने से कम दुष्कर कार्य नहीं होता। यह समस्या आदिकालीन एवं मध्यकालीन साहित्यकारों की रचना के संदर्भ में शोधार्थी अनुभव कर सकता है। हस्तलिखित ग्रंथों की अनेक प्रतिलिपियाँ उपलब्ध होती हैं, उनमें से कौन–सी प्रतिलिपि मूल के निकट हो सकती है, इसका निर्णय उस समय तक नहीं हो सकता जब तक कि शोधार्थी को पाठालोचन की पद्धति का

परिचय न हो। साहित्यिक अनुसंधान में पाठालोचन की भी अहम् भूमिका होती है।

सारांश यह है कि शोध कार्य बहुधरातलीय सृजन कर्म है। शोधार्थी को इसलिए अपने चिन्तन के गवाक्षों को सभी दिशाओं में खुला रखना पड़ता है। इतिहास, राजनीति, समाजशास्त्र, नृतत्वशास्त्र, मनोविज्ञान, काव्यशास्त्र तथा लोक–संस्कृति आदि का सामान्य ज्ञान शोधार्थी को सामग्री संकलन में सहायता प्रदान करता है।

2.6 संदर्भ लेखन

शोध लेखन की सम्पूर्ण प्रक्रिया वैज्ञानिक होती है। यह अनुष्ठान मात्र सृजनात्मक ही नहीं है, बल्कि आलोचनात्मक तथा विश्लेषणात्मक भी है। शोध लेखन का प्रत्येक वाक्य कोरी कल्पना की उड़ान नहीं होता, बल्कि उसका अस्तित्व ठोस व प्रामाणिक होता है। सप्रमाण कथन ही उसकी गवेषणा का आलम्बन होता है। विषय का प्रतिपादन करते समय उसकी दृष्टि में जब तक संदर्भ का प्रामाणिक उल्लेख नहीं किया जाता, तब तक वह सत्य नहीं माना जायेगा। इसलिए आवश्यक है कि शोधार्थी शोध लेखन कार्य करते समय संदर्भ लेखन को भी उतना ही महत्व दे। चयनित विषय सामग्री के अनुरूप ही कही गयी बात की पुष्टि के लिए जो उद्धरण दिया जाता है, उस उद्धरण की प्रामाणिकता भी संदर्भ लेखन से होती है। शोधार्थी को चाहिए कि वह प्रत्येक अध्याय को लिखने से पूर्व उससे सम्बन्धित सामग्री को जुटाने के साथ–साथ उससे सम्बन्धित संदर्भ लेखन का कार्य भी करता रहे अन्यथा किन्हीं कारणों से यदि कोई संदर्भ लेखन छूट गया या विस्मृत हो गया अथवा गलत जगह अंकित हो गया तो शोध में वर्णित सिद्धान्त या भाव की प्रभावान्विति दुर्बल हो जायेगी। उदाहरणार्थ शोधार्थी हास्य रस का शास्त्रीय विवेचन तथा काका हाथरसी के हास्य काव्य विषय पर काम कर रहा है, तो स्वाभाविक है कि पहला अध्याय हास्य रस के शास्त्रीय विवेचन पर केन्द्रित होगा। शोधार्थी से अपेक्षा की जायेगी कि वह हास्य रस से सम्बन्धित संस्कृत, हिन्दी व पाश्चात्य विद्वानों की मान्यताओं से जुड़े हुए उन सभी संदर्भ ग्रंथों का उल्लेख करे जहाँ से अपनी बात को पुष्ट करने के लिए उसने उद्धरण ग्रहण किये हैं। संदर्भ लेखन का उपयोग भी तभी प्रभावशाली होगा, जब शोधार्थी में यह स्पष्ट समझ होगी कि उपयोग में लिये गये संदर्भ वास्तव में तद्विषयक शोध अंश के लिए कितने उपयोगी हैं। यदि बिना संदर्भ लेखन के शोधार्थी किसी मूल लेखक के कथन को उपयोग में लाता है, तो यह एक प्रकार से साहित्यिक नकल या चोरी मानी जाती है। इसलिए एक गम्भीर शोधार्थी और उत्तरदायी शोध–निर्देशक दोनों ही इस विषय में विशेष सतर्कता का पालन करते हैं। कई बार शोधार्थी को अन्य भाषायी ग्रंथों से पंक्तियाँ ग्रहण करनी पड़ती हैं और वह उनका शत–प्रतिशत तो नहीं, केवल भाषानुवाद ही कर पाता है फिर भी उसे यह लिखना चाहिए कि अमुक विद्वान की मान्यता के संदर्भ में यह कहा जा सकता है–। इससे शोध परीक्षक यह समझ लेगा कि शोधार्थी ने केवल भाव ही ग्रहण किये हैं।

2.7 सारांश

इस इकाई के लेखन के माध्यम से एम.फिल. करने वाले शोधार्थियों को शोध प्रविधि का परिचय देना हमारा उद्देश्य है। शोध क्या है? शोध क्यों की जाती है? शोध की प्रक्रिया क्या है? शोध का प्रयोजन क्या है? शोध की सामाजिक उपादेयता क्या है? आदि प्रश्नों का सहज समाधान जब तक शोधक अपने मानस में स्पष्ट नहीं कर लेता, तब तक शोध की अर्थवत्ता अपूर्ण रहती है। एम.फिल. की उपाधि ही भविष्य में पीएच. डी. करने की भूमिका निर्मित करती है। एम.फिल. का अध्ययन तथा लघु शोध प्रबन्ध लेखन करने से शोधार्थी स्वतः ही पीएच.डी. की गरिमा से परिचित हो सकता है। वैज्ञानिक शोध लेखन पद्धति का अनुशीलन करके शोध प्रबन्ध की गुणवत्ता स्थापित की जा सकती है। एतदर्थ इस इकाई में शोध व उसके सामाजिक समानार्थक शब्दों के सूक्ष्म अर्थभेद, शोध में विषय चयन की महत्ता, सामग्री संकलन में प्रधान व गौण स्त्रोत, संदर्भ लेखन की वैज्ञानिक पद्धति का परिचयात्मक अध्ययन स्पष्ट किया गया है।

2.8 संदर्भ ग्रन्थ

2.8.1 संदर्भ संकेत

- डॉ. विनयमोहन शर्मा : शोध प्रविधि, पृष्ठ 3.
- डॉ. बैजनाथ सिंघल : शोधः स्वरूप एवं मानक व्यावहारिक कार्यविधि, पृष्ठ 8.
- डॉ. देवराज उपाध्याय (सं) : 'साहित्यिक शोध के सिद्धान्त और समस्याएँ' कृति में डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' का लेख 'साहित्य शोध और आलोचना', पृष्ठ 33.
- डॉ. देवराज उपाध्याय (सं) : 'साहित्यिक शोध के सिद्धान्त और समस्याएँ' कृति में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का 'शोध सामग्री' शीर्षक लेख, पृष्ठ 46.
- डॉ. तिलक सिंह : नवीन शोध विज्ञान, पृष्ठ 9.
- डॉ. तिलक सिंह : नवीन शोध विज्ञान, पृष्ठ 14.
- डॉ. तिलक सिंह : नवीन शोध विज्ञान, पृष्ठ 115.
- डॉ. बैजनाथ सिंघल : शोधः स्वरूप एवं मानक व्यावहारिक कार्यविधि, पृष्ठ 61.
- डॉ. तिलक सिंह : नवीन शोध विज्ञान, पृष्ठ 119.

2.8.2 संदर्भ ग्रन्थ

- सिंहल डॉ. बैजनाथ – शोध स्वरूप एवं मानक व्यावहारिक कार्य विधि
- शर्मा डॉ. विनय मोहन – शोध प्रविधि
- सिंह डॉ. उदयभानु – अनुसंधान का विवेचन

- सिंह डॉ. तिलक– नवीन शोध विज्ञान
- गुप्त डॉ. सुरेशचन्द्र – शोध और समीक्षा
- राय पारसनाथ – अनुसंधान परिचय
- डॉ. सावित्री व डॉ. विजयेन्द्र स्नातक– अनुसंधान की प्रक्रिया – सम्पादक

2.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

- 'शोध' किसे कहते हैं? स्पष्ट कीजिए।
- शोध के समानार्थक शब्दों का उल्लेख करते हुए उनका शोध से पार्थक्य स्पष्ट कीजिए।
- शोध का स्वरूप समझाइये।
- शोध कार्य लेखन में विषय चयन का क्या महत्व है? स्पष्ट कीजिए;
- शोध विषय चयन में किन–किन पद्धतियों को ग्रहण किया जा सकता है? बताइये।
- शोध–कार्य में शोध–निर्देशक की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
- साहित्यिक शोध अन्य प्रकार के शोध से किस प्रकार भिन्न है? स्पष्ट समझाकर लिखिए।
- शोध सामग्री संकलन के मार्ग में शोधार्थी को किन–किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है?
- शोध सामग्री संकलन के लिए शोधार्थी की चयन दृष्टि की कसौटी क्या होनी चाहिए?
- शोध लेखन में संदर्भ लेखन का महत्व प्रतिपादित कीजिए।
- संदर्भ लेखन किस प्रकार किया जाता है? स्पष्ट कीजिए।

इकाई – 3 शोध की प्रक्रिया भाग – 2

(वर्गीकरण, विश्लेषण, उद्धरण, संदर्भ लेखन, पाद टिप्पणी व परिशिष्ट)

रुपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 शोध विषय की रुपरेखा

3.4 तथ्यों का वर्गीकरण

3.4.1 साहित्यिक शोध व तथ्य की व्याख्या

3.4.2 तथ्य आकलन

3.4.3 तथ्यों का वर्गीकरण

3.4.3.1 सामग्री का वर्गीकरण व विश्लेषण

3.4.3.2 संश्लेषण व निष्कर्ष ग्रहण

3.5 उद्धरण

3.6 संदर्भ लेखन

3.7 पाद टिप्पणियाँ

3.8 परिशिष्ट (अन्य सूची)

3.9 सारांश

3.10 संदर्भ ग्रंथ

3.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद, आप–

- शोध विषय की रूपरेखा तैयार करना सीख सकेंगे।
- तथ्य की व्याख्या, साहित्यिक तथ्य व भौतिक तथ्यों में अन्तर एवं तथ्य संकलन की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- तथ्यों का वर्गीकरण, विश्लेषण व संश्लेषण की योग्यता का विकास कर सकेंगे।
- शोध प्रकिया के अन्य तत्व संदर्भ लेखन, उद्धरण, अवतरण, पाद टिप्पणियाँ व परिशिष्ट लिखने की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना

साहित्य में अनुसंधान, खोज, अन्वेषण व शोध आदि अंग्रेजी के 'रिसर्च' शब्द के पर्यायवाची है। 'रिसर्च' शब्द में 'रि' उपसर्ग पुनः का सूचक है जिसका तात्पर्य यह है कि तथ्यात्मक स्थिति पहले से व्यक्त है। नवीन अनुमानों, प्रमाणों, प्रयोगों व व्याख्याओं के द्वारा उन तथ्यों में निहित सत्यों को विहित बनाने की प्रक्रिया ही रिसर्च प्रणाली कहलाती है। साहित्य ही एक मात्र ऐसी विधा हैं जिसमें यह निहितता सदैव बनी रहती है। शोध शब्द संस्कृत की 'शुध्' धातु से बना है, जिसका आधार भी कोई न कोई बाह्य तथ्य ही होता है, क्योंकि यदि कोई बाह्य तथ्य नहीं है तो शोधन संभव नहीं। यही भाव अंग्रेजी के रिसर्च शब्द में व्यक्त होता है। इसलिए शोध शब्द रिसर्च शब्द के अत्यधिक निकट है तथा प्रचलन में भी है, जैसे : शोध–प्रक्रिया, शोध–लेखन, शोध–उपाधि, शोध–निर्देशक आदि शब्द।

विद्यार्थियों ने इससे पूर्व इकाई–2 (शोध की प्रक्रिया भाग –1) में विषय निर्वाचन, सामग्री संकलन व चयन का अध्ययन कर लिया है। विषय चयन, सामग्री संकलन और रुपरेखा निर्माण के उपरान्त शोध प्रबंध लेखन की प्रक्रिया का आरम्भ होता है। विषय सूची में से किसी विषय का चयन करने के बाद उसकी रुपरेखा बनती है। जब शोध प्रबंध लेखन आरम्भ होता है तब प्रस्तावना या भूमिका की बात आती है। इसके साथ ही तथ्यों का सर्वेक्षण व पहचान, वर्गीकरण, प्रकरणों का विश्लेषण व संश्लेषण, संदर्भ लेखन, पाद टिप्पणी, उद्धरण–अवतरण, तथा उसके बाद सहायक ग्रंथों की सूची व अन्य सूची कोश, पत्र–पत्रिकाओं, गजेटियरो, रिपोटरों व पाण्डुलिपियों की आवश्यकता होती है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया (शोध–प्रक्रिया) को समग्र रुप देना नितान्त आवश्यक है।

शोध प्रक्रिया एक वैज्ञानिक तकनीक है। अतः इसके लेखन में वैज्ञानिक प्रक्रिया का होना आवश्यक है। साहित्य का अनुसंधान एक विशेष प्रविधि और प्रक्रिया से जुड़ा रहता है। यह प्रविधि और प्रक्रिया समाज विज्ञान या व्यावहारिक विज्ञान के समान होते हुए भी इस अर्थ में विशिष्ट हैं कि यह मनुष्य के सौन्दर्यात्मक अनुभव और उसके संवेदनात्मक जीवन से जुड़ी है। साहित्य में शोध सृजनात्मक होते है और सृजनात्मक भाषा को पहचान कर वैज्ञानिक प्रणाली से उसके अभिप्रायों को जाँचना व परखना पड़ता है। इसलिए शोध प्रक्रिया के विभिन्न चरणों से गुजरते हुए शोध कार्य सम्पन्न करना चाहिए। प्रस्तुत अध्याय में शोध प्रक्रिया के कई बिन्दुओं पर चर्चा की गई है।

3.3 शोध विषय की रुपरेखा

प्रस्तुत इकाई में तथ्यों के वर्गीकरण व विश्लेषण से पूर्व रुपरेखा की संक्षिप्त जानकारी विद्यार्थियों के हितार्थ आवश्यक है। इसलिए शोध विषय की रूपरेखा का भी संक्षेप में वर्णन किया गया हैं।

रूपरेखा का निर्धारण–

रूपरेखा का निर्धारण जितना अधिक वैज्ञानिक अर्थात् युक्तिसंगत व क्रमबद्व होगा, वह उतना ही सही और सुनिश्चित बन पड़ेगा। वैज्ञानिकता से अभिप्राय तथ्यात्मकता और तर्क की वस्तु परकता से है। 'मुण्डे–मुण्डे मतिर्भिन्ना' के अधीन प्रत्येक व्यक्ति के विचार भिन्न होते है इसलिए शोध क्षेत्र मे रूपरेखा भी भिन्न हो सकती है। एक ही विषय पर दो शोधार्थियों की रूपरेखा में अन्तर दिखाई पड़ता है। रूपरेखा तैयार करते समय विद्यार्थियों को तीन स्तरो से गुजरना होता है। प्रथम स्तर पर रूपरेखा तैयार करते समय शोधार्थी को सर्वप्रथम अपने विषय शीर्षक के प्रत्येक शब्द के औचित्य, अर्थ और अर्थ–विस्तार तथा शब्दों के पारस्परिक सम्बन्ध और उस सम्बन्ध के आधार पर विषय की मूल चेतना को समझ लेना अनिवार्य है। विषय के इस परीक्षण में यदि शोधार्थी को लगता है कि उसके विषय में कुछ शब्द अस्पष्ट है और उसके कारण विषय का स्थापनागत उद्देश्य स्पष्ट नही हो पा रहा है तो उसे विश्वविद्यालय की निर्धारित कालसीमा में अपने विषय को संशोधित कर लेना चाहिए।

दूसरे स्तर पर शोधार्थी को अपने विषय पर अपने निर्देशक और अन्य अधिकारी विद्वानों से विचार विमर्श करते हुए विषय के मूल रूप को सही सही समझ लेना चाहिए। यही वह स्थल है जहाँ तनिक भी चूक, रूपरेखा से लेकर विषय प्रतिपादन तक अनेक विसंगतियों को जन्म देती है। इसके पश्चात् तीसरे स्तर पर शोधार्थी को विषय सबंधी सामग्री और तथ्य संकलन की दृष्टि से उपलब्ध स्त्रोतों का अपनी विषय चेतना को ध्यान मे रखते हुए अध्ययन करना चाहिए। इस स्तर पर उपलब्ध संदर्भ ग्रन्थों की सूची को साथ साथ बना लिया जाना अत्यन्त महत्वपूर्ण रहता हैं। यह सूची भी रूपरेखा के समान्तर अध्ययनक्रम में उत्तरोत्तर विकसित होती चलती है।

इस प्रकार उपर्युक्त स्तरों के बाद ही शोधार्थी को रूपरेखा निर्धारण की दिशा में प्रवृत्त होना चहिए। विद्यार्थी को अपने विषय को (1) विषय प्रवेश (2) मुख्य विषय और (3) परिशिष्ट में बाँटकर रूपरेखा निर्माण पर पहले गंभीरता से विचार कर लेना चाहिए। विषयप्रवेश में विषय के महत्व, अब तक हुए शोधकार्य और उपलब्धियों का संक्षिप्त परिचय तथा ज्ञान विस्तार में अपने प्रस्तावित योगदान का ब्यौरा देना चाहिए। मुख्य विषय के वर्गीकरण में, प्रतिपादन की दृष्टि से संभावित अध्यायों का युक्तिसंगत वर्गीकरण करना चाहिए। शोधार्थी को इस वर्गीकरण में यही ध्यान रखना चाहिए कि वह अनावश्यक और अवांछित बातों अथवा अध्यायों से बचे। यह तभी संभव हो सकता है जब शोधार्थी अपनी शोधदृष्टि के सैद्धांतिक पक्षों का अध्यायगत निर्णय करके आगे चलता है। इस प्रकार वह आगे के अध्याय की वैज्ञानिकता के लिए अपनी स्पष्ट शोधदृष्टि और सैद्वांतिकता को लागू करके चल सकता है। इस सारे वर्गीकरण के सम्बन्ध में हम यह कह सकते है कि शोधार्थी को अपने विषय स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर होता हुआ दिखाई पडना चाहिए। रूपरेखा का इस प्रकार निर्माण अत्यंत

आवश्यक है, लेकिन इतना होने पर भी हम उसे काम चलाऊ रूपरेखा ही कहेंगे, क्योंकि अध्ययनक्रम में स्पष्टीकरण के साथ साथ उसमें शोध प्रबन्ध के पूरा होने तक कुछ ना कुछ फेर बदल का क्रम चलता ही रहता है। रूपरेखा निरन्तर विकासशील होती है तो भी मूल रूपरेखा हर प्रकार से विषय प्रतिपादन का ठोस एवं अपरिहार्य आधार होती है।

उदाहरण के लिए–

डॉ. इन्द्रराज सिंह का शोध ग्रंथ 'निराला काव्य के विविध आयाम' की रुपरेखा इस प्रकार है –

अध्याय 1 – निराला की काव्य साधना एवं रचनाओं का सृजन क्रम

अध्याय–2 निराला के काव्यगत सिद्धांत और सृजन प्रेरणाएँ

(अ) निराला के काव्यगत सिद्धांत, काव्य का स्वरुप, काव्य की आत्मा, काव्य हेतु, काव्य प्रयोजन, काव्य के तत्व, काव्य के भेद, काव्य का वर्ण्यविषय, काव्य भाषा, छन्द, राष्ट्र भाषा, निराला का मुक्ति दर्शन।

(ब) सृजन प्रेरणाएँ

अध्याय–3 निराला काव्य के विविध आयाम

(1) लघु प्रगीत, भक्तिपरक रचनाएँ, दर्शनपरक रचनाएँ, मातृवंदनापरक रचनाएँ, सरस्वती से संबंधित रचनाएँ, कविता से संबंधित रचनाएँ, सामाजिक, (करुणापरक) रचनाएँ, नवचेतनापरक रचनाएँ, मृत्यु–दर्शनपरक रचनाएँ, जीवन–दर्शन और संकल्प संबंधी रचनाएँ, सौन्दर्य और प्रेम मूल रचनाएँ, व्यंग्य रचनाएँ

(2) दीर्घ प्रगीत

(3) प्रबंध रचनाएँ

(4) प्रकृति चित्रण

अध्याय–4 काव्य शिल्प –

काव्य भाशा, प्रतीक–विधान, बिम्ब–विधान, छन्द–विधान, अलंकार विधान।

अध्याय–5 निष्कर्ष एवं मूल्यांकन

छायावादी प्रवृत्तियाँ और निराला काव्य

परवर्ती काव्य–प्रवृत्तियाँ और निराला।

यह रुपरेखा अत्यंत वैज्ञानिक है और संक्षेप में भी हैं। इसमें विषय स्पष्ट है और विवेचन संतुलित है।

3.4 तथ्यों का वर्गीकरण

शोधार्थी जब अपने विषय पर गंभीरता से विचार करते हुए उसकी रूपरेखा बना लेता है तब विषय आगे बढ़ाने की स्थिति में आ जाता है। तथ्यों के माध्यम से नये सत्य के उद्घाटन का दूसरा नाम ही शोध है। इस प्रकार शोध में सत्य की स्थापना यदि साध्य है तो तथ्य उसका साधन है। तथ्यों में निहित उद्घाटित नए सत्य को पारिभाषिक शब्दावली मे थीसिस कहते हैं।

3.4.1 साहित्यिक शोध व तथ्य की व्याख्या

साहित्यक शोध मे निष्कर्ष ग्रहण तक पहुँचने के लिये विषय के प्रतिपादन में प्रामाणिक तथ्यों की आवश्यकता होती है। तथ्यों के संकलन से लेकर उनके उपयोग तक की समग्र कार्यविधि को समझने से पूर्व यह अपेक्षित है कि पहले साहित्यिक तथ्यों के स्वरूप को जान लिया जाये। साहित्यक तथ्यों की पहचान इतनी सरल नही होती जितनी की भौतिक तथ्यों की पहचान रहती है। इसका कारण यह है कि भौतिक तथ्यों की पहचान जड़ पदार्थों और भौतिक तत्वों के अध्ययन और ज्ञानेन्द्रियों पर निर्भर करती है। इसके विपरीत साहित्यिक तथ्यों का सम्बन्ध मानव जीवन से रहता है।

साहित्यिक तथ्यों की पहचान का आधार तथ्यों का सामाजिक होना होता है। इसलिए साहित्यिक तथ्य का तथ्यात्मक होना जरूरी है, और ऐसे तथ्य का जीवन से गहन स्तर पर सम्बन्ध होना चाहिये। साहित्य के तथ्य–व्यक्ति तथ्य तथा सामाजिक तथ्य –दोनों को जोड़ने का काम करने वाले तथ्य होते हैं। व्यक्ति तथ्य तथा सामाजिक तथ्य दोनों आपस में कहाँ एक होते है और कहाँ अलग होते हैं, इसकी पहचान साहित्यिक तथ्यों का आधार पर सम्भव है। साहित्यिक कृतियों में सामाजिक तथ्य तथा व्यक्ति –तथ्य दोनों होते हैं। इन दोनो में द्वन्द्वात्मक स्थिति रहती है।

सामाजिक तथ्यों से ही साहित्यिक तथ्यों का उद्भव होता है। साहित्यिक तथ्य सामाजिक तथ्यों की अपेक्षा सूक्ष्म होते हैं। साहित्यिक तथ्यों का सम्बन्ध मनुष्य की भावनाओं अनुभूतियों और संवेदनाओं से है। साहित्यिक तथ्य मनुष्य के उद्वेग, आवेग तथा संवेग को सामाजिक रूप प्रदान करते है। सामाजिक तथ्यों की तुलना में साहित्यिक तथ्य अधिक बलवान होते हैं। मनुष्य वास्तव में साहित्यिक तथ्यों मे ही (भाव, अनुभूति, संवेदना) जीता है। साहित्यिक तथ्य सामाजिक तथ्यों में परिष्कार चाहते हैं। सामाजिक तथ्य और साहित्यिक तथ्य एक हो जाएँ तो समाज शक्तिशाली होगा। यह शक्ति धर्म में है। धर्म चाहे वह कोई भी हो, उसकी व्यवस्था (सामाजिक रूप में) बलवान होती है और वह व्यक्ति को भावनाओं के माध्यम से जोड़ता है। धर्म की ओर उन्मुख साहित्य इसीलिए अधिक प्रेषणीय और सामाजिक मूल्यों की सुरक्षा में सहयोगी रहा है।

3.4.2 तथ्य आकलन

किसी भी क्षेत्र या विशय में शोध विषय के अनुसार किए गए तथ्य आकलन या संकलन से शुरु होता है। शोधार्थी को अपने विषय की अनुरूपता में सामग्री को मूल योजना सूत्र में बाँधकर स्त्रोत ग्रंथों का गहन अध्ययन करते हुए तथ्यों का आकलन करना होता है। तथ्यों का आकलन करते समय शोधार्थी को बहुत सी बातों का ध्यान रखना होता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि शोधार्थी अपने विषय और अपने प्रतिपाद्य को बखूबी समझता है। उसने जो रूपरेखा तैयार कर रखी है उससे तनिक भी विचलित ना हो। हर तथ्यात्मक अंश जो उसके प्रतिपाद्य के अनुकूल नहीं है, उसे छोड़ देना चाहिए अन्यथा विषयांतर होने का भय रहता है। इसके अतिरिक्त शोधार्थी को निरन्तर यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि शोध वस्तुपरक कार्य होता है। उसमें पूर्वाग्रहों, भावुकताओं और संवेदनाओं के लिए कोई स्थान नही होता। ऐसा ध्यान न केवल तथ्यों के आकलन के समय, बल्कि तथ्यों के विश्लेषण के समय भी रखना होता है। इसके बाद शोधार्थी को तथ्य आकलन में तथ्यों की परस्पर सापेक्षता का भी ध्यान रखना चाहिए।

तथ्यों का आकलन मूल रूपरेखा में वर्गीकृत अध्यायों और उपाध्यायों को ही ध्यान में रखकर करना चाहिए। यदि अध्ययन–क्रम में ऐसा प्रतीत हो कि कोई तथ्य किसी आगामी अध्याय में उपयोगी हो सकता है तो उसकी टीप उस सम्बन्धित अध्याय के लिए अलग से ले लेनी चाहिए। एक अध्याय के लिए तथ्य आकलित कर चुकने पर ऐसा नहीं मान लिया जाना चाहिए कि अब तथ्य संबंधित कोई तथ्य शेष नहीं रहा। नए संदर्भ ग्रन्थों का अध्ययन करते समय ऐसे तथ्य मिल सकते हैं जो किसी पिछले अध्याय के लिए उपयोगी हों। ऐसे तथ्यों की टीप तुरन्त उस पिछले अध्याय के तथ्यों के साथ जोड़ देनी चाहिए। एक अध्याय के लिए तथ्य संकलित कर लेने पर आगामी अध्याय के लिए तथ्य संकलित करते समय विचार प्रवाह की सत्यता का ध्यान रखना चाहिए। इस प्रकार तथ्यों का आकलन अध्यायों और अध्यायगत उपखंडों की दृश्टि से स्वतः होता चलेगा।

3.4.3 तथ्यों का वर्गीकरण

शोध कार्य करते समय तथ्यों को एकत्रित किया जाता है। इन तथ्यों की पहचान में तथा उनके विश्लेषण में वर्गीकरण का प्रश्न उभरता है। जब तक सामग्री एकत्रित न हो, तब तक वर्गीकरण की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता। व्यवहार में वर्गीकरण प्रचलित है किन्तु सिद्धान्त रुप में उसका विवेचन नहीं मिलता। व्यवहार को देखते हुए सिद्धान्त पहचानना चाहिए।

वर्गीकरण का मूल सिद्धांत :–वर्गीकरण का मूल सिद्धान्त यह है कि हम किसका वर्गीकरण कर रहे हैं? यह प्रथमतः हमारे सामने स्पष्ट हो। यह मानकर चलना चाहिए (सिद्धांत–रुप में) कि जिस किसी का वर्गीकरण कर रहे हैं, विषय रुप में वह एक है। वर्गीकरण करते समय हम एक से अनेक की ओर बढ़ते हैं। यदि हम एक से अनेक की

ओर बढ़ते समय, इस एक को भूल जाते हैं, तो वर्गीकरण दोषपूर्ण होगा। हम जिस विषय पर अपना शोध प्रबन्ध लिख रहे हैं, उस विषय का कोई न कोई शीर्षक अवश्य होता है। हमारे लिए, वह शीर्षक वर्गीकरण के लिए इकाई है, ऐसा मान लेना चाहिए। वर्गीकरण मे उस एक का ही विस्तार करना है। खंड–खंड रूप मे उस एक को ही समझना हमारा प्रयोजन है। उस एक के खंड पर भी विचार करते समय हम यह जानते है कि खंड, उस एक का ही भाग है। मूल बात यह है कि वर्गीकरण मे हम एक से अनेक की ओर बढते हैं और यह बढना इसलिए होता है कि हम उस एक को अच्छी तरह से पहचान सके और स्पष्ट रूप में उसका (उस एक का) विवेचन कर सके। यह बात प्रत्येक विषय के लिए सिंद्वात रूप में स्वीकार की जा सकती है। वर्गीकरण को हम कई बिन्दुओं से समझ सकते हैं।

विषय निर्वाचन में वर्गीकरणः– जैसे ही हम विषय निर्धारण कर लेते है उसकी सीमाएँ अपने आप बन जाती है। जैसे हिन्दी नाटक साहित्य विषय है तो इसकी सीमाएँ अपने आप ज्ञात हो जाती हैं। विषय साहित्य, नाटक साहित्य कहने के साथ साहित्य के अन्य रूपों से (या विधाओं मे से) उक्त विषय की सीमा अपने आप बन जाती है। इसी तरह हिन्दी नाटक साहित्य कहने से एक सीमा बन गई कि केवल हिन्दी में लिखे गये नाटक साहित्य का विवेचन करना है। कहना यह है कि विषय निर्वाचन में ही हम स्वयं 'विषय रूप' में वर्गीकरण कर डालते हैं। जिस शीर्षक को आधार बनाकर हम अपना प्रबन्ध लिखते है वह शीर्षक स्वयं किसी बड़े वर्ग का एक छोटा रूप होता है। वस्तुतः वर्गीकरण का सम्बन्ध 'विषय–निर्वाचन' के बाद हमारे सामने आता है, किन्तु हम विषय निर्वाचन में स्वयं वर्गीकरण हो गया है, इस बात को जान लें तो वर्गीकरण में सुविधा होगी। हम भले ही छोटे से विषय पर काम करें ,किंन्तु यह न भूलें कि उसका संबंध बड़े विषय से है। बड़े को देखने से छोटे से छोटा न माने और छोटे को देखने से बड़े को बड़ा न माने। वर्गीकरण में इस दृष्टिकोण को अपनाना नितांत आवश्यक है। रहीम ने अनुभव की बात कही हैः

रहिमन देखि बड़ेन को , लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवै सुई, कहा करे तरवारि।।

कहना यह है कि अपने विषय को जो किसी बड़े वर्ग का छोटा वर्ग है, को छोटा न मानें। यह इसलिए है कि उस विषय के प्रतिपादन के बाद तथा विवेचन के बाद, वह छोटा विषय भी बड़ा हो जाएगा।

सामग्री संकलन में वर्गीकरणः– जैसे विषय निर्वाचन स्वयं अपने आप में वर्गीकरण का एक भाग है उसी तरह सामग्री संकलन में भी वर्गीकरण विषयक बुद्धि अपने आप काम करती है। जब हम पुस्तकें पढ़ते है या अन्य रूप में सामग्री संकलित करने लगते हैं तो हमें इस बात का ध्यान बराबर बना रहता है कि यह सामग्री हमारे विषय की है और यह

सामग्री हमारे विषय से संबधित नहीं है। वर्गीकरण की बुद्धि न हो तो हम अपने विषय की सामग्री को दूसरी सामग्री से अलग कैसे करेंगे? जो सामग्री मिलती है उसको क्रम से रखने एवं विभाजित करने में वर्गीकरण–बुद्वि अपेक्षित है। सामग्री संकलन में जो वर्गीकरण की बुद्धि कार्य करती है, उसमें प्राक्कल्पना से सहायता लेनी पड़ती है। सामग्री संकलन के समय हम यदि किसी तथ्य को देखकर भी उसकी उपेक्षा कर दें, तो बाद में पछताना पड़ता है। तथ्य जब हमारे सामने होता है, तो उसके महत्व को हम उसी समय नही जानते और न वर्गीकरण में उसे कहाँ जगह दी जाएगी, इस बात से परिचित होते हैं। अतः तथ्यों के संकलन में सामान्य तथ्यों की उपेक्षा न की जाए। तथ्य संकलन शोध की अनवरत प्रकिया है। यहाँ तक कि जब हम समापन पर होते है तब भी नया तथ्य मिल सकता है और उस नये तथ्य से हमारी धारणा बदल सकती है। शोध की प्रकिया ऐसी है जिसमें नया जानने की जिज्ञासा को सदैव जाग्रत रखने की आवश्यकता है।

प्राक्कल्पनाः–जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है कि सामग्री संकलन में जो वर्गीकरण की बुद्धि कार्य करती है, उसे प्राकक्ल्पना से सहायता लेनी पडती है। तथ्य संकलन शोध की एक अनवरत् प्रकिया होती है। यहाँ तक कि जब हम समापन पर होते है तब भी नया तथ्य मिल सकता है और उस नये तथ्य से हमारी धारणा बदल सकती है। तथ्यों के संकलन या संग्रह में हम अपनी प्राक्कल्पना का उपयोग करते है। सिद्धान्त रूप मे वर्गीकरण मे हमारी प्राक्कल्पना हमें सहायता करती रहती है। यह आवश्यक नहीं कि हमारी प्राक्कल्पना के अनुकूल तथ्य मिल ही जाएँ। अतः प्राक्कल्पना के विपरीत मिलने वाले तथ्यों को मूल्यवान मानना चाहिए, क्योंकि इन तथ्यों के आधार पर ही वर्गीकरण से सिद्धान्त रूप मे परिवर्तन होता है। शोध–कार्य में हर नया तथ्य हमारी प्राक्कल्पना के लिए एक प्रश्नचिहन है, ऐसा समझना चाहिए।

हमारी प्राक्कल्पना वर्गीकरण का आधार खोज लेती है, और तदनुसार तथ्यों की खोज करती है। हम जो सोचते है या विचार करते है उसमें इसी का भाग अधिक रहता है और अनुभव का भाग कम। हम चाहते हैं कि तथ्यों के आधार पर अपनी बात पुष्ट करे। ऐसी स्थिति में तथ्य संचयन में हम अपनी मनोवृत्ति या विचारधारा के अनुकूल तथ्यों का संचय ही करते है और बाकी को छोड़ देते हैं। ऐसा करना उचित नही है। वैसे तो इस प्रकार की भूलें मानवीय ज्ञान की शाखाओं में अधिक होती हैं। प्राकृतिक विज्ञान की शाखाओं में मनुष्य के वर्तमान न रहने के कारण ऐसी भूलों की सम्भावना कम रहती है। मानवीय ज्ञान की शाखाओं में शोध कार्य में हमारे पूर्वाग्रह काम करते हैं। इन पूर्वाग्रहों से मुक्त रहने के लिए हमें अपनी विचारधारा के विपरीत तथ्यों के साथ जूझने का प्रयत्न अधिक करना चाहिए। इसके लिए हमें परम्परा से चली आ रही मान्यताओं से लड़ना पड़ता है और यह एक साहस का काम है। विशेष रूप से इतिहास में पूर्वाग्रह से अधिक काम लिया जाता है।

3.4.3.1 सामग्री–वर्गीकरण व विश्लेषण

शोध सामग्री एकत्रित हो जाने पर उसे व्यवस्थित करना आवश्यक होता है। तथ्यों को सादृश्य सम्बन्ध की दृष्टि से वर्गो में छाँटने का कार्य वर्गीकरण कहलाता है। वर्गीकरण से प्रबन्ध को व्यवस्थित ढंग से लिखने में सहायता मिलती है। समान तथ्यों के आधार पर विश्लेषण तथा निष्कर्ष का कार्य आसान हो जाता है। उदाहरण के लिए हम डॉ. विनय मोहन शर्मा की पुस्तक 'शोध प्रविधि' पृ.सं. 72 में वर्णित, डॉ. सत्येन्द्र, भारतेन्दु हरिश्चन्द विषयक काव्य सम्बन्धी परिकल्पना लेते हैं। उनकी परिकल्पना है– भारतेन्दु ब्रजभाषा के कवि और संधि युग के कवि थे। इस परिकल्पना की परीक्षा के लिए उन्होंने पहले तथ्य सामग्री एकत्र की, फिर डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के अनुसार काव्य सामग्री का निम्नानुसार विभाजन किया–

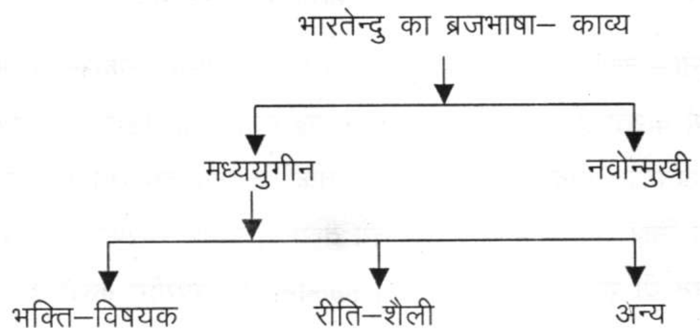

जब उपर्युक्त प्रकार से काव्य सामग्री का वर्गीकरण हो चुका होता है तो उनमें से अपनी सूझ व ज्ञान द्वारा नवीन स्थापनाओं को उद्घाटित करना होता है। इसके दो रास्ते है (1) प्रयोग और (2) विश्लेषण। प्रयोग विधि प्रायः वैज्ञानिक शोध में अपनाई जाती है जबकि विश्लेषण की विधि साहित्यिक अनुसंधान में सहयोगी होती है। 'सामग्री का वर्गीकरण' अध्याय में जो तथ्यों का वर्गीकरण किया गया था, उससे किस प्रकार विश्लेषण व संश्लेषण की प्रक्रिया से गुजरते हुए निष्कर्ष तक पहुँचने का मार्ग बना, यह डॉ. विनय मोहन शर्मा की पुस्तक 'शोध प्रविधि' में इस प्रकार वर्णित है–''भक्ति विषयिक कविताओं के अध्यन से उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि वे वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थे। होली राग संग्रह, वर्षाविनोद, प्रेम पचासा, प्रेममालिका आदि में अनेक ऐसी रचनाएँ मिलती है जो उन्हें अनन्य वैष्णव सिद्ध करती हैं। उन्होंने रचनाओं के माध्यम से यह शीर्षक निकाला है। रीति शैली की रचनाओं में उन्होंने प्रेममालिका, प्रेम फूलवारी, वर्षा विनोद, मधुमुकुल, प्रेम तरंग, प्रेम मिलाप और होली रचनाएँ छाटकर यह निष्कर्ष निकाला है कि इनकी रीति शैली की रचनाएँ देव, घनानन्द, ठाकुर, बोधा, हठी पद्माकर, आलम आदि की परिपाटी पर है। इनमे प्रेम की स्वच्छता है, नूतनता और आंतरिक भावनाओं की अभिव्यंजना भी है।''

''नवोन्मुखी रचनाओं के वर्गीकरण में अंग्रेजी राज के मुखसाज सम्बन्धी गीत, विदेशियों द्वारा धन लूट ले जाने के भाव, भारत की दुर्दशा को व्यक्त करने वाले विचार नवोन्मुखी प्रवृत्ति

को प्रदर्शित करते हैं। इन वर्गीकरणों से लेखक ने यह निष्कर्ष निकाला है कि भारतेन्दु ने यह सिद्ध किया है कि ब्रजभाषा न केवल मध्ययुगीन रीतिकालीन भावों की अभिव्यक्ति करने की क्षमता रखती है, प्रत्युत् वह आधुनिक भावों की अभिव्यक्ति का भी वाहन बन सकती है। इस प्रकार विषयवार वर्गीकरण से चिन्तन तथा निष्कर्ष में क्रम तथा स्पष्टता आ जाती है।''

तर्क वैचारिक क्रिया को स्वच्छ बनाने में परिमार्जक (डिटर्जेंट) का सा कार्य करता है। इस प्रकार तर्क विचार को शोधलक्ष्य की ओर उन्मुख करता है। तर्क चिंतन का अनुशास्ता होता है। तथ्यों के इस प्रकार विश्लेषण से जहाँ तथ्यो की उपयोगिता के औचित्य का निर्णय होता है वहीं पर कभी–कभी उपलब्ध सत्य को निबद्ध करने के लिए उचित शीर्षक भी हस्तगत हो जाता है। प्रारम्भिक रूपरेखा में अध्याय शीर्षक होते हैं, वे बहुधा अर्थवाही होते हुए भी आकर्षक नहीं होते हैं। तथ्य विश्लेषण के समय तथ्यों मे से वैचारिक इकाई के समाहारकर्ता कसे हुए जँचने वाले शोध पूर्व व्यजंक अध्याय शीर्षक मिल जाते हैं। शोधार्थी को इसे ध्यान रखना चाहिए। मूल रूप रेखा के अध्याय शीर्षकों को इन नए शीर्षकों से बदलने में कोई भी कठिनाई नही हो सकती।

निष्कर्ष यही है कि तथ्य को आकलित कर लेने के बाद उनके प्रयोग से पूर्व उनकी उपयोगिता की परख अनिवार्य है और यह उपयोगिता तथ्यों के विश्लेषण के समय उनमें से प्राप्त वाले सत्य की युक्तिसंगतता पर निर्भर करती है।

3.4.3.2 संश्लेषण व निष्कर्ष ग्रहण

तथ्य संश्लेषणः–

तथ्यों के विश्लेषण के उपरान्त उनका संश्लेषण (कोआर्डिनेशन) होता है। संश्लेषण से अभिप्रायः उस अभीष्ट अनुक्रम से है जिसमें तथ्यों का प्रयोग किया जाता है। दूसरे शब्दों मे तथ्य संश्लेषण का अर्थ है– तथ्यों की वह अन्विति जिसमें संश्लिष्ट होकर शोधार्थी के स्थापनागत विचार को मूर्त रूप दिया जाता है। अध्याय शीर्षक इस विचार का द्योतक होता है और इस अध्याय में एक निश्चित विकासवादी क्रम में प्रयुक्त तथ्य उस विचार के अवयव बन जाते हैं। तथ्यों के इस प्रकार के संश्लेषण के पश्चात् वस्तुनिष्ठ विवेचन प्रकिया द्वारा जो निष्कर्ष निकलता है, वह सम्पूर्ण शोध स्थापना का अंश होता है।

प्रत्येक अध्याय के अन्तर्गत कई उपअध्याय या शीर्षक होते है और पूरे शोध प्रबंध में कई अध्याय होते है। प्रत्येक उपशीर्षक की अपनी तथ्यसमूह इकाईयाँ होती है और प्रत्येक उपशीर्षक की ये इकाईयाँ मुख्य शीर्षक (अध्याय) की वैचारिक इकाई को समर्थन प्रदान करती हुई उसी में विलीन हो जाती हैं।

तथ्यों का उपयोग तथा निष्कर्ष ग्रहण

तथ्यों का संश्लेषण कर लेने भर से शोध कार्य पूरा नही हो जाता। किसी के पास यदि

मकान का सुन्दर नक्शा भी हो और ईट, पत्थर, सीमेंट, दरवाजों और खिडकियों के रूप में सुन्दरतम सामग्री भी हो तो हम यह कह सकते है कि मकान बन गया है। मकान बनाने के लिए इस सारी सामग्री का नक्शे की अनुरूपता में सही स्थान पर उपयोग अनिवार्य है। जब सारी सामग्री सही ढंग से प्रयुक्त कर ली जाती है तभी हमें बना हुआ मकान दिखाई पडता है। ठीक यही उदाहरण शोधगत स्थापना पर लागू होता है। तथ्य–संश्लेषण कर लेने तक तो हमें केवल शोध रूपी इमारत का सही नक्शा और इकट्ठा की गई सारी सामग्री के उपयोगगत स्थानों का ही पता चलता है। शोध में तथ्यों की इस सामग्री का उयोग किस प्रकार किया जाए? यह ध्यातव्य है।

तथ्य संश्लेषण में वैचारिक अन्विति का जो क्रम ध्यान में रखा गया है वही अन्विति क्रम तथ्यों के उपयोग और निष्कर्ष–ग्रहण में भी अपनाना होता है। जिस प्रकार मकान नक्शे की अनुरूपता में सही बन सकता है, ठीक उसी प्रकार तथ्यों का उपयोग भी वैचारिक अन्विति के सहारे संगत रूप में किया जा सकता है। तथ्यों की विवेचन प्रक्रिया में तथ्यों को युक्तिसंगत ढंग से असत् और अनुपयोगी पक्षों का परित्याग करते हुए अभिप्रेत अर्थ की तर्कसंगत प्रामाणिक और नूतन व्याख्या अभिप्रेत होती है। वास्तविकता यह है कि तथ्य विश्लेषण और विवेचन प्रक्रिया के समवेत् रूप के द्वारा ही विषय मूर्त रूप में प्रतिपादित होता है। अन्तर केवल इतना है कि तथ्य–संश्लेषण में प्रयुक्त वैचारिक अन्विति की प्रक्रिया केवल मानसिक होती है और तथ्य विवेचन में वह शब्दों के रूप में मूर्त रूप ग्रहण कर लेती है। तथ्य–संश्लेषण की पृष्ठभूमि में तथ्य विवेचन अनिवार्य रहता है और संश्लिष्ट तथ्यों के विवेचन में वही प्रक्रिया मूर्त स्तर पर दोहराई जाती है। तथ्य विवेचन का ही दूसरा नाम विषय प्रतिपादन है और विषय प्रतिपादन से ही विषय हस्तगत होते हैं।

सार रूप में शोध निष्कर्ष की परिभाषा हम इस प्रकार कर सकते हैः–शोधार्थी ज्ञान–विस्तार की दृष्टि से साहित्य के जिस क्षेत्र में शोध करके जिस किसी नई स्थापना की प्रतिष्ठा करना चाहता है, यदि उसके द्वारा आकलित संश्लेषित और विवेचित तथ्यों द्वारा वह स्थापना सत्यापित हो जाए तो हम उसकी उस स्थापना को शोध निष्कर्ष कहेंगे।

3.5 उद्धरण

किसी लेखक के कथन को लेखक के शब्दो में ज्यों का त्यों प्रस्तुत करना ही उद्धरण है और ठीक इसी तरह कवि की कविता के अंश को प्रस्तुत करना ही अवतरण है। शोध प्रबन्ध का आलेख तैयार करते हुए प्रायः शोधार्थी को विषय के प्रतिष्ठित विद्वानों के विचारों और विषय सम्बन्धी टिप्पणियों को आवश्यकता अनुसार उद्धृत करना पडता है। उद्धरण के लिए पाद–टिप्पणी में सन्दर्भोल्लेख करना पड़ता है।

उद्धरण का अर्थ व प्रयोजनः–उद्धरण का सामान्य अर्थ है किसी भी व्यक्ति के मत का अधिग्रहण वक्ता उद्धरणों को मौखिक रूप मे ग्रहण करता है और लेखक लिखित रूप में। दोनों का उद्देश्य अपने अपने अभिमत को किसी अन्य व्यक्ति के कथन या मत द्वारा

समर्थित करना होता है। उद्धरण का अधिग्रहण जहाँ अपने अभिमत को पुष्ट और प्रामाणिक करने के लिए किया जाता है, वहीं पर कभी–कभी उद्धरण किसी पूर्व प्रचलित धारणा अथवा मत के खंडन हेतु अधिगृहीत किए जाते है। डा0 उदयभानुसिंह के अनुसार, उद्धरण का अर्थ है–किसी उक्ति का अविकल ग्रहण। उद्धरण निष्कर्षों तक पहुँचने के लिए विषय प्रतिपादन में ठीक वैसे ही अपरिहार्य होते है जिस प्रकार विज्ञान क्षेत्र के शोध में स्थूल उपकरण और पूर्वप्राप्त सिद्धांत सक्रिय होते हैं। साहित्यिक शोध मे शोधार्थी के पास आलोचक की स्वतंत्रता नही रहती। उसके लिए तथ्यपरक उद्धरणों का ग्रहण करना अनिवार्य होता है। वह चाहे पीएच0 डी0 या डी0 लिट् के शोध प्रबंध लिख रहा हो अथवा एम0 लिट्, एम0 फिल् या एम0 ए0 के किसी प्रश्नपत्र के विकल्प रूप में लघु प्रबध लिख रहा हो, उसके लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह विभिन्न स्त्रोतों से उद्धरण देकर अपने कथन और अभिमत की प्रामाणिकता सिद्ध करे। इस प्रकार शोधार्थी के कथन और अभिमत की प्रामाणिकता की दृष्टि से उद्धरणों को शोध कार्यविधि का अनिवार्य एवं अपरिहार्य अवयव कहा जा सकता है। वे तथ्यों रूपी ईंटों से बने शोधरूपी भवन में सीमेंट का कार्य करते हैं।

शोधोपयोगी टीप (नोट्स):– विद्यार्थियों को उद्धरण के लिए उपयोगी टीप लेने की जानकारी होनी चाहिए। संदर्भ ग्रंथ सूची कार्डों की तैयारी के रूप में शोधार्थी अपने शोधविषय के प्रतिपादन की दिशा में एक प्रकार से प्रारम्भिक भूमिका तैयार कर लेता है। शोधार्थी को बुद्धिमत्ता और अत्यन्त दूरदर्शिता के साथ संदर्भ ग्रंथों से उपयोगी टीप (नोट्स) लेने की विधि जान लेनी चाहिए। दूसरे शब्दों मे उसे तथ्य आकलन की पद्धति को अच्छी तरह समझकर चलना चाहिए क्योंकि टीप रूप में अब वह जो कुछ आकलित करेगा, वही शोध प्रबन्ध के लेखन में उसके लिए उद्धरण रूप में व्यवहार्य बनेगा। इसलिए उसे यह समझकर चलना चाहिए कि अच्छी टीप की शर्त है– टीप का सही, उपयोगी व पर्याप्त होना, न कि उसका अनपेक्षित और अवांछित रूप में विस्तृत होना। दूसरे शब्दों में उसे हर प्रकार के पूर्वाग्रह से मुक्त होकर केवल शोध विषय को ध्यान में रखकर ही टीप लेनी चाहिए। इस दृष्टि को लेकर चलने से यह स्वतः स्पष्ट होता चलेगा कि काचलाऊ संदर्भ ग्रंथ सूची की सभी पुस्तकें विषय की दृष्टि से समान महत्व की नहीं है। उसमें कुछ पुस्तकें अनिवार्यतः अधिक उपयोगी, संगत और अपरिहार्य होंगी और कुछ अपेक्षाकृत कम महत्व की। अध्ययन की यही दृष्टि स्त्रोतों की प्राथमिकता और गौणता के निर्णय में सहायक होती है। अस्तु, शोधार्थी को अपने अध्ययन के लिए प्राथमिक और गौण स्त्रोतों का मूल्यांकन करके उनकी उपादेयता को समझ लेना चाहिए।

तथ्य अभिमतः–शोध में तथ्य और अभिमत दोनों ही उद्धरणीय होते हैं, क्योंकि यथास्थिति दोनों का अपना–अपना महत्व होता है। इस सम्बन्ध में शोधार्थी को यह देखना होता है कि जिस अंश को वह तथ्य के रूप में उद्धृत कर रहा है, वह वास्तव में तथ्य है भी या नहीं। कहीं ऐसा तो नही कि वह भ्रांतिवश किसी अधिकारी विद्वान के नाम के प्रभाव में

आकर उसके अभिमत को तथ्य मान रहा हो। इस तथ्य और अभिमत का संक्षिप्त रूप में अंतर स्पष्ट कर देना समीचीन होगा। तथ्य मूलतः घटित, अस्तितत्ववान या सिद्ध सत्य का नाम है (दे 0 6.0), दूसरी ओर अभिमत उस धारणा का नाम है जो किसी व्यक्ति विशेष या व्यक्तिसमूह द्वारा किसी तथ्य अथवा किसी विचार विशेष के खंडन–मंडन के रूप में प्रस्तुत की जाती है।

अन्वय एवं उद्धरणः– स्त्रोत ग्रंथों में शोधार्थी को दो प्रकार से टीप लेनी चाहिए। ये दो प्रकार हैं– (1) अन्वय और (2) उद्धरण। अन्वय और उद्धरण में यह अन्तर होता है कि जहाँ उद्धरण में किसी विद्वान के कथन या अभिमत को शब्दशः पूर्ण व्याकरणिक चिह्नों सहित ग्रहण करना होता है, वहाँ अन्वय में इस प्रकार के बंधन से मुक्ति रहती है। अन्वय का अर्थ है– किसी अभिमत का शोधार्थी द्वारा अपनी भाषा में यथावश्यक प्रस्तुतीकरण। शोध में अन्वय, उद्धरण–दोनों की उपयोगिता रहती है, लेकिन शोधार्थी को उद्धरणों की भरमार से बचना चाहिए। बुद्विमत्ता इसी में है कि उद्धरण यथासंभव कम और सही दिये जाएँ। अधिक प्रयास यही होना चाहिए कि स्त्रोतगत सूचना को शोधार्थी अपने शब्दों में साररूप मे टीप कर ले। उद्धरण तो केवल अपनी दृष्टि की प्रामाणिकता अथवा किसी नई एवं मौलिक धारणा की पुष्टि हेतु तर्क द्वारा किसी पूर्ववर्ती धारणा के खंडन हेतु ही ग्रहण किये जाते है। इसलिए उद्धरण रूप में टीप तभी ग्रहण करनी चाहिए जबः–

- उद्धरण किसी तथ्य एवं अभिमत के समर्थन हेतु सर्वश्रेष्ठ प्रमाण के रूप में दिए जाएँ।
- जब किसी लेखक का विचार असाधारण, स्पष्टता, विद्वत्ता और संक्षिप्तता से परिपूर्ण हो।
- जब कोई उद्धरण अपनी अभिव्यक्ति और विषय के कारण अत्यन्त सुरूचिपूर्ण प्रतीत होता हो।

उद्धरण टीप कार्ड–उद्धरणो की टीप लेने के लिए संदर्भ ग्रथों सूची कार्डों की भाँति उद्धरण कार्डों का प्रयोग करना चाहिए। उद्धरण कार्ड 4'X6" या 5"X8" के होने चाहिए। संदर्भ ग्रंथ कार्ड जिस पर शोधार्थी किसी स्त्रोत ग्रंथ का पूर्ण विवरण पहले ही लिख चुका है, उस पर नीचे बचे हुए स्थान पर उद्धरण टीप ग्रहण की जा सकती है। कई बार शोधार्थी शीघ्रातिशीघ्र टीप उतार लेने का लोभ संवरण नही कर पाता। इसलिए वह कार्डों की उपेक्षा करके किसी कापी अथवा खुले कागजों पर टीप उतारने लगता है। यह विधि न केवल तकनीकी आधार पर गलत है, बल्कि स्वयं शोधार्थी के लिए बाद में सिरदर्द बन जाती है। उद्धरणों की छँटनी और पुनर्नियोजन ठीक संदर्भोल्लेख, कार्डो की छँटनी और पुनर्नियोजन के समान अपरिहार्य होता है। शोधार्थी कागजों के अस्त–व्यस्त ढेर को देखकर विवेक खो बैठता है। इसलिए हर प्रकार से उद्धरण टीप के लिए कार्डो का प्रयोग का प्रयोग परमावश्यक है। बाद मे इनकी व्यवस्था और पुनर्नियोजन में कठिनाई

इसलिए नहीं होती क्योंकि शोधार्थी के पास पहले से ही संदर्भ कार्ड तैयार रहते हैं, जिनमें उल्लेखित स्त्रोत–सूचना सहायक होती है। विद्यार्थियों के लिए इस सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यातव्य हैं–

उद्धरण कार्डों की प्रयोग विधि

- उद्धरण कार्ड का प्रयोग केवल सामने की ओर (फ्रंट साइज से किया जाना चाहिए)।
- एक कार्ड पर केवल एक ही उद्धरण लिखना चाहिए। यदि एक ही स्त्रोत ग्रंथ में से एकाधिक उद्धरण अपेक्षित हों तो भी पृथक कार्ड का प्रयोग ही वांछनीय है। अच्छी टीप की यही पहचान है।
- एक ही स्त्रोत के लिए एकाधिक उद्धरणों के लिए प्रयुक्त पृथक कार्डों पर क्रमशः संख्यावाचक 1,2,3 इत्यादि अथवा क, ख, ग इत्यादि लिखकर उन्हें परस्पर नत्थी कर लेना चाहिए।
- प्रत्येक उद्धरण कार्ड के सिरे पर शोध विषय (प्रकरण, उपकरण) संबधी सार्थक सूचना शीर्षक लिख लेना चाहिए ताकि शोध प्रबन्ध में उनके उपयोग के समय आसानी रहे। इस प्रकार के सूचना शीर्षक टीप ग्रहण के समय स्वतः स्फुरित हो जाते है। उस स्थल संबधी किसी अनुमानित शीर्षक को ही कार्ड के सिरे पर लिखना उपयोगी रहता है।
- उद्धरण कार्ड के दाएँ कोने के ऊपर उद्धरण स्त्रोत सम्बन्धी सूचना का संकेत लिखना चाहिए। शोधार्थी के पास पहले संदर्भ से ही कार्ड तैयार रहते हैं। अतः उद्धरण कार्ड पर उसे उद्धरण की स्त्रोत–आधार सम्बन्धी समग्र सूचना की पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं रहती है।
- प्रत्येक उद्धरणकार्ड पर कुंजीअंक लिख लेने चाहिए। इस प्रकार उद्धरण कार्ड पर भी संदर्भोल्लेख कार्ड वाला कुजीअंक किया जा सकता है। स्त्रोत ग्रंथ का पूरा विवरण संदर्भोल्लेख स्त्रोत की सूचना उद्धरण कार्ड के कुजीअंक को देखकर संदर्भोल्लेख कार्ड से प्राप्त की जा सकती है। यह ध्यान रहे कि दोनो कार्डो का कुजीअंक एक ही हो।
- प्रत्येक उद्धरणकार्ड पर स्त्रोतग्रंथ सम्बन्धी सूचना लिख ली जानी चाहिए।
- सभी उद्धरणों को डबल इन्वर्टेड कोमा में ही रखना चाहिए।
- मूल उद्धरण में यदि शोधार्थी आवश्यकता के अनुरूप कुछ जोड़ना चाहता है तो उसे छोटे कोष्ठकों में रखना चाहिए।
- यदि मूल उद्धरण अनपेक्षित रूप में दीर्घ है तो शोधार्थी उसके अनपेक्षित अंशो को छोड़ सकता है। ऐसे परित्यक्त अंशों की सूचना तीन बिंदु (. . .) लगाकर

देनी चाहिए। यदि अन्तिम शब्द अथवा पक्तियाँ छोड़नी हों तो तीन बिन्दु लगाने के पूर्व विराम लगाना चाहिए।

- जैसा कि पीछे बताया जा चुका है, उद्धरणों को बहुतायत से नहीं भरना चाहिए, बल्कि अनुद्धरणीय किन्तु उपयोगी स्थलों का अन्वय ग्रहण करना चाहिए।

- अन्य भाषा के लिए गए उद्धरण के संबध में यदि शोधार्थी उद्धरण ग्रहण के समय ही उद्धरण कार्ड के दूसरी ओर उसका अनुवाद भी लिख ले तो बेहतर होता है, क्योंकि बहुधा ऐसे उद्धरणों कर अनुवाद प्रबन्ध के कलेवर में देना होता है और मूल उद्धरण पादटिप्पणी में देना होता है।

- कई लेखकों– सृजनात्मक और आलोचक, दोनों की कुछ पक्तियाँ अथवा टिप्पणियाँ बहुत बार उद्धृत होने पर सामान्य प्रचलन में आ जाती हैं। ऐसे स्थलों को उद्धरण रूप में यदि ग्रहण न करके चलते मे लिख दिया जाए तो उससे नकल अथवा चोरी जैसी बू नही आती है। उदाहरण के लिए 'रांमचरितमानस की पंक्ति' जाकी रही भावना जैसी' अथवा आवार्य शुक्ल की पंक्ति 'भक्ति धर्म की रसात्मक अनुभूति है।' अथवा डॉ. नगेन्द्र की छायावाद की परिभाषा– 'छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है', को हम बिना उद्धरण उल्लेख के प्रयोग कर सकते है।

- उद्धरण टीप की दृष्टि से स्त्रोतग्रंथों का अध्ययन करते समय शोधार्थी को यह भी ध्यान में भी रखना चाहिए कि कई बार उपर्युक्त प्रकार की लोकोक्तिपरक पंक्तियाँ शोध प्रबन्ध के अध्यायों–शीर्षको के रूप में अत्यन्त सार्थक एवं अद्वितीय प्रमाणित हो सकती हैं, क्योंकि विवेच्य विषय का सार तत्व उनमें समाहित रहता है। उदाहरण के लिए डॉ. नामवरसिंह की पुस्तक 'छायावाद' के सभी अध्याय शीर्षक छायावादी कवियों की प्रसिद्ध कविताओं की पंक्तियों से ही लिये गये हैं। जैसे शैली सम्बन्धी अध्याय का शीर्षक है– 'खुल गये छंद के बंध'। दुर्भाग्यवश हिन्दी शोध प्रबन्ध में ऐसे अध्याय शीर्षक नहीं के बराबर हैं जबकि उनका प्रभाव सामान्य शीर्षकों की तुलना में अधिक घनीभूत होता है।

- इसी प्रकार कविता में गद्य की कुछ पंक्तियाँ अध्याय शीर्षक रूप में न दी जाकर भी शीर्षक से पूर्व अध्याय के सारतत्व के रूप में पहले दी जा सकती हैं। हिन्दी में ऐसे प्रयास तो हुए हैं, लेकिन बहुत कम। उदाहरण के लिए कामायनी का दर्शन अध्याय से पूर्व यदि 'ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है' अथवा 'समरस थे जड़ या चेतन' वाला पद उद्धृत कर दिया जाए तो पाठक को वह निश्चय ही अभिभूत करेगा।

- उद्धरण केवल उपयोगी और विषय से प्रत्यक्षतः सम्बद्ध ग्रंथों से ही ग्रहण किए जाने चाहिए।

• स्त्रोतग्रंथ, जिससे उद्धरण लिया गया है, उसकी सही पृष्ठ संख्या को उद्धरणकार्ड पर उद्धरण के नीचे लिख लेना चाहिए, क्योंकि बाद में पादटिप्पणी में उसे लिखना होता है।

उद्धरणकार्ड पर उद्धरणों व टीप के नमूनेः— यहाँ कुंजी अंक प्रणाली को आधार बनाकर सभी प्रकार के नमूने दिए जा रहे है। शोधार्थी इन्हें ध्यान से देखें। यहाँ कुंजीअंक वही है जो संदर्भोल्लेख कार्ड में है और संदर्भोल्लेख कार्ड में स्त्रोतग्रंथ की समग्र सूचना रहती है।

कविता संकलन से उद्धरणः— जब किसी प्रबन्धकाव्य की अपेक्षा किसी एक कवि अथवा एकाधिक कवियों के किसी कविता संकलन से उद्धरण अपेक्षित हों तो उद्धरणकार्ड पर पृष्ठसंख्या के साथ ही कविता—शीर्षक का भी उल्लेख करना चाहिए। उदाहरण के लिए निम्नांकित तालिका देखिए जिसमें जिसमें प्रथम कविता 'अंधेरे में' मुक्तिबोध के कविता संग्रह 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' से संकलित है और द्वितीय कविता 'व्यर्थ' तारसप्तक में संकलित है। कविता संकलनों के शीर्षक संदर्भोल्लेख कार्डो में दिए जाने चाहिए।

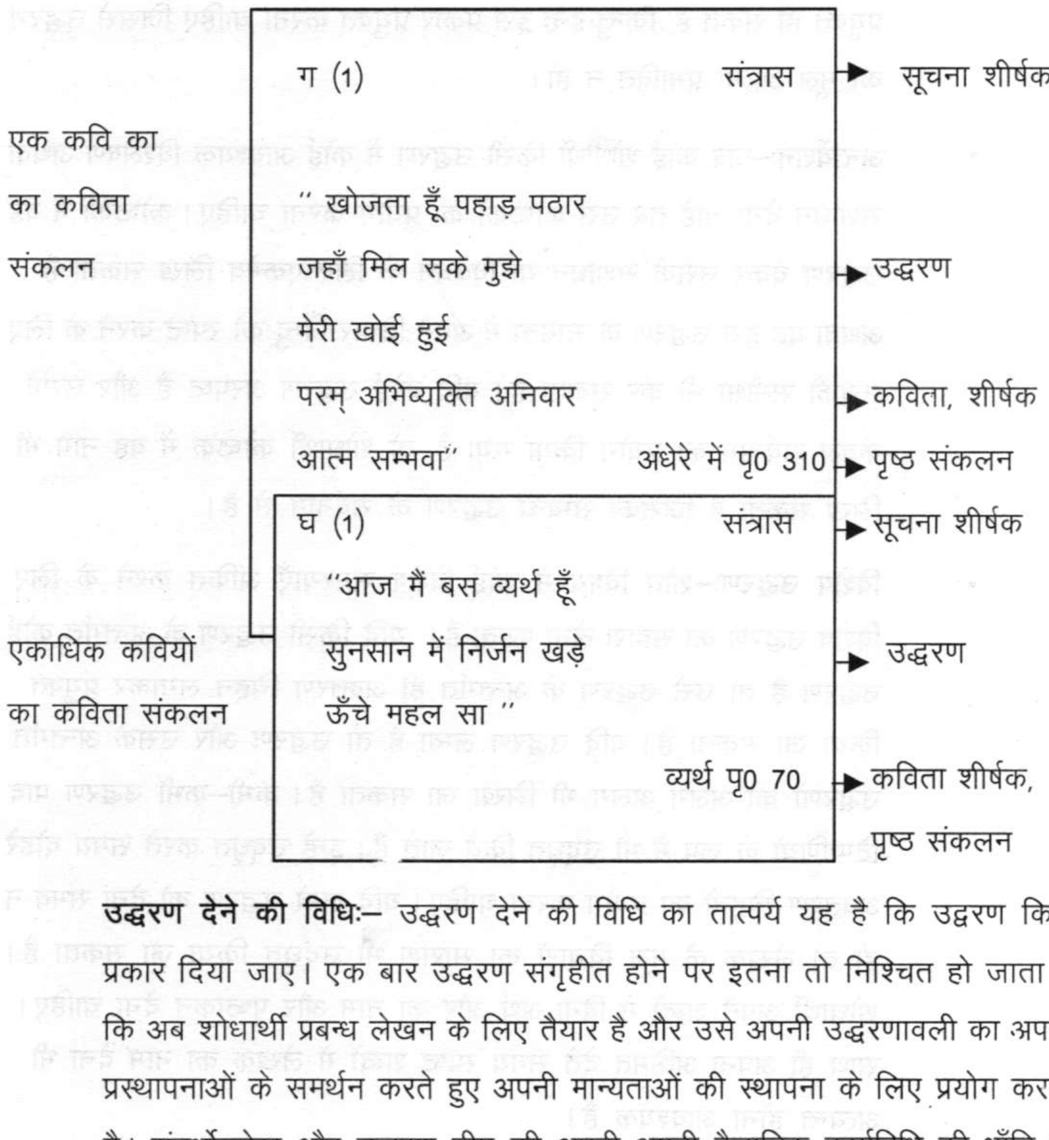

उद्धरण देने की विधिः— उद्धरण देने की विधि का तात्पर्य यह है कि उद्धरण किस प्रकार दिया जाए। एक बार उद्धरण संगृहीत होने पर इतना तो निश्चित हो जाता है कि अब शोधार्थी प्रबन्ध लेखन के लिए तैयार है और उसे अपनी उद्धरणावली का अपनी प्रस्थापनाओं के समर्थन करते हुए अपनी मान्यताओं की स्थापना के लिए प्रयोग करना है। संदर्भोल्लेख और उद्धरण टीप की अपनी अपनी वैज्ञानिक कार्यविधि की भाँति ही

उद्धरण प्रयोग की भी अपनी वैज्ञानिक कार्यविधि हुआ करती है। समस्त शोध ही वैज्ञानिक कार्यविधि पर निर्भर करता है। इसलिए शोधार्थी को प्रबन्ध लेखन कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व उद्धरण प्रयोग की कार्यविधि को समझ लेना चाहिए। सामान्यतः इन विधियों को इस प्रकार समझा जा सकता है–

- **आकार विधि–** उद्धरण मूल रूप से संक्षिप्त या लम्बे **हो सकते** हैं। अतएव आकार भी उद्धरणों में मुख्य भूमिका का निर्वाह करता है। संक्षिप्त उद्धरण के लिए एक ही वाक्य से और लम्बे उद्धरण के लिए उसके मूल रूप में ही उद्धृत किया जा सकता है।

- **पदलोप चिह्न विधिः–** लम्बे उद्धरण देने से बचने के लिए और उसमें से केवल सम्बद्ध उद्धरण देने से बचने के लिए ही वाक्य के बाद कुछ बिन्दु अथवा गुण चिन्ह् लगाये जा सकते हैं। यह उद्धरण के प्रारम्भ, मध्य अथवा अन्त में भी प्रयुक्त हो सकते हैं, किन्तु इन्हें इस प्रकार प्रयुक्त करना चाहिए जिससे उद्धरण की मूल आत्मा प्रभावित न हो।

- **अन्तर्वेशनः–**जब कोई शोधार्थी किसी उद्धरण में कोई आवश्यक विश्लेषण अथवा संशोधन देना चाहे तब उसे कोष्ठकों का प्रयोग करना चाहिए। कोष्ठकों में वह उद्धरण देकर उसके संशोधन या विवेचन के लिए एकमेव लिख सकता है अथवा वह इस उद्धरण के सम्बन्ध में अपने विचार बिन्दु को स्पष्ट करने के लिए उसकी समीक्षा भी कर सकता है। यदि कोई उद्धरण अस्पष्ट है और उसमें केवल सर्वनाम का प्रयोग किया गया है, तो शोधार्थी कोष्ठक में वह नाम भी लिख सकता है जिसका सम्बन्ध उद्धरण के सर्वनाम से है।

- **विशेष उद्धरणः–**शोध विषय मे कोई विशेष समस्याएँ अंकित करने के लिए विशेष उद्धरण का सहारा लेना पड़ता है। यदि किसी उद्धरण के अन्तर्गत कोई उद्धरण है तो उसे उद्धरण के अन्तर्गत ही अवतरण चिह्न लगाकर प्रयुक्त किया जा सकता है। यदि उद्धरण लम्बा है तो उद्धरण और उसके अन्तर्गत उद्धरणों को अलग अलग भी लिखा जा सकता है। कभी–कभी उद्धरण पाद टिप्पणियों के रूप में भी उद्धृत किये जाते हैं। इन्हें उद्धृत करते समय दोहरे अवतरण चिह्नों का प्रयोग करना चाहिए। यदि लम्बे उद्धरण को देना संभव न हो तो लेखक के मूल विचारों का सारांश भी उद्धृत किया जा सकता है। शोधार्थी अपने शब्दों में बिना अर्थ और का नाम और पृष्ठांकन देना चाहिए। साथ ही अपना अभिमत देते समय स्पष्ट शब्दों में लेखक का नाम देना भी अत्यन्त होना आवश्यक है।

3.7 पाद टिप्पणीः—

पाद टिप्पणी : अर्थ एवं प्रयोजन

शोधार्थी का काम उद्धरण ग्रहण कर लेने पर ही पूर्ण नही हो जाता । जिस प्रकार सामान्य जीवन में ऋण की लिखत पढत रहती है, शोध में भी उद्धरण ऋण को पूर्ण करना अनिवार्य है। यह ऋण कहाँ से, किस ग्रंथ से, किस संस्करण से अथवा खंड से लिया गया है, आदि का पूरा ब्यौरा शोधार्थी को जुटाना होता है। जिस प्रकार उद्धरण शोधार्थी की प्रस्थापना अथवा तथ्याख्यान को प्रमाणीकृत करते हैं, उसी प्रकार पादटिप्पणियाँ उद्धरणों की प्रामाणिकता को सिद्ध करती हैं। शोधार्थी द्वारा अपने शोध प्रबंध में प्रयुक्त उद्धरणों की प्रामाणिकता की सिद्धि के लिए उद्धरणों के स्त्रोतग्रंथों का विवरण जुटाना अनिवार्य है। उद्धरणों से सम्बन्धित स्त्रोतग्रंथों का यह विवरण जुटाने के लिए शोध कार्यविधि में पादटिप्पणियों का विधान रहता है।

अब प्रश्न यह उठ खड़ा होता है कि स्त्रोतग्रंथों सम्बन्धी सभी सूचना संदर्भ ग्रंथ सूची में तो रहती है, फिर पादटिप्पणियों में ऐसी सूचना प्रदान करना क्या केवल पुनरावृत्ति नही होगी? उत्तर सहज नही है। कारण यह है कि प्रबंध में जहाँ जिस पृष्ठ पर उद्धरण का समावेश किया गया है, यदि वहाँ प्रयुक्त उद्धरण की स्त्रोत सम्बन्धी सूचना नहीं दी गई होगी तो यह कैसे पता चलेगा कि वह उद्धरण कहाँ से लिया गया है। संदर्भग्रंथ सूची में भले ही इस स्त्रोत ग्रंथ का उल्लेख हो, लेकिन वह प्रयुक्त उद्धरण सम्बन्धी सूचना जुटाने में अनुपयोगी ही रहेगा। प्रबन्ध के विभिन्न पृष्ठों में विभिन्न ग्रंथों से उद्धरण लिये जा सकते है। इसलिए जिस पृष्ठ पर जो भी उद्धरण प्रयुक्त किया गया है उसी पृष्ठ पर पादटिप्पणी के रूप में उस उद्धरण सम्बन्धी सूचना प्रदान करना आवश्यक है। यही नहीं, पादटिप्पणियों और संदर्भग्रंथ सूची के स्वरूप और सूचना प्रस्तुतीकरण में भी कार्यविधि की दृष्टि से बहुत अंतर होता है। इसलिए यहाँ पहले पादटिप्पणी और संदर्भग्रंथ सूची के इस स्वरूपगत अन्तर को समझ लेना श्रेयस्कर होगा।

पाद टिप्पणियाँः—

शोध प्रबन्ध लेखन में पाद टिप्पणियों का प्रयोग भी परम्परागत विश्वसनीयता और विश्लेषणात्मक प्रक्रियाओं के सन्दर्भ में तब किया जाता है, जबकि विषय के संबंध में सामग्री के लिए इसके उपयोग की आवश्यकता हो। नाम के आधार पर पाद टिप्पणियों का प्रयोग पृष्ठ के नीचे किया जाता है। कभी—कभी अध्यायों के बाद यह टिप्पणियाँ दे दी जाती हैं किन्तु पाद टिप्पणियाँ देना तभी उचित है जबकि यह शोध प्रबध के मुख्य भाग के लिए आवश्यक हो।

पाद टिप्पणियों का प्रयोग कुछ आवश्यकताओं को ध्यान मे रखकर किया जाता है जो इस प्रकार हैं:—

- किसी कथन, तर्क या विचार–बिन्दु की विश्वसनीयता के लिए, जिससे कि प्राविधिक ईमानदारी और अधिकाधिक स्त्रोतों का पता लग सके।
- शोध विषय की सामग्री से सबंधित तथ्यों की व्याख्या और पूर्णता के लिए, जिससे कि अनावश्यक सामग्री को पृथक किया जा सके।
- परस्पर सन्दर्भों को जो विभिन्न अनुच्छेदों में व्यक्त हुए है, व्यक्त करने लिए अथवा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष उद्धरण जिस स्थान से लिया गया है, उसकी सूचना देने के लिए भी इनका प्रयोग किया जाता है।
- पाद टिप्पणियाँ पाठक को पर्याप्त सूचना प्रदान कर देती हैं जिससे वह शोध प्रबन्ध में आए विभिन्न स्त्रोतों का स्वतंत्र रूप से अध्ययन कर सके।

पाद टिप्पणियों में जो बातें सम्मिलित की जाती हैं, वे इस प्रकार हैः–

(क) टिप्पणी के स्त्रोतों की सूचना जिसमें ग्रंथ के लेखक का नाम दिया जाता है।

(ख) मूल ग्रंथ का नाम, जिससे उद्धरण लिया गया है।

(ग) उसका वही पृष्ठ जिससे संदर्भ लिया गया है।

(घ) प्रकाशन का दिनांक।

प्रकाशक व प्रकाशन के स्थान का नाम भी दिया जा सकता है, किन्तु यह आवश्यक नही है।

पाद टिप्पणियों में प्रबन्ध का स्थान

पाद टिप्पणियाँ प्रबन्ध में किस स्थान पर रखी जाए, यह भी एक महत्वपूर्ण समस्या है। सामान्यतयाः इन्हें तीन स्थानों पर रखा जाता हैः–

- प्रत्येक पृष्ठ के नीचे जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, जहाँ पृष्ठ पर उद्धरण होता है, इस उद्धरण के अन्त में ही संदर्भ की संख्या दी जाती है और उस संदर्भ के क्रम से ही नीचे पाद टिप्पणियाँ दे दी जाती है, किन्तु पृष्ठ के नीचे पाद टिप्पणी देते समय मूल प्रबंध से नीचे कुछ स्थान छोडकर टिप्पणी दी जानी चाहिए।
- टंकण व्यवस्था की दृष्टि से पाद टिप्पणियाँ अध्याय के अन्त में भी दी जा सकती है, किन्तु प्रत्येक उद्धरण के सन्दर्भ का क्रम पूर्ण अध्याय में रखना आवश्यक है।
- शोध प्रबंध के अन्त में भी उद्धरणों का संदर्भ क्रम संपूर्ण शोध प्रबंध में रखकर उसी आधार पर अन्त में पाद टिप्पणी दी सकती है।

पाद टिप्पणी में प्रत्येक स्त्रोत का संदर्भ देते समय लेखक का पूरा नाम दिया जाता है जिसमें नाम पहले और उपनाम बाद में आता हो। सन्दर्भ का विस्तार देते समय परिशिष्ट में पूर्ण प्रक्रिया अपनाई जाती है जिसमें पूर्ण संदर्भ दिया जाता है। इसके अंतर्गत मूल

ग्रंथों का रेखांकन और लेखों का नाम भी दिया जाता है। पृष्ठ पर पहला संदर्भ देने के बाद अगर उसी लेखक और ग्रंथ का दूसरा संदर्भ दिया गया है, तो उसे अलग से लिखने के स्थान पर 'वही' और पृष्ठ क्रमांक लिख देना पर्याप्त है। पाद टिप्पणियाँ देते समय कुछ विशेष समस्याएँ भी उत्पन्न हो जाती हैं। पाद टिप्पणी कभी कभी एक पृष्ठ से अधिक की भी हो सकती है जिससे पाठक को यह अनुभव होता है कि पृष्ठ के नीचे अतिरिक्त सामग्री दी गई है।

तालिका और चित्र के नीचे दी गई पाद टिप्पणी में विभाजक रेखा खींचना आवश्यक नहीं है। एक ही पृष्ठ पर कई छोटी पाद टिप्पणियाँ एक ही पंक्ति में उद्धृत की जा सकती हैं किन्तु उस पंक्ति में पाद टिप्पणी की सम्पूर्ण जानकारी आ जानी चाहिए। इससे स्थान की बचत होती है। किसी सहायक स्त्रोतों को उद्धृत करने वाली पाद टिप्पणी में उद्धरण के मूल ग्रंथ और जिस सहायक ग्रंथ से मूल उद्धरण उद्धृत किया गया है, उसकी सूचना आ जानी चाहिए जिसमें स्पष्ट रूप से ग्रंथ से उद्धृत लिखा गया हो।

पाद टिप्पणी के सम्बन्ध में व्यावहारिक सुझाव

- पाद टिप्पणी प्रबन्ध में किसी विचार को विश्वसनीयता प्रदान करने वाली हो, उसे समझने में सहायक हो और जिन विचारकों से उसने ग्रहण किया है, उसके स्त्रोता को स्पष्ट रूप से स्वीकार करती हो, जिससे अन्य जिज्ञासु विषय की गहराई से समझ सकें।
- पाद टिप्पणी में मूल्यवान संदर्भ प्राप्त होते हैं और वह किसी उद्धरण को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करती है और उसके स्त्रोतों का ज्ञान प्रदान करती है।
- पाद टिप्पणी में लेखक का नाम, स्त्रोत का शीर्षक, पृष्ठ क्रमांक, प्रकाशन का दिनांक, प्रकाशक व प्रकाशन के स्थान का नाम देना चाहिए।
- पाद टिप्पणी को सम्पूर्ण शोध प्रबंध में एकरूप ढंग से ही रखना चाहिए। इसे प्रत्येक पृष्ठ के नीचे, प्रत्येक अध्याय के अन्त में एवं सम्पूर्ण शोध प्रबंध के अन्त में रखा जा सकता है।
- पाद टिप्पणी की पुनरावृत्ति से बचने के लिए वही शब्द अंकित कर पृष्ठ क्रमांक अंकित कर देना पर्याप्त है।
- पाद टिप्पणियों को संख्याबद्ध करने में भी एक ही प्रकार की संगति का निर्वाह करना चाहिए। इसी प्रकार लेखक का नाम अथवा उपनाम जो भी प्रविधि अपनाई जाए। जो पहले अंकित किया गया है, उसी प्रक्रिया में शोध प्रबन्ध में उनका प्रयोग करना आवश्यक है।
- पाद टिप्पणियो को प्रबन्ध के मुख्य पाठ से पृथक करने के लिए स्थान छोड़कर रखना चाहिए। इसी प्रकार एक ही पृष्ठ पर की गई पाद टिप्पणियों को भी पृथक रूप से स्थान छोड़कर लिखना अनिवार्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूची एवं पाद टिप्पणी में स्त्रोतग्रंथों के उल्लेख के अन्तर का उदाहरण

अब इससे पूर्व की पाद टिप्पणियों के उदाहरण देकर उन्हें स्पष्ट किया जा रहा है। यहाँ स्थूल तौर पर संदर्भग्रंथ सूची में और उसके पादटिप्पणीगत उल्लेख के अंतर को निम्न उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है।

हिंदी

संदर्भ ग्रंथ सूचीः माथुर, गिरिजा कुमार, नई कविता, : सीमाएँ और संभावनाएँ ।

पाद टिप्पणीः–

पाद टिप्पणियाँः– यहाँ कुछ नमूने विद्यार्थियों की जानकारी के लिए दिए जा रहे है। शोधार्थी इन्हें ध्यानपूर्वक देखकर लिखने का अभ्यास करें।

- अज्ञेय आत्मनेपद, प्र. संस्क0 (काशीः भारतीय ज्ञानपीठ, 1960), पृ0 10
- वही, आत्मनेपद, पृ0 35
- वही, पृ0 52

नोटः–जब किसी ग्रंथ को पहली बार टिप्पणी में दिया जा रहा हो, तो उसका पूर्ण विवरण दिया जाना चाहिए, जैसे कि संख्या (1) में दिया गया है। जब एक ही पृष्ठ पर लगातार क्रम में उसी पुस्तक से उद्धरण लिया गया हो, तो दूसरी बार 'वही' लिखकर भी पृष्ठ का उल्लेख किया जा सकता है, लेकिन वर्तमान शोध कार्यविधि में पुनः केवल ग्रंथ का नाम लिखकर पृष्ठोल्लेख करना चाहिए। यही विधि वरेण्य है। यदि ग्रंथ और लेखक का नाम उद्धरण के साथ ही दे दिया गया है और ग्रंथ का उपयोग पहली बार न हो रहा हो तो पाद टिप्पणी में लेखक और ग्रंथशीर्षक के उल्लेख की आवश्यकता नही रहती। सीधे ही पृष्ठ संख्या देना पर्याप्त होता है।

- गुप्त (डॉ.) गणपतिचन्द्र : हिन्दी साहित्य क वैज्ञानिक इतिहास, प्र0 संस्करण (भारतेन्दु भवन, चंडीगढ़)
- डॉ. नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविताओ की मुख्य प्रवत्तियाँ, तृ0 संस्करण, ; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली) , 1966 कृष्ण प्रकाशन 1969
- (डॉ.) कृष्णबल (संपा) : भारतीय काव्यशास्त्र, प्रथम संस्करण (राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 1969)
- उपाध्याय (डॉ.) बलदेव : संस्कृत साहित्य का इतिहास, सप्तम संस्करण (शारदा मंदिर, वाराणसी 1965)

3.6 संदर्भ लेखनः–

शोध प्रबंध लेखन में संदर्भ का उल्लेख करना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि संदर्भ शोध प्रबंध की सामग्री को प्रमाणित करते हैं। संदर्भ की प्रामाणिकता के कारण ही शोध–प्रबंध किसी सामान्य ग्रंथ से भिन्न होता है। संदर्भ ग्रंथ का सम्बन्ध उस प्रकाशित और अप्रकाशित सामग्री से होता है जो संदर्भिका में संकलित की जाती है। संदर्भिका के कुछ प्रकार निम्नलिखित हैः–

- शोध प्रबंध की पाद टिप्पणी के रूप में अथवा उसके पाठ में संदर्भित सामग्री की सूची।
- व्यापक प्रकार के संदर्भ, जिन्हें शोध प्रबंध लेखन के समय सहयोग के रूप में प्रयुक्त किया है और जो शोध के विषय के रूप में आवश्यक रूप से संबद्ध नही है।
- चयन सामग्री की सूची, उससे उद्धृत स्त्रोत और विषय से सम्बद्ध वह सामग्री, जिसका प्रबंध लेखन की प्रक्रिया में प्रयोग किया जाता है।
- एक संक्षिप्त संदर्भिका जिसमें उन ग्रंथों की सूची हो जिन्हें पाद टिप्पणी के रूप में उससे सम्बद्ध और उपयोगी संदर्भ के रूप में प्रयुक्त किया गया है।
- संदर्भिका के मुख्य भाग में अधिकतर उन ग्रंथों की सूची दी जाती है जिनका शोध प्रबंध में उपयोग किया गया है और वही संदर्भिका का मुख्य भाग है। अंतिम अध्याय के बाद ही संदर्भ ग्रंथों की सूची लगा देनी चाहिए, किन्तु कुछ लेखक संदर्भग्रंथों की सूची परिशिष्ट के बाद भी लगाते हैं। प्रत्येक ऐसा ग्रंथ, लेख , शोध प्रबंध अथवा पांडुलिपि जिसे शोधप्रंबध में संदर्भ के रूप में प्रयुक्त किया गया है, संदर्भ सूची में लिखा जाना चाहिए। संदर्भिका अकारादि क्रम में होना चाहिए। वर्तमान में अधिकतर लेखक एक व्यापक सूची के पक्ष में हैं जिसमें मूल और सहायक स्त्रोतों का भेद न कर व्यवस्थित रूप से एक ही क्रम में संदर्भिका दी जाती है। संदर्भ देने के कोई विशेष नियम नही हैं। शोध प्रबंध में पाद टिप्पणी देने की प्रविधि ही संदर्भ देने की प्रविधि को प्रभावित करती है परन्तु संदर्भिका में संगति और स्पष्टता भी होनी चाहिए।

संदर्भिका में विराम चिह्नों और व्यवस्था का उपयोग पाद टिप्पणी से भिन्न रूप में किया जाता है। पाद टिप्पणी में लेखक का नाम उसी क्रम में दिया जाता है, किन्तु संदर्भिका में उपनाम मुख्य नाम से पूर्व दिया जाता है। यह इनकी व्यवस्था का ही अंतर है। पाद टिप्पणी का मुख्य उद्देश्य वक्तव्य के स्त्रोत के विशिष्ट स्थान को बताना है जिसमें ग्रंथ का सही पृष्ठ भी दिया जाता है, जिससे सूचना की विश्वसनीयता की जाँच पड़ताल की जा सके, किन्तु सदर्भिका में समूचे ग्रंथ को ही अंकित किया जाता है। उसके किसी विशेष भाग को नहीं, जिसे संदर्भ के रूप में उद्धृत किया गया है। इसलिए संदर्भिका में पाद टिप्पणी में दिए गये संदर्भ की पुनरावृत्ति आवश्यक नही होती है।

संदर्भ मे जो आवश्यक सूचना दी जानी चाहिए वह इस प्रकार है:–

लेखक का नाम

पुस्तक का शीर्षक

प्रकाशन का विवरण–दिनांक ,स्थान व प्रकाशक का नाम।

यदि किसी पत्रिका के लेख का उदाहरण दिया गया है तो उसमें उसके प्रकाशक का नाम और प्रकाशन का स्थान देने की आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि इस प्रकार की महत्वपूर्ण पत्रिकाओं की जानकारी पहले से ही रहती है।

इसी प्रकार अन्य संदर्भ में ग्रंथों के अनुवाद ही आते हैं। अनूदित ग्रंथों को स्पष्ट अंकित करना चाहिए जिसमें मूल ग्रंथ का नाम भी दिया गया हो। अप्रकाशित ग्रंथों का भी स्पष्ट उल्लेख करना चाहिए और उनके स्त्रोतों को भी अंकित कर देना आवश्यक है। इसी प्रकार यदि किसी अन्य शोध प्रबन्ध से भी संदर्भ ग्रहण किये गये हैं तो उन्हें भी स्पष्ट अंकित करना आवश्यक है।

संदर्भ शोध प्रबंध का आवश्यक अंग है, क्योंकि यही उसकी प्रामाणिकता का भी प्रतीक है। अतएव इसमें एकरूपता और वैज्ञानिकता का ध्यान रखना आवश्यक है।

संदर्भिका सम्बन्धी कुछ आवश्यक सुझावः–

- संदर्भिका के मुख्य शीर्षक पृष्ठ के ऊपरी भाग में लिखे जाना चाहिए जिसमें विराम चिह्नों अथवा रेखा का प्रयोग आवश्यक हो।
- सदंर्भिका के प्रत्येक पृष्ठ को संख्याबद्ध रखना चाहिए। जिन ग्रंथों से शोध प्रबन्ध में उद्वरण दिये गये है, संदर्भिका मे उन सभी ग्रंथो का समावेश आवश्यक है।
- अकारादि क्रम और ऐतिहासिक अनुक्रम में उन संदर्भ ग्रंथों को एकरूपता की दृष्टि से अंकित करना वैज्ञानिक होगा, क्योंकि अकारादि क्रम में संदर्भ देखना सुविधाजनक होता है। प्रत्येक पुस्तक के संदर्भ में लेखक का नाम, पुस्तक का नाम, शीर्षक, प्रकाशन का स्थान और दिनांक तथा प्रकाशक का नाम और दिनांक लिखना चाहिए।
- प्रत्येक पत्रिका का संदर्भ देते समय लेखक का नाम, लेख का शीर्षक, पत्रिका का शीर्षक और उसकी अंक संख्या, प्रकाशन का दिनांक और पत्रिका का पृष्ठ क्रमांक देना आवश्यक है।
- संदर्भिका को उसके उचित स्थान पर रखना चाहिए। इसे शोध प्रबंध और परिशिष्ट के बीच में अथवा सबसे अंत में रखा जाता है। इसमें किसी भी विधि को प्रयुक्त करने की शोधार्थी को स्वतन्त्रता है।

विद्यार्थियों की जानकारी के लिए संदर्भ उल्लेख कार्ड के कुछ नमूने उद्धरण के रूप में डॉ. बैजनाथ सिंहल की पुस्तक 'शोध स्वरूप एवं मानक व्यावहारिक कार्यविधि' पृ. सं. 127 तथा 128 से दिए जा रहे है जो इस प्रकार है–

एक लेखकीय ग्रंथ

माथुर, गिरिजाकुमार 1 नयी कविता : सीमाएँ और संभावनाएँ,2 (दिल्ली 3 : अक्षर प्रकाशन,4 19635)

1. लेखक
2. ग्रंथ शीर्षक
3. प्रकाशन स्थान
4. प्रकाशक
5. प्रकाशन वर्ष

नोट्स के लिए स्थान ....

काल नं. 7443

B2

Huxely, Aldous, Literature and Science (New york: Harper & row, 1963)

878.5

a.4

द्विलेखकीय ग्रंथ

छबड़ा, गोविंदलाल तथा लक्ष्मण दत्त गौतम कहानीकार भगवती प्रसाद वाजपेयीःसंवेदना तथा शिल्प, (दिल्ली : आदर्श साहित्य प्रकाशन, 1972)

580-4 C.4

Wellek rene and Austen Warren, Theory of Literature, (Australia : Penguin) Boks LTd, 1963)

918.14

G .5

....
....
....
....
....
....

प्रकाशन वर्ष न होने पर : जिस गंथ में प्रकाशन वर्ष न दिया गया हो, उसमें जैसा कि पहले बताया जा चुका है 'ति0 न0' (तिथि नहीं) लिखना चाहिए; लेकिन ध्यान रहे कि 'ति0 न0' कोष्ठक के बाहर लिखना चाहिए, यथा :

(डॉ.) नगेन्द्र, पाश्चात्य काव्यशास्त्र : सिद्धांत और वाद
(दिल्ली : हिन्दी वि0, दिल्ली विश्वविद्यालय) ति0 न0
....
....
....
....
288.3........................
k.2................................

3.8 परिशिष्ट (अन्यसूची):–

परिशिष्ट शब्द का कोषगत अर्थ है– छुटा हुआ, बचा हुआ आदि अर्थात् परिशिष्ट उस अतिरिक्त, किन्तु आवश्यक सूचनात्मक सामग्री को कहते है जो मूल प्रबंध में स्थान नही पा सकी। किसी कवि की रचना का परिशीलन करते हुए प्रायः देखने में आता है कि उसकी परिस्थिति अथवा व्यक्तित्व का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। ऐसी स्थिति में कवि की परिस्थितियों से उत्पन्न उसका व्यक्तित्व मूल प्रबन्ध का विषय नहीं होता है, तथापि परिशिष्ट में उसे प्रस्तुत करके शोधक अपनी बात के समर्थन में पाठकों के सम्मुख उसका वह व्यक्तित्व भी उद्घाटित कर देता है जिसके प्रभाव में उक्त प्रवृत्ति का काव्य लिखा गया होगा।

इस प्रकार की सूची बनाते हुए उन ग्रन्थों के नाम लिखे जाते हैं, जिनको अध्ययन का आधार बनाया जाता है। उदाहरणार्थ– यदि उपन्यासों से सम्बन्धित कोई शोध प्रबन्ध लिखा गया हो और उसमें एक निश्चित काल सीमा या वाद सीमा में आने वाले उपन्यासों का परिशीलन किया गया हो, तो वे सब उपन्यास आलोच्य ग्रन्थों की सूची में आयेंगे। इनकी अकारादि क्रम से सूची बनाने ढंग निम्नानुसार होगा–

- पाप और पुण्य, गुरूदत्त नई दिल्ली, भारतीय साहित्य सदन 1978 प्रथम संस्करण।

- लाल पसीना, अभिमन्यु अनन्त, नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन, 1977 प्रथम संस्करण

ग्रन्थ सूची का द्वितीयांश सहायक सामग्री की सूची होती है, इसमें (क) प्रकाशित ग्रंथ, (ख) अप्रकाशित ग्रंथ, (ग) पुरातन पाण्डुलिपियाँ, (घ) अनेकखण्डीय पुस्तकों में से प्रयुक्त अंश, (ड.) विश्वकोष (च) पुस्तिकाएँ तथा संपादित पत्र पत्रिकाएँ, (छ) राजकीय प्रकाशन के प्रयुक्त अंश (ज) संपादित ग्रंथ में संकलित लेख, (झ) साक्षात्कार, (ण) अभिमत अथवा पत्र व्यवहार आदि के क्रम में एक दीर्घ सूची जुटाई जाती है। ग्रंथों और संदर्भों की यह सूची इतनी महत्वपूर्ण नहीं होती है कि मूल प्रबन्ध में प्रयुक्त कोई भी उदाहरण, पाद टिप्पणी या संदर्भ इस सूची में अन्तर नहीं रहता। इसमें सूची बनाने का क्रम मनमोहन सहगल की पुस्तक 'हिन्दी शोध तंत्र की रूपरेखा' में निम्नानुसार दिया गया है–

उदाहरण स्वरूपः–

(क) प्रकाशित ग्रंथः–

- द्विवेदी, हजारीप्रसाद / कबीर / दिल्ली / राजकमल प्रकाशन / 1971 / प्रथम संस्करण।
- मदान, इन्द्रनाथ तथा राकेश वत्स / कहानी और समीक्षा का मूल्यांकन / दिल्ली नेशनल पब्लिशिंग हाउस / 1974 / प्रथम संस्करण।

(ख) अप्रकाशित ग्रंथ

इनमें वे शोध प्रबन्ध आदि सम्मिलित हैं, जो मुद्रित रूप में अभी उपलब्ध नहीं। अप्रकाशित विश्वविद्यालयीय पुस्तकालय में देखे जा सकते हैं। इनकी सूची बनाते समय शोध प्रबन्ध का शीर्षक उद्धरण चिह्नों के बीच रेखांकित रखा जाता है। उदाहरण स्वरूप–

- शर्मा, विमलेश कुमारी। "हिन्दी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में नारी की यौनकुण्ठा का अध्ययन।" अप्रकाशित शोध ग्रंथ / पंजाबी विश्वविद्यालय / 1975।

(ग) प्राचीन पाण्डुलिपियाँ

पुरानी हस्तलिखित रचनाएँ जो पुस्तकालयों, संग्रहालयों अथवा पुरातत्व विभाग

में देखी गई हों। इनकी सूची बनाते समय अग्रांकित ढंग प्रयोग में लाया जाना चाहिए–

- जातीराम /सुदामा मंगल/ गुरुमुखी पाण्डुलिपि/20 वीं शती वि./महाराजा पटियाला का निजी संग्रह मोती बाग पुस्तकालय/पाण्डुलिपि सं. 137।

(घ) अनेकखण्डीय पुस्तकों में से प्रयुक्त अंष

इस प्रकार के ग्रन्थों की सूची बनाते समय नाम के साथ अल्पविराम लगाकर खण्ड संख्या दें, शेष नियम प्रकाशित ग्रंथों की तरह ही रहते हैं यथा–

- साहित्य कोष, खंड 2/बनारस/ज्ञोन मण्डल/1963/ संस्करण ।

(ङ.) विश्वकोश

विश्वकोश में से सहज ही कुछ शब्दों की व्याख्याएँ अथवा सम्बन्धित सामग्री प्राप्त की जाती है। समूचे विश्वकोश में कोई सम्बन्ध नहीं हों सकता। ऐसी स्थिति में उन लेखों की सूची विश्वकोश के खण्डों को संदर्भ सूची में जुटाना चाहिए। यथा–

- नारायण, अवध किषोर तथा जय प्रकाश/'गुप्त वंश'/हिन्दी विश्वकोश (1963) खंड 3 /वाराणसी/नागरी प्रचारिणी सभा/प्रथम सं.।
- मिश्र, हृदयनारायण/ बहुदेववाद हिन्दी विश्वकोश (1967) खंड 8 / वाराणसी नागरी प्रचारिणी सभा/संस्करण प्रथम।

(च) पुस्तिकाएँ तथा पत्र–पत्रिकाएँ

इसमें से भी कुछ ही अंशों का अवलोकन किया जाता है। इसलिए इनकी सूची बनाते समय हुए भी संदर्भाशों का संकेत साथ मे दिया जाना चाहिए। सूची में लेख का नाम उद्धरण–चिह्नों में और पत्रिका का शीर्षक रेखांकित होता है। उसके बाद प्रकाशन वर्ष हिन्दी आकड़ों में और पत्रिका की अंक–तिथि देना अपेक्षित है। यथा–

- सहगल मनमोहन/गुरु रविदास सम्बन्धी अन्तः कथाएँ : विश्लेषण एवं मूल्यांकन/पंजाब सौरभ/वर्ष 2/मई जून 1977) पृ.16।

(छ) राजकीय प्रकाशनो में प्रयुक्त अंश

सूची बनाते हुए इस कोटि को अलग रखकर इसके संदर्भों का उल्लेख किया जाना चाहिए यथा–

- शुक्ल, केसरी नारायण। 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' में हिन्दी साहित्य में शुक्लजी का स्थान। (प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय) नई दिल्ली। भारत सरकार। जून 1968।

उपर्युक्त उदाहरण में पुस्तिका का नाम उद्धरण चिह्नों में तथा लेख का रेखांकन होता है।

(ज) **संपादित ग्रंथो में संकलित प्रयुक्त लेख**

इसकी सूची में पहले लेखक फिर उद्धरण–चिह्नों में पुस्तक का नाम और रेखांकित लेख का नाम देना चाहिए। तदोपरान्त संपादक का नाम तथा अन्य जानकारी दी जाती है।

(झ) **साक्षात्कार**

शोधार्थी जिन विद्वानों का साक्षात्कार करता है, उन्हें भी उद्धृत अवश्य करता है। ऐसे में संदर्भ सूची में उनसे किए गये साक्षात्कारों की सूची निम्नानुसार बनाई जानी चाहिए–

- द्विवेदी, हजारी प्रसाद, भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी। साक्षात्कार 8 दिस्मबर ,1974 को , सन्त साहित्य मे परोक्ष सत्ता के सम्बन्ध में।

(ण) **अभिमत एवं पत्र व्यवहार आदि**

साक्षात्कार की ही तरह यदि कुछ विद्वानों के पत्रांश या अभिमत शोध प्रबन्ध में उद्धृत किये जायें तो उनकी संदर्भ सूची निम्न प्रकार बनाई जानी चाहिए– नगेन्द्र (डॉ.) पत्र द्वारा अभिमत /सितम्बर 1975/हिन्दी में शोध की स्थिति के सम्बन्ध में। शर्मा, विनय मोहन/व्यवहार /जून 1975/ हिन्दी में शोध प्रगति के सबंध में।

(ट) **अनुक्रमणिकाएँ**

इस प्रकार की संदर्भ सूची परिशिष्ट का दूसरा अंग तैयार करती है। इसके उपरान्त विषयानुक्रमणिका तथा नामानुक्रमणिका बनाई जाती है। कुछ विद्वान इन्हें परिशिष्ट का दूसरा अंग मानते हैं। कुछ अन्य का मत है कि ये अनुक्रमणिकाएँ शोध प्रबन्ध का अलग अंग है। जो भी हो, शोध प्रबन्ध में इनको स्वीकार किया जाता है। समूचे शोध प्रबंध में आए हुए विषयों को अकारादि क्रम में व्यवस्थित करके उनके सम्मुख शोध प्रबंध के उन सभी पृष्ठों की क्रम संख्या दी जाती है जिन पर उस विषय से सम्बन्धित कोई चर्चा हुई है। यह सूची विषयानुक्रमणिका कहलाती है। नामानुक्रमणिका के समय शोध प्रबन्ध में प्रयुक्त हुई संज्ञाओं की अकारादि क्रम से सूची तैयार की जाती है और प्रत्येक संज्ञा शब्द के सम्मुख प्रबन्ध के उन सभी पृष्ठों के आंकड़े दिए जाते है जिन पर वह शब्द प्रयुक्त हुआ होता है।

3.9 सारांश–

शोध प्रकिया में सर्वप्रथम शोध विषय की रूपरेखा का निर्धारण अनिवार्य है। रूपरेखा का निर्धारण युक्तिसंगत व क्रमबद्ध होना चाहिए। विद्यार्थी को शोध विषय को आगे बढ़ाने

की स्थिति में तथ्य को संकलित करना होता है। तथ्यों के माध्यम से वह नए सत्यों का उद्घाटन करता है। तथ्यों के तर्कसंगत निर्वाह से ही विषय प्रतिपादन से लेकर उपलब्ध निष्कर्षों में मौलिकता दिखाई पड़ती है। प्रायः यह समझा जाता है कि वर्गीकरण का अर्थ है तथ्यों को अलग अलग वर्गो में बाँटना या विभाजित करना और यह कार्य हम तथ्य संकलन के बाद करते हैं। सिद्धान्तः तथ्य–संकलन के बाद ही वर्गीकरण किया जाता है, पर शोध कार्य के आरम्भ के साथ ही विषय निर्वाचन से लेकर तथ्यों के संग्रह से भी वर्गीकरण की प्र.ति हममें अप्रत्यक्ष रूप से कार्य करती है।

शोधार्थी अपने शोध की नवीन स्थापनाओं को तथ्यों की विश्लेषण प्रक्रिया से गुजर कर स्थापित करता है। तथ्य संकलन के बाद उनका विश्लेषण करना आवश्यक है। तथ्य विश्लेषण तभी सही व तर्कसंगत होता है जब इस विश्लेषण में प्रयुक्त चिंतन लक्ष्य की ओर उन्मुख हो। तथ्यों के विश्लेषण से अभिप्राय तथ्यों की वैचारिक इकाई की दृष्टि से मूल्यांकन प्रकिया से है जिसमें पर्याप्त चिन्तन–मनन की आवश्यकता रहती है। तथ्यों के इस प्रकार सम्यक विश्लेषण पर कोई नया सत्य अवश्य उद्घाटित हो, ऐसा कोई निश्चित नियम नहीं है क्योंकि शोधार्थी तो सत्य की खोज को परिकल्पित और संभाव्य रूप से मानकर चलता है। यह प्रयोग असफल भी रह सकता है।

उद्धरण निष्कर्षों तक पहुँचने के लिए विषय प्रतिपादन नें ठीक वैसे ही अपरिहार्य होते हैं जिस प्रकार विज्ञान के क्षेत्र के शोध में स्थूल उपकरण व पूर्व प्राप्त सिद्धान्त। उद्धरण का उपयोग किसी तथ्य या अभिमत के समर्थन हेतु सर्वश्रेष्ठ प्रमाण के रूप में किया जाता है। उद्धरण टीप कार्ड बनाने की भलीभाँति जानकारी विद्यार्थी को होनी चाहिए।

पाद टिप्पणी उद्धरणों की प्रामाणिकता को सिद्ध करती है। पाद टिप्पणी का सामान्य अर्थ है– शोध प्रबन्ध के प्रत्येक पृष्ठ भाग में उस पृष्ठ पर प्रयुक्त उद्धरणों के स्त्रोत ग्रंथों के पूर्ण विवरण का प्रस्तुतीकरण। संदर्भ ग्रंथ सूची और पादटिप्पणी में स्त्रोत ग्रंथोल्लेख में बहुत कम अन्तर करना होता है। मोटे तौर पर यह अन्तर लेखक के नाम को लेकर ही दिखाई पडता है। संदर्भ ग्रंथ सूची में लेखक का नाम उलटा कर लिखना होता है जबकि पादटिप्पणी में वह सीधे रूप में ही उल्लेख रहता है। उदाहरण के लिएः–

- **संदर्भ ग्रंथ सूचीः**– माथुर, गिरिजाकुमार,नई कविताः सीमाएँ और संभावनाएँ। (दिल्ली :अक्षर प्रकाशन,1963)
- **पाद टिप्पणीः**– गिरिजाकुमार माथुर, नई कविता : सीमाएँ और संभावनाएँ (दिल्ली : अक्षर प्रकाशन,1963) पृ0, 35

शोध प्रक्रिया का एक भाग परिशिष्ट का निर्माण करना भी है। परिशिष्ट वह शेष सामग्री होती है जो मूल प्रबन्ध में स्थान नहीं पा सकी है, परन्तु विद्यार्थी की जानकारी के लिए उपयोगी होती है।

3.10 संदर्भ ग्रन्थ

- मिश्र डॉ. राजेन्द्र – अनुसंधान की प्रतिनिधि और प्रकियाः तक्षशिला प्रकाशन, अन्सारी रोड दरियागंज नई दिल्ली।
- सिंहल बैजनाथ – शोध स्वरूप एवं मानक व्यवहारिक कार्यविधिः प्रथम संस्करण 1995 नई दिल्ली।
- बोरा राजमल– अनुसंधान : प्रविधि और क्षेत्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1995 नई दिल्ली।
- शर्मा डॉ.विनय मोहन – शोध प्रविधि, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 10 प्रथम संस्करण 1973 दरियागंज नई दिल्ली।
- सहगल डॉ. मनमोहन :– हिन्दी शोध–तन्त्र की रूपरेखा– पंचशील प्रकाशन द्वि. संस्करण 1989, जयपुर।

3.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

- शोध विषय की रूपरेखा का निर्धारण करते समय किन–किन स्तरों से गुजरना पड़ता है? वर्णन कीजिए।
- तथ्य किसे कहते हैं? साहित्यिक तथ्य व सामाजिक तथ्य के मध्य अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
- तथ्यों के वर्गीकरण की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
- उद्धरण किसे कहते हैं? उद्धरण टीप कार्ड की प्रयोग विधि पर चर्चा कीजिए।
- उद्धरण देने की विधियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
- पाद टिप्पणी का अर्थ एवं प्रयोजन स्पष्ट कीजिए।
- संदर्भ लेखन व पाद टिप्प्पणी में ग्रंथोल्लेख के संदर्भ में क्या अंतर है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
- संदर्भिका (संदर्भ ग्रंथ सूची) सम्बन्धी व्यवस्थापन बिन्दुओं को लिखिए।

□

इकाई– 4 शोध और आलोचना

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 शोध और आलोचना

4.2.1 शोध क्या है ?

4.2.2 आलोचना क्या है ?

4.2.3 शोध की उपयोगिता

4.2.4 शोध का उद्देश्य

4.2.5 आलोचना का उद्देश्य

4.3 शोध और आलोचना में अन्तर

4.3.1 उद्देश्यगत अन्तर

4.3.2 पद्धतिगत अन्तर

4.3.3 धात्वर्थ की दृष्टि से अन्तर

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.0 उद्देश्य :

शोध का स्वरूप एवं प्रविधि में अब तक आप तीन इकाईयों का अध्ययन कर चुके हैं। यह चौथी इकाई है। आप इस इकाई में अनुसंधान और आलोचना का विश्लेषण पढ़ेंगे। शोध या अनुसंधान का हर क्षेत्र में बहुत महत्त्व है। ज्ञान के संशोधन में अनुसंधान का विशेष उपयोग है। आज समालोचना भी अनुसंधान के बहुत निकट की विधा बन चुकी है। आज यह भी माना जाने लगा है कि साहित्यिक रचनाओं के सत्यों, मूल्यों और कलात्मक सौन्दर्य को प्रकट करने के लिए शोध की दृष्टि से आलोचना करना बहुत आवश्यक है। किसी भी साहित्यिक रचना के सौन्दर्य की व्याख्या करना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उस सौन्दर्य के कारणों, स्थितियों और आधारों का पता लगाना भी आवश्यक माना जाने लगा है। इन बातों को समझे बिना रचना–सौन्दर्य कोई अर्थ नहीं रखता।

आलोचक कलात्मक मूल्य को चुनौती देता है, आलोच्य कृति के विषय में अनेक प्रश्न खड़े कर देता है। उसकी यही शोध–दृष्टि आलोचना को सही दिशा में आगे बढ़ाती है। अतः आलोचना को विश्वसनीय बनाने के लिए शोध की बहुत उपयोगिता है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- अनुसंधान और आलोचना को परिभाषित कर सकेंगे,
- अनुसंधान और आलोचना के पारस्परिक साम्य–वैषम्य को स्पष्ट कर सकेंगे,
- अनुसंधान और आलोचना की पद्धतियों का विश्लेषण कर सकेंगे,
- अनुसंधान और आलोचना के साहित्यिक महत्त्व को समझ सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

आपने इकाई एक में शोध की परिभाषा व स्वरूप का अध्ययन किया। इससे आपको शोध के अर्थ एवं उद्देश्य के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो गई। इस इकाई में हम साहित्य में अनुसंधान और आलोचना की उपयोगिता पर प्रकाश डालेंगे। साथ ही अनुसंधान और आलोचना के पारस्परिक साम्य–वैषम्य को भी स्पष्ट करेंगे। क्या शोध समीक्षा है? क्या समीक्षा शोध नहीं है ? इन प्रश्नों के उत्तर भी हम इस इकाई में खोजने का प्रयास करेंगे। इन प्रश्नों का उत्तर जानने के लिए हमें सर्वप्रथम शोध और आलोचना के अर्थ एवं महत्त्व को समझना होगा।

4.2 शोध और आलोचना

अनुसंधान और आलोचना दोनों साहित्य के अविभाज्य अंग हैं। दोनों की पद्धतियाँ भी मिलती–जुलती हैं। जब कोई समालोचक आलोच्य विषय के अध्ययन में साहित्य शास्त्र के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों का सहारा लेता है तो वह आलोचक अपनी रचना को अनुसन्धानात्मक बना देता है। शोध, समीक्षा नहीं है पर उसमें समीक्षा का अंश रहता है। जब तथ्यों का विश्लेषण किया जाता है तब उनका मूल्यांकन भी किया जाता है। इस दृष्टि से शोध में समीक्षा का समावेश अवश्यम्भावी हो जाता है। अनुसन्धान की शैली में आलोचना के गुण भी होने चाहिए तभी सुष्ठु प्रतिपादन सम्भव हो सकता है और आलोचना की शैली में अनुसन्धानात्मक पद्धति को ग्रहण किया जाए तो आलोचना का प्रभाव बढ़ जाता है। शोध और आलोचना के साहित्यिक उपयोग तथा साम्य–वैषम्य को जानने के पहले आइए हम शोध और आलोचना क्या है? इसका विश्लेषण करते हैं।

4.2.1 शोध क्या है?

हिन्दी में अनुसंधान के कई पर्यायवाची शब्द हैं – शोध, खोज, अन्वेषण, गवेषणा एवं अनुशीलन। ये सभी शब्द अनुसंधान के लिए प्रयुक्त होते हैं, किन्तु शब्दार्थ की दृष्टि से प्रत्येक शब्द का अपना अलग अर्थ है। यहाँ हम 'शोध' शब्द का विवेचन करेंगे। 'शोध' शब्द में ज्ञान की शुद्धि का भाव रहता है। शोधकर्ता विस्तृत ज्ञान को पुनः प्रकाश में

लाकर उसे शुद्ध रूप में प्रस्तुत करता है। अद्यावधि प्राप्त ज्ञान से उस विस्मृत ज्ञान का सम्बन्ध जोड़कर वह ज्ञान का विस्तार करता है। ज्ञान की क्रमबद्धता और शुद्धि तथा उसके सत्य का जीवनोपयोगी पक्ष शोधकर्ता की दृष्टि में रहता है।

शोध किसी भी साहित्यिक विषय का ऐसा सर्वांगीण, सुव्यवस्थित तथा वैज्ञानिक अनुशीलन होता है जिसमें शोधार्थी किसी विशिष्ट उद्देश्य को लक्ष्य करते हुए उपलब्ध तथ्यों का निरीक्षण, परीक्षण तथा समुचित व्याख्या करता है। 'अनुसंधान' शब्द उस क्रिया तथा प्रक्रिया का द्योतक है जिसमें अनेक प्रकार के तथ्यों का एकत्रीकरण और अनेक आधारों पर व्यापक निष्कर्ष निकालना सम्मिलित है। इस शब्द में प्रकृति के अनुसार पूछताछ, जाँच, गहन निरीक्षण, व्यापक परीक्षण, योजनाबद्ध अध्ययन, सोद्देश्य एवं तत्परता युक्त सामान्य निर्धारण आदि की प्रक्रियाएँ महत्त्वपूर्ण हैं।

अनुसंधान कोई ऐसी प्रक्रिया नहीं है जो केवल धरातल पर ही खोजबीन करे। इसमें गहन निरीक्षण की प्रधानता होती है। दूसरा मुख्य विचार समस्या का विशिष्टीकरण है। इस प्रकार अनुसंधान एक सुसीमित क्षेत्र में किसी समस्या का सर्वांगीण विश्लेषण है। समस्या का प्रारम्भ जिज्ञासा से होता है और जिज्ञासु व्यक्ति ही अनुसंधान–कार्य सफलता से कर सकता है।

इस प्रकार शोध नूतन ज्ञान की प्राप्ति तथा उपलब्ध ज्ञान की व्याख्या करता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है। जिसमें तथ्यों का अवलोकन, आकलन, वर्गीकरण, साधारणीकरण तथा सत्यापन आदि चरण क्रमबद्ध रूप में विद्यमान होते हैं।

4.2.2 आलोचना क्या है?

आलोचक साहित्यकार का पथप्रदर्शक होता है और आलोचना साहित्य का निर्धारित मार्ग। आलोचना का लक्ष्य है साहित्य को परखना, उसके गुण–दोषों को खोजकर उसके अन्दर से निकालना, दोषों को दूर करने के लिए सुझाव प्रस्तुत करना, साहित्य की सामान्य विशेषताओं की रूपरेखा निर्धारित करना और अन्त में अपना मत प्रकट करना तथा सहानुभूति के साथ सम्मानपूर्वक उसका मूल्यांकन करना।

मनुष्य स्वभावतः किसी भी वस्तु के परीक्षण के **पश्चात्** उसकी आलोचना करता हुआ अपना मत प्रस्तुत करता है। यही प्रवृत्ति साहित्य में आलोचना या समालोचना कहलाती है।

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार, "सच्ची समालोचना वह है, जिसमें आलोचक इतिहास एवं तुलना का आधार लेकर वस्तु के बाह्य और आन्तरिक दोनों पक्षों की व्याख्या करता है। यह व्याख्या वैज्ञानिक शैली में की जाती है। आलोचना में आलोचक सिद्धान्तों का निर्माण और आलोच्य वस्तु का मूल्यांकन करता है।"

हिन्दी में आलोचना शब्द का प्रयोग 'समीक्षा, समालोचना, विवेचना' आदि पर्याय शब्दों के रूप में अंग्रेजी शब्द 'क्रिटिसिज्म' का हिन्दी रूपान्तर है। यह अंग्रेजी का ही रूपान्तर

नहीं है, बल्कि हिन्दी में यह संस्कृत से आया है। संस्कृत में आलोचना शब्द 'लुच' धातु से बना है। 'लुच' धातु का अर्थ होता है देखना। इसमें 'ल्यु' प्रत्यय जोड़ने से 'लोचन' शब्द बना है, जिसमें 'आङ्' उपसर्ग लगाने से 'आलोचना' शब्द की व्युत्पत्ति होती है। शब्दगत अर्थ की दृष्टि से आलोचना की अपेक्षा 'समालोचना' अथवा 'समीक्षा' शब्द अधिक उपयुक्त है। समालोचना का अर्थ है सम्यक् आलोचना, भली–प्रकार देखना। समीक्षा का अर्थ है – देखना, परखना अथवा सम्यक् ईक्षा। इस प्रकार आलोचना का अर्थ है – किसी वस्तु अथवा पदार्थ का सम्यक् दृष्टि से पर्यवेक्षण करना। आरम्भ में इसका अर्थ छिद्रान्वेषण ही माना गया था, किन्तु बाद में इसका अर्थ निर्णय के रूप में स्वीकार किया गया जो अंग्रेजी शब्द के "क्रिटिसिज्म" से अधिक निकट है।

'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' के अनुसार, "समालोचना का अर्थ वस्तुओं के गुण–दोष की परख करना है, चाहे वह परख साहित्य के क्षेत्र में की गयी हो अथवा ललित–कला के क्षेत्रों में। इसका विकास स्वरूप–निर्णय में सन्निहित रहता है।"

डॉ. सीताराम चतुर्वेदी के अनुसार, "समीक्षा वह तात्विक प्रक्रिया है, जिसमें मनुष्य कुछ दर्शनीय पदार्थ देखने की इच्छा करे और देख चुकने पर जो द्रष्टव्य है उसे दूसरों को भी दिखा दे।"

इस प्रकार आलोचना में तीन बातें मुख्य हैं – अर्थ का स्पष्टीकरण, विषय का वर्गीकरण तथा निर्णय की प्रधानता। इसका उद्देश्य जनता और लेखकों की रूचि का संशोधन करना है। समालोचना का वास्तविक अर्थ यही है कि वह इतिहास और तुलना का आधार लेकर वस्तु के बाह्य और आन्तरिक पक्षों की वैज्ञानिक शैली में व्याख्या करते हुए आलोच्य वस्तु का मूल्यांकन करे।

4.2.3 शोध की उपयोगिता :

शोध का हर क्षेत्र में बहुत महत्त्व है। ज्ञान के क्षेत्र में तो इसकी सर्वाधिक आवश्यकता है, क्योंकि शिक्षा का मुख्य कार्य केवल ज्ञान का प्रसार करना ही नहीं है, बल्कि ज्ञान को शुद्धता की कसौटी पर कसते चलना भी है। इस दृष्टि से शोध या अनुसंधान की ज्ञान के संशोधन में बहुत उपयोगिता है। शोध के बिना साहित्य के विविध विषयों को समझ पाना कठिन है। शोध ही आलोचना को विश्वसनीय एवं उपयोगी बनाता है। शोध के द्वारा ही हम रचना के मूल में छिपे आनन्द तक पहुँचते हैं। आलोचना को किसी मर्म तक शोध के द्वारा ही पहुँचाया जा सकता है। साहित्य की दीवार भाषा पर खड़ी है। विशेष भाषा का प्रयोग करके ही साहित्यकार अपनी रचना में कोई अर्थ भर सकता हैं सामान्य भाषा साहित्य नहीं बन सकती है। जब भाषा के विशेष प्रयोग की ओर कोई कवि या लेखक बढ़ता है, तब उसके हर शब्द के पीछे उसके मन की एक भूमिका रहती है। शोधकर्ता इस भूमिका को स्पष्ट करता है और तभी पाठक एवं आलोचक भी रचना को सही ढंग से समझ पाते हैं । इस प्रकार शोध के द्वारा ही हम रचना करने वाले की

भाषा के सही प्रयोग तक पहुँचते हैं। यदि ऐसा न हो तो रचना और रचनाकार दोनों के प्रति अन्याय होने का खतरा बना रहता है। साहित्य के सही अर्थ और भाषा के सही प्रयोग को समझने के लिए शोध की बहुत उपयोगिता है। शोध के द्वारा हम रचना के उन पक्षों पर भी विचार कर लेते हैं। जिनका रचना से सीधा संबंध तो नहीं होता, किन्तु जिनको जाने बिना रचना के भाव को पूर्ण रूप से ग्रहण नहीं किया जा सकता है। रचना के शुद्ध लिखित रूप का निर्णय भी शोध के बिना सम्भव नहीं है। रचना करने वाला सदा जीवित नहीं रह सकता और जीवित भी हो तो हर किसी को वह मिल नहीं सकता। अतः शोध करने वाला ही रचना के सही पाठ का निर्णय करता है। अतः शोध की साहित्य के क्षेत्र में बहुत उपयोगिता है।

4.2.4 शोध का उद्देश्य

शोध एक निरन्तर प्रक्रिया है। जिस प्रकार ज्ञान की कोई सीमा नहीं होती है, उसी प्रकार शोध का भी कोई सीमित या निश्चित उद्देश्य नहीं होता है। शोध का मुख्य उद्देश्य वस्तुओं और उनसे सम्बन्धित ज्ञान को उपयोगी बनाना है।

शोध नये ज्ञान को प्रकाश में लाता है तथा भ्रान्त धारणाओं को परिमार्जित करता है। शोध का परम उद्देश्य उन विचारों, भावों और अनुभवों का परिशोधन करना है, जो मानव जाति के कल्याण में सहभागी हो सकते हैं।

शोध निरन्तर अज्ञान को मिटाते हुए ज्ञान का प्रकाश फैलाने वाली प्रक्रिया है। अनुसंधान वैज्ञानिक विधियों द्वारा विशिष्ट प्रश्नों का उत्तर अथवा विशिष्ट समस्याओं का समाधान प्राप्त करता है। अनुसंधान का उद्देश्य उत्तर प्राप्ति की ओर निरन्तर अग्रसर होता है। सामाजिक विज्ञानों के ज्ञान–कोष के अनुसार, "अनुसन्धान वस्तुओं, प्रत्ययों तथा संकेतों आदि को कुशलतापूर्वक व्यवस्थित करता है, जिसका उद्देश्य सामान्यीकरण द्वारा विज्ञान का विकास, परिमार्जन अथवा सत्यापन होता है, चाहे वह ज्ञान व्यवहार में सहायक हो अथवा कला में" इस प्रकार अनुसंधान का उद्देश्य केवल नये सत्यों एवं नये सिद्धान्तों की खोज ही नहीं है, वरन पुराने सत्यो एवं पुराने सिद्धान्तों को नया कलेवर देना, पुराने नियमों को युगानुरूप नवीनता प्रदान करना, प्रदत्त एवं तथ्यों का नये सिरे से स्पष्टीकरण करते हुए उनमें व्याप्त अन्तर्सम्बन्धों का विश्लेषण करना भी सम्मिलित है।

4.2.5 आलोचना का उद्देश्य

बाबू गुलाबराय ने आलोचना के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि आलोचना का उद्देश्य कवि की सृष्टि – कृति का सभी दृष्टिकोणों से आस्वाद करके पाठकों को उनके आस्वादन में प्रेरणा देना है। समालोचना के द्वारा समालोचक निम्नलिखित उद्देश्य पूर्ण करते हैं :

- रचना का भावन और उसके रचयिता के उद्देश्य का उद्‌घाटन करना।

- रचना के गुण–दोषों का विवेचन करना। गुण प्रकाशन के साथ किसी भी कृति के दोषों की विवेचना इसलिए आवश्यक है, ताकि विकृत साहित्य के लेखन की प्रवृत्ति न पनप पाए।

- अच्छे साहित्य को सदा प्रोत्साहन देना और विकृत साहित्य का निराकरण करना तथा इस दृष्टि से रचना का मूल्यांकन करना।

- रचना की व्याख्या करके अपने मन पर पड़े उसके प्रभाव की विवेचना करना।

आलोचना के प्रयोजन – डॉ. गुलाबराय ने आलोचना के प्रयोजनों पर विचार करते हुए लिखा है, "आलोचना का मूल उद्देश्य कवि की कृति का सभी दृष्टिकोणों से आस्वाद कर पाठकों को उस प्रकार के आस्वादन में सहायता देना, उसकी रूचि को परिमार्जित करना एवं साहित्य की गतिविधि निर्धारित करने में योग देना है।" वस्तुतः आलोचना साहित्य का मार्ग ही प्रशस्त नहीं करती है वरन् उसका नियमन करती है।

आलोचना कवि अथवा लेखक और पाठक के मध्य की शृंखला है। संस्कृत के आचार्य राजशेखर ने "काव्य–मीमांसा" नामक ग्रन्थ में कवि–कर्म को प्रकाश में लाने को ही भावयित्री प्रतिभा अथवा आलोचक की प्रतिभा कहा है। आलोचना का कार्य–क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है, आलोचना भिन्न–भिन्न व्यक्तित्वों के अनुरूप भिन्न–भिन्न प्रकार की हो सकती है, परन्तु बिना प्रयोजन अथवा बिना उद्देश्य के आलोचना असम्भव है। इसलिए आलोचना का मूल उद्देश्य एक ही रहता है, वह है, कवि कर्म का प्रत्येक दृष्टि से मूल्यांकन करके उसे पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करना, उनकी रूचि परिष्कृत करना और साहित्य की गतिविधि निर्धारित करना।

अंग्रेजी समालोचक मैथ्यू अर्नाल्ड ने भी आलोचना के प्रयोजन पर अपने विचार व्यक्त किए हैं :

"आलोचना का कार्य ज्ञातव्य और ज्ञात बातों में उत्तम बातों को जानना और उन्हें दूसरों को बताना है तथा इस प्रकार सत्य एवं नवीन विचारों की धारा को प्रवाहित रखना है।"

इस प्रकार आलोचना का उद्देश्य एवं कार्य अतीव महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा सर्जनात्मक साहित्य का प्रसार होता है और पाठकों को काव्यगत रसास्वादन में सहायता मिलती है।

4.3 शोध और आलोचना में अन्तर

अभी तक आपने शोध और आलोचना के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की और यह भी जाना कि शोध और आलोचना दोनों साहित्य के अविभाज्य अंग हैं। शोध और आलोचना दोनों का विषय साहित्यिक कृति या कृतिकार होता है। दोनों के लिए निरीक्षण–विवेचन की अपेक्षा रहती है। दोनों के लिए प्रतिभा, ज्ञान और रूचि के समान तत्व आवश्यक होते हैं। दोनों के लिए विषय से सम्बन्धित सन्दर्भों की विस्तृत और व्यापक जानकारी आवश्यक होती है।

शोध और आलोचना ये दोनों शब्द अलग–अलग धात्वर्थ लिये हैं। इसीलिये दोनों को पूर्णतः एक ही अर्थ में स्वीकार करना शायद अनुचित होगा। इसमें सन्देह नहीं कि अनुसंधान की प्रक्रिया और आलोचना की प्रक्रिया बहुत दूर तक समानान्तर रहती है किन्तु दोनों में सैद्धान्तिक भेद है। अनुसंधान में तथ्यान्वेषण की प्रधानता होती है जबकि समालोचना में तथ्याख्यान प्रमुख होता है। समालोचक अगर शोध के विश्लेषणों से अपने कार्य को अलंकृत करता है, तो उसका कार्य निर्दोष हो जाता है, किन्तु जब शोधार्थी समालोचना की पद्धति और उसके स्तर तक अपने श्रम को सीमित कर देता है, तब वह जो भी निर्णय देता है, वे भ्रान्त हो जाते हैं तथा उनसे ज्ञान–परिधि विस्तार में सहायता उस सीमा तक नहीं मिलती, जिस सीमा तक शोध में मिलनी चाहिए।

यह सही है कि अनुसंधान और आलोचना दोनों साहित्य के अविभाज्य अंग हैं। दोनों की पद्वति भी बहुत कुछ मिलती–जुलती है किन्तु चूँकि आलोचना व्याख्या विवेचन द्वारा मर्म की अनुभूति देती है और अनुसंधान का उद्देश्य केवल ज्ञान–वृद्धि होता है, इसलिए दोनों में एक कभी न पट सकने वाला अन्तर सदैव विद्यमान रहता है। इस अन्तर को हम इस प्रकार अभिव्यक्ति प्रदान कर सकते हैं :

- उद्देश्यगत अन्तर
- पद्धतिगत का अन्तर
- धात्वर्थ की दृष्टि से अन्तर

4.3.1 उद्देश्यगत अन्तर

- आलोचना हमें किसी एक कृति या कृतिकार के समस्त कृतित्व से परिचित करा सकती है, किन्तु कृतित्व की सुदीर्घ परम्परा में उस कृति या कृतिकार का सत्य–विस्तार की दृष्टि से कितना महत्त्व है, यह बताना उसका उद्देश्य नहीं हैं। शोध ही हमें इस उद्देश्य तक पहुँचाता है।
- आलोचना के द्वारा हम किसी कृति का केवल ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं जबकि शोध में हम उस कृति की ज्ञान–क्षेत्रीय स्थापना का सत्य प्राप्त कर सकते हैं।
- साहित्य की परम्परा देश और काल के विस्तार के अनुसार विराट् और व्यापक है। उस परम्परा में किसी आलोचना के परिणाम से हम उसी प्रकार प्रसन्न या सहमत हो सकते हैं, जिस प्रकार किसी ग्रन्थ के किसी अंश को अपने मत के समर्थन के लिए उसे सन्दर्भ से तोड़कर अपने अर्थ में रखकर दूसरों को प्रभावित करना चाहते हैं। रावण के पाण्डित्य की तुलना में उसके अत्याचारी रूप को भूल जाते हैं। शोध का कार्य किसी उद्देश्य तक तभी पहुँचता है, जबकि रावण को उसके सभी सन्दर्भों में रखकर परखा जा सके।
- समालोचना जिस तथ्य की ओर जाती है, वह अपने में पूर्ण होने पर भी ज्ञान के विराट सन्दर्भ में अपूर्ण हो जाती है, जबकि शोध उसी अपूर्ण तथ्य को पूर्ण बनाता है।

- आलोचना का उद्देश्य काल एवं देश की सीमाओं से संकीर्ण है, जबकि शोध का उद्देश्य उनको लाँघकर विराट क्षेत्र से अपने सत्यों का संचय करना है।
- आलोचना का उद्देश्य किसी कृति या कृतिकार के महत्त्व को उठाना या गिराना भी हो सकता है, जबकि शोध का उद्देश्य उस महत्त्व को न उठाना है, न गिराना है, अपितु ज्ञान–विस्तार के क्षेत्र में रखकर उसका मूल्यांकन करना है।
- निष्पक्ष शोध का लक्ष्य होता है मानव–जीवन को आनन्दपूर्ण और सुन्दर बनाने वाले कृति–धर्म को प्रकाश में लाना, जिस तक आलोचना नहीं पहुँच पाती।

4.3.2 पद्धतिगत अन्तर

- शोध का सूत्रपात तब होता है जब शोधार्थी के मन में किसी विषय के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न या शंकाएँ उत्पन्न होती है या ऐसी समस्याएँ सामने आती हैं जिन्हें वह सुलझाना चाहता है। जबकि समालोचना इस स्थिति से आरम्भ ही नहीं होती।
- शोध में प्रश्न या शंका, समस्या आदि का एक ऐसा वस्तु–पर्वत शोधार्थी के सामने खड़ा होता है, जिसे वह पार कर लेना चाहता है और उसके फलस्वरूप वह एक निर्णय प्रस्तुत कर देता है। समालोचना में वस्तु–पर्वत समालोचक की प्रतिभा के नीचे दबा होता है, उसे उस पर विजय नहीं पानी होती और फलतः किसी मंजिल पर नहीं पहुँचना होता, अपितु यह सिद्ध करना है कि जो वस्तु या रचना उसकी प्रतिभा के कसाव में है, उसके समस्त विस्तार तथा निहित रचना–शक्ति को वह समझता है।
- समालोचक कृति के विषय–विस्तार और निहित रचना–शक्ति के सम्बन्ध में अपनी व्याख्याएँ देता है, जबकि शोधार्थी उन व्याख्याओं के सम्बन्ध में अपने मस्तिष्क में उठते प्रश्नों, शंकाओं और समस्याओं की ओर विशेष ध्यान देता है तथा उन्हीं के उत्तरों और समाधानों के लिए वस्तुनिष्ठ होकर अध्ययन में प्रवृत्त होता है।
- समालोचक का अपने निर्णयों के प्रति आग्रह होता है, किन्तु शोधार्थी आग्रह नहीं रख सकता। जब तक वह स्वयं अपनी पद्वति और निर्णयों को एक तटस्थ व्यक्ति बनकर चुनौती नहीं दे सकता और उत्तर में उन पद्धतियों तथा निर्णयों को चुनौती की कसौटी पर खरा नहीं पा सकता, तब तक उसका कार्य शोध के क्षेत्र में नहीं आता।
- आलोचक कृति और कृतिकार को अपनी दृष्टि से देखता है, जबकि शोधार्थी को अपनी दृष्टि की सीमाएँ अस्वीकार करके शोध्य विषय से प्राप्त ऐसी दृष्टियाँ अपनानी पड़ती हैं, जो उसे तो प्रामाणिक प्रतीत हों ही, साथ ही जो प्रत्येक व्यक्ति की अपनी दृष्टि बनने की सामर्थ्य भी रखती हो।
- आलोचक जहाँ अध्येय वस्तु को किसी भी स्तर पर किसी भी दृष्टि से देखने के लिए स्वतन्त्र होता है, वहाँ शोधार्थी पद–पद पर प्रयुक्त दृष्टि तथा दृष्टव्य वस्तु के प्रामाणिक सम्बन्ध के प्रति पूर्ण सावधान और सतर्क रहता है।

- शोधार्थी को अपने अध्ययन की प्रक्रिया से गुजरते समय जब कोई ऐसा उत्तर मिल जाता है, जो उसे व्यक्तिगत रूप से पर्याप्त प्रसन्न तो करता है, किन्तु वह उसकी अध्ययन–यात्रा का लक्ष्य नहीं है, तो वह उस उत्तर को अपनी उपलब्धि न मानकर कार्य में अग्रसर होने के लिए विवश हो जाता है, जबकि आलोचक उस प्रसन्नकारक उत्तर के ही आस–पास घूमकर अपने अध्ययन की इतिश्री मान लेता है।

- आलोचना की अपेक्षा शोध के निर्णय अधिक प्रामाणिक तथा वस्तुपरक पद्धति का अनुसरण करते हैं। उनमें वह शक्ति आ जाती है जिसके आधार पर शोध का समस्त अध्ययन तर्क के विषम आक्रमणों को झेलता हुआ अविश्वासों की अग्नि–परीक्षा में स्वर्ण–सा निखरता है, जबकि समालोचक का कार्य ऐसी किसी सिद्धि तक नहीं पहुँच पाता।

- समालोचक की रचना–प्रक्रिया अध्येय वस्तु (कृति) के पठन के पश्चात् मस्तिष्क में उतर आने वाली प्रतिक्रियाओं में प्रारम्भ हो जाती है और उन्हीं के विवेचन से वह पूर्ण भी हो जाती है, जबकि शोधार्थी की कृति के पठन के पश्चात् अपना लेखन कार्य प्रारम्भ करने के लिए शोध–प्रक्रिया के दीर्घ वृत्त पर घूमना पड़ता है।

- आलोचना में आलोचक के ज्ञान, रूचियों और पूर्वागत मान्यताओं का भी कृति पर प्रभाव पड़ता है। इसी कारण डॉ. नगेन्द्र ने समालोचक को अभिस्रष्टा कहा है। शोध पद्धति में वस्तुपरकता मुख्य है। जो शोध–कार्य वस्तुपरक नहीं, वह शोध –संज्ञा का अधिकारी ही नही है। प्रत्येक शोधकर्त्ता को पूर्वाग्रहरहित होना पड़ता है। वास्तव में शोध–कार्य एक न्यायाधीश की निर्णय पद्धति का अनुसरण करता है।

- समालोचक आत्म–साक्ष्य के आधार पर जो निर्णय लेता है, वे सदैव निर्दोष हों, यह आवश्यक नहीं है, किन्तु शोधार्थी शोध की वस्तुपरक पद्धति से काम लेने के कारण निर्दोष निर्णय देने के लिए बाध्य होता है।

- समालोचक की कार्य–पद्धति में आत्मपरकता अधिक होने से निष्पक्षता का अभाव रहता है, जबकि शोध–पद्वति में वस्तुपरकता होने से पक्षपात के लिए अवकाश नहीं होता। जहाँ उसमें पक्षपात होता है, वहीं वह अपनी अर्थ–सीमा से बहिष्कृत हो जाती है।

4.3.3 धात्वर्थ की दृष्टि से अन्तर

धात्वर्थ की दृष्टि से अनुसंधान की व्युत्पत्ति 'धा' धातु से हुई है जिसमें 'संधान' शब्द बनता है और जिसका अर्थ किसी विशिष्ट तत्व को लक्षित करना होता है। इसीलिए अनुसंधाता अपने विषय को एक सीमित घेरे में रखते हुए उसी पर निशाना लगाने के लिए आगे बढ़ता है, जबकि आलोचना शब्द की व्युत्पत्ति 'लुच्' धातु से हुई है। जिससे 'लोचन' शब्द बनता है, जो सर्वांगीण निरीक्षण का अर्थ देता है। आलोचक पठित रचना

से प्रभाव ग्रहण करता हैं, उसकी समुचित व्याख्या करता है, और उसका निजी दृष्टि से मूल्यांकन करता है। हम यह भी कह सकते हैं कि समालोचक रचना और रचनाकार के प्रति पाठकों की रूचि का निर्देश करता है, जबकि अनुसन्धाता पूर्णतः निर्लेप और निष्पक्ष रह कर अपने निष्कर्षों को प्रस्तुत करता है।

उपर्युक्त अध्ययन के पश्चात् हम कह सकते हैं कि अनुसंधान और आलोचना दोनों को पूर्णतः एक ही अर्थ में स्वीकार करना शायद अनुचित होगा। इसमें सन्देह नहीं कि अनुसंधान और आलोचना की प्रक्रिया बहुत दूर तक समानान्तर रहती है किन्तु दोनों के उद्देश्य और कार्य–पद्धतियों में एक निश्चित अन्तर निर्धारित करती है। यद्यपि आज आलोचना अनुसंधान के बहुत निकट की विधा बन चुकी है फिर भी वह अनुसंधान नही हैं।

4.4 सारांश

'शोध का स्वरूप एवं प्रविधि' की चौथी इकाई 'शोध और आलोचना' का आपने अध्ययन किया। इस इकाई का सम्बन्ध साहित्य में शोध और आलोचना की उपादेयता, साम्य और वैषम्य से है।

समग्रतः कहा जा सकता है कि अनुसंधान और आलोचना दोनों साहित्य के अविभाज्य अंग हैं। दोनों की पद्धति भी बहुत कुछ मिलती–जुलती है किन्तु चूँकि आलोचना व्याख्या–विवेचन द्वारा मर्म को अनुभूति देती है और अनुसंधान का उद्देश्य ज्ञान–वृद्धि होता है, इसलिए दोनों में कभी न पट सकने वाला अन्तर सदैव मौजूद रहता है शोध, समीक्षा नहीं है पर उसमें समीक्षा का अंश रहता है। जब तथ्यों का विश्लेषण किया जाता है तब उनका मूल्यांकन भी किया जाता है। इस दृष्टि से 'शोध' में समीक्षा का समावेश अवश्यम्भावी हो जाता है इसके विपरीत समीक्षा में 'शोध' का अंश अनिवार्य नहीं है। जहाँ शोध में तटस्थता की अनिवार्यता होती है, वहाँ समीक्षा में तटस्थता अनिवार्य नहीं होती है। समीक्षा में समीक्षक का समीक्ष्य कृति के प्रति तटस्थ भाव धारण करना आवश्यक नहीं है। समीक्षा आत्मपरक अधिक होती है। समीक्षक का 'वाद' प्रायः कृति की समीक्षा का आधार बनता है।

शोध का प्रस्तुतीकरण विशिष्ट प्रविधि के अनुरूप होता है। जबकि समीक्षा के प्रस्तुतीकरण की कोई निर्दिष्ट प्रविधि नहीं होती। प्रत्येक समीक्षक अपने ढंग से उसे प्रस्तुत करने के लिए स्वतन्त्र होता हैं शोध के प्रस्तुतीकरण की प्रविधि विषय के अनुरूप भिन्नता धारण करती है। साहित्य की समीक्षा के प्रस्तुतीकरण में समीक्षक की अपनी रूचि प्रधान होती है, उसका माध्यम गद्य या पद्य बन सकता है। समीक्षा सूत्र का रूप भी धारण कर सकती है जैसे : "सूर–सूर तुलसी शशी, उडुगन केशवदास" अथवा दीर्घ भाष्य (व्याख्या) आदि का रूप धारण कर सकती है, किन्तु शोध पद्य में नहीं। गद्य में ही तर्कपूर्ण विश्लेषणात्मक निष्कर्ष सहित प्रस्तुत होता है। अतः शोध और समीक्षा के अपने भिन्न–भिन्न क्षेत्र हैं। आशा है कि आप इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् शोध और आलोचना के सम्बन्ध में

निम्नलिखित जानकारी प्राप्त कर पाए हैं:

- 'शोध' शब्द में ज्ञान की शुद्धि का भाव रहता है। शोधकर्ता विस्मृत ज्ञान को पुनः प्रकाश में लाकर उसे शुद्ध रूप में प्रस्तुत करता है।
- आलोचना किसी वस्तु अथवा पदार्थ का सम्यक दृष्टि से पर्यवेक्षण करती है।
- आलोचना साहित्य का मार्ग प्रशस्त करने के साथ ही उसका नियमन भी करती है।
- आलोचना का मुख्य उद्देश्य कवि की कृति का प्रत्येक दृष्टि से मूल्यांकन करके उसे पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करना, उनकी रूचि परिष्कृत करना और साहित्य की गतिविधि निर्धारित करना है।
- शोध और आलोचना दोनों साहित्य के अविभाज्य अंग हैं।
- दोनों में ही कुछ साम्य होते हुए भी वैषम्य है।
- आलोचना और शोध में उद्देश्य, पद्धतियों और धात्वर्थ की दृष्टि से पर्याप्त अन्तर देखने को मिलता है।
- 'शोध' में समीक्षा का समावेश अवश्यम्भावी हो जाता है। इसके विपरीत 'समीक्षा' में शोध का अंश आवश्यक नहीं है।

4.5 शब्दावली

1.	आलोच्य विषय	–	वह विषय जो विचारणीय है
2.	समीक्षा	–	आलोचना
3.	अवश्यम्भावी	–	जो अवश्य होकर रहे, टले नहीं, अटल
4.	सुष्ठु प्रतिपादन	–	अच्छा, सुन्दर, उत्तम
5.	व्युत्पत्ति	–	उद्‌गमया उत्पत्ति का स्थान, शब्द का वह मूल रूप जिससे वह बना हो
6.	छिद्रान्वेषण	–	किसी व्यक्ति या बात के दोष ढूँढना
7.	परिमार्जित	–	जिसका परिमार्जन हुआ हो, सुधारा या सुधरा हुआ, प्रशस्त
8.	प्रशस्त	–	प्रशंसनीय, श्रेष्ठ, उत्तम
9.	धात्वर्थ	–	किसी शब्द का धातु से निकलने वाला मूल अर्थ
10.	अध्येय	–	अध्ययन करने या पढ़ने योग्य, पाठ्य ग्रन्थ
11.	द्रष्टव्य	–	देखने योग्य, दर्शनीय
12.	निर्लेप	–	निर्लिप्त

4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

- सहगल डॉ. मनमोहन, हिन्दी शोध तन्त्र की रूपरेखा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर द्वितीय संस्करण–1989
- शर्मा डॉ. रामगोपाल 'दिनेश', अनुसंधान : स्वरूप एवं प्रविधि, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण 1994
- नाथराय पारस, अनुसंधान परिचय, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा – प्रथम संस्करण : 1973
- राय डॉ. कृष्ण देव, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
- शर्मा डॉ. विनय मोहन, शोध प्रविधि नेशनल पेपर बैक्स, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2006
- जैन डॉ. बी.एम., रिसर्च मैथडोलॉजी
- शर्मा वीरेन्द्र प्रकाश, रिसर्च मैथडोलॉजी

4.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'शोध' को परिभाषित करते हुए शोध की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।
2. आलोचना का व्युत्पत्तिपरक अर्थ बताते हुए आलोचना का मूल प्रयोजन बताइये।
3. शोध और आलोचना दोनों साहित्य के अविभाज्य अंग हैं। कैसे?
4. शोध और आलोचना के उद्देश्य में क्या अन्तर है? किन्हीं तीन का वर्णन करिए।
5. धात्वर्थ की दृष्टि से अनुसंधान व आलोचना में अन्तर बताइये।
6. क्या अनुसंधान और आलोचना को एक ही अर्थ में स्वीकार किया जा सकता है? हाँ या नहीं में कारण सहित उत्तर दीजिए।
7. अनुसंधान और आलोचना को परिभाषित करते हुए इनके स्वरूप की विवेचना कीजिए।
8. अनुसंधान और आलोचना के साहित्यिक महत्त्व को समझाइये।
9. अनुसंधान और आलोचना के पारस्परिक साम्य और वैषम्य को स्पष्ट कीजिए।
10. क्या अनुसंधान और आलोचना को एक ही अर्थ में स्वीकार किया जा सकता है?

□

इकाई–5 ऐतिहासिक शोध–प्रविधि

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.1.1 इतिहास की अवधारणा और अभिप्राय

5.1.2 इतिहास की परिभाषा

5.1.2.1 इतिहास कहानी है

5.1.2.2 इतिहास सामाजिक विज्ञान है

5.1.2.3 इतिहास ज्ञान है

5.1.2.4 सम्पूर्ण इतिहास विचार का इतिहास है

5.1.2.5 इतिहास अतीतकालिक अनुभव का वृत्तान्त है

5.1.2.6 सम्पूर्ण इतिहास समसामयिक होता है

5.1.2.7 इतिहास का अर्थ

5.2 इतिहास की शोध–प्रविधि

5.3 इतिहास की सामग्री के स्त्रोत

5.4 इतिहास पर आधारित साहित्य के विविध रूप

5.4.1 ऐतिहासिक उपन्यास

5.4.2 ऐतिहासिक उपन्यासकार की भूमिका

5.4.3 ऐतिहासिक काव्य और नाटक

5.5 साहित्येतिहासिक शोध का संदर्भ

5.5.1 भारतेन्दु पद्य

5.5.2 हिन्दी का गद्य–साहित्य

5.6 साहित्येतिहास की शोध–प्रविधि

5.7 सारांश

5.8 संदर्भ ग्रन्थ

5.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.0 उद्देश्य

ज्ञान क्षेत्र के प्रत्येक विषय का काल क्रमिक तात्विक विश्लेषण–विवेचन ऐतिहासिक अध्ययन शोध की पद्धति है। इस पद्धति का प्रयोग प्राकृतिक विज्ञान तथा मानव–विज्ञान के सभी विषयों के अध्ययन में किया जाता है। प्रत्येक विषय का अपना काल–इतिहास होता है, जो उसे अन्य विषयों से पृथक करता है। इसी इतिहास का विश्लेषण–विवेचन ऐतिहासिक शोध कहलाता है।

साहित्य युग सापेक्ष जीवन–मूल्यों की भावमयी अभिव्यक्ति है। जीवन और जगत का विकास साहित्य का विकास है। साहित्य–विकास के विभिन्न सोपानों को स्पष्ट करना ऐतिहासिक शोध का अध्ययन–क्षेत्र होता है। ऐतिहासिक शोध का उद्देश्य होता है– किसी विशेष साहित्यिक युग–प्रवृत्ति अथवा कृति का काल के विभिन्न बिन्दुओं और संदर्भों में मूल्यांकन करना। इस शोध–प्रविधि के माध्यम से पाठक किसी साहित्यिक युग–प्रवृति और कृति की ऐतिहासिकता के विषय से अवगत हो सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

5.1.1 इतिहास की अवधारणा और अभिप्राय

विद्वानों ने इतिहास के सम्बन्ध में विभिन्न मतों का प्रतिपादन किया है। इतिहास वास्तव में ऐतिहासिक स्रोतों, अभिलेखों, संस्मरणों में वर्णित घटनाओं का न तो विवरण है और न अतीत तथा वर्तमान के बीच अनवरत परिसंवाद। अधिकांश घटनाएँ मनुष्य की अपनी कृतियाँ होती है। उनकी पृष्ठभूमि में मानवीय मस्तिष्क की भूमिका निर्णायक होती है। इतिहासकार द्वारा इन घटनाओं के अन्तस्तल में प्रवेश कर क्रिया–कलापों के परिवेश में मानवीय मस्तिष्क को समझना ही इतिहास है। इतिहासकार समसामयिक सामाजिक रूचि तथा आवश्यकता के अनुसार अतीत की घटनाओं का निरूपण करता है। उसके प्रयास का लक्ष्य अतीत तथा वर्तमान के बीच ऐसे सेतु का निर्माण करना है जिसके माध्यम से वह समसामयिक समाज को अतीत का अवलोकन कराकर अतीत के उद्धरणों द्वारा वर्तमान को प्रशिक्षित करे तथा भविष्य का मार्ग दर्शन कर सके। इतिहासकार इस सेतु पर चक्रीय प्रकाश स्तंभ होता है, जिसका उद्देश्य अतीत का अवलोकन कराना, वर्तमान को प्रकाशित करना तथा उज्ज्वल भविष्य के लिये दिशा–निर्देश करना है। इतिहासकार की इस निरंतर प्रक्रिया से ही इतिहास का उद्भव और विकास होता है।

प्रख्यात दार्शनिक इतिहासकार आर. जी. कलिंग वुड का अभिमत है कि मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है। अपने सम्बन्ध में चिन्तन करते समय उसके हृदय में अचानक अपने पूर्वजों के विषय में ज्ञान प्राप्ति की जिज्ञासा स्वयं ही प्रस्फुटित हुई कि वर्तमान का अविर्भाव कैसे हुआ? मानव–हृदय में जिज्ञासा की इस जागृति ने मनुष्य को अतीत के कोणों में झाँकने के लिए विवश कर दिया। अतीत संबंधी ज्ञान की उत्कंठा के परिणामस्वरूप इतिहास का उद्भव तथा इतिहास–चिन्तन का श्री गणेश हुआ। यहीं से

साक्ष्यों के आलोक में यथार्थ अतीत के प्रस्तुतीकरण की इच्छा इतिहास के रूप में प्रस्फुटित हो उठी। सतत् चिन्तन के परिणामस्वरूप एक अवधारणा बनी कि वर्तमान का आविर्भाव अतीत के गर्भ से हुआ। इस प्रकार वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में अतीत की गवेषणा मानव–प्रकृति की विकासात्मक प्रक्रिया का इतिहास बन गया।

5.1.2 इतिहास की परिभाषा

इतिहास क्या है? सरसरी तौर पर देखने से यह एक अत्यन्त सरल प्रश्न है। किन्तु इसका उत्तर इतना जटिल और गूढ़ है कि अभी तक इतिहास की कोई भी सर्वमान्य परिभाषा निश्चित नहीं की जा सकी है। प्रख्यात विद्वानों में मतैक्य का अभाव देखकर चार्ल्स फर्थ ने लिखा है कि इतिहास को परिभाषित करना सरल नहीं है। फिर भी इतिहासकारों ने अपने–अपने ढंग से इतिहास की परिभाषा बतायी है।

5.1.2.1 इतिहास कहानी है

कुछ विद्वानों ने इतिहास को मात्र एक कहानी स्वीकार किया है। जी. एम. ट्रेवेलियन के अनुसार, 'इतिहास अपने अपरिवर्तनीय अंश में एक कहानी है।' फ्रेंच अकादमी ने इस विषय पर विचार प्रस्तुत किया है कि 'इतिहास स्मरण योग्य वस्तुओं की कहानी है।' डच इतिहासकार हुइजिंगा ने इतिहास को अतीत की घटनाओं का उल्लेख स्वीकार किया है। एफ. एस. ओलिवर के शब्दों में 'इतिहासकार को केवल कहानी बतानी चाहिए। इस कहानी के स्वरूप को उपदेश तथा नैतिक विचारों से दुष्कृत नहीं करना चाहिए।' हेनरी पिरेन के अनुसार 'इतिहास समाज में रहने वाले मनुष्यों के कार्यो एवं उपलब्धियों की कहानी है।'

5.1.2.2. इतिहास सामाजिक विज्ञान है

इतिहास को समाज का सर्वांगीण चित्रण कहा जाता है। इतिहास मानवीय कार्यों का वर्णन मात्र नहीं, अपितु उन नियमों की गवेषणा है जिनके परिणामस्वरूप समाज की प्रगति, उसका विकास तथा पतन होता है। यही नहीं जो राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों के कारण होते हैं। वस्तुतः इतिहास सामाजिक विज्ञान का उद्गम स्थल है। इसका अभिप्राय यह है कि इतिहास में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास का उल्लेख अपरिहार्य है। इसलिए हेनरी पिरेन ने कहा है कि इतिहास अतीत में स्थित मानवीय समाज के विकास का व्याख्यानात्मक विवरण है। ऑक्सफोर्ड इंग्लिश शब्दकोष के अनुसार, इतिहास में किसी देश, समाज तथा मनुष्य से संबंधित सभी घटनाओं का उल्लेख होता है।

5.1.2.3. इतिहास ज्ञान है

चार्ल्स फर्थ के अनुसार, 'इतिहास ज्ञान की एक शाखा ही नहीं, अपितु एक विशेष प्रकार का ज्ञान है जो मनुष्य के दैनिक जीवन में उपयोगी है। मनुष्य इतिहास का अध्ययन अतीत

के उदाहरणों से ज्ञान प्राप्त करने के लिए करता है। सर वाल्टर रेले ने भी कहा है कि इतिहास का उद्देश्य अतीत के उदाहरणों द्वारा ऐसी शिक्षा प्रदान करना है जो मनुष्य की इच्छाओं और कार्यों का मार्ग दर्शन कर सके। इस प्रकार इतिहास एक प्रकार का ज्ञान है। कॉलिंगवुड तथा क्रोचे ने भी इस तथ्य को मान्यता प्रदान करते हुए कहा है कि ऐतिहासिक ज्ञान मानव – सम्बन्धी ज्ञान का स्रोत है।

5.1.2.4. सम्पूर्ण इतिहास विचार का इतिहास है

कॉलिंगवुड का यह सुप्रसिद्ध कथन है कि 'सम्पूर्ण इतिहास विचारधारा का इतिहास होता है। मनुष्य का कार्य विचारपूर्ण होता है। इतिहास में विचार को प्रधानता देने का तात्पर्य यह है कि विचार ही मानवीय कार्य–व्यवहार का मूल स्रोत तथा उद्गम स्थल है। मानवीय कार्यों के लिए विचार प्रेरक शक्ति है। इतिहास के अभिनेताओं के कार्यों एवं उपलब्धियों का अध्ययन करने के पहले उसके विचार का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। कॉलिंगवुड ने कहा है कि इतिहासकार ऐतिहासिक अभिनेता के विचारों की पुनरावृत्ति कर अतीत का पुनर्निर्माण करता है।

5.1.2.5. इतिहास अतीतकालिक अनुभव का वृत्तान्त है

इतिहासकार के लिये अतीतकालिन घटनाओं, महान शक्तियों तथा महापुरूषों के कार्यों एवं उपलब्धियों का प्रत्यक्ष निरीक्षण संभव नहीं है। वह अपने अनुभव द्वारा ऐतिहासिक घटनाओं, महान शक्तियों तथा महापुरूषों की उपलब्धियों का अनुभव करके एक परिकल्पनापरक मानसिक चित्रण प्रस्तुत करता है। अतीत काल से प्रचलित अनुभवों की कहानी एक पीढ़ी के पश्चात् दूसरी पीढ़ी तक चलती है और इतिहास की सामग्री बन जाती है।

5.1.2.6. सम्पूर्ण इतिहास समसामयिक होता है

महान दार्शनिक क्रोचे ने कहा है कि 'सम्पूर्ण इतिहास समसामयिक होता है।' क्रोचे के इस वक्तव्य का आशय यह है कि प्रत्येक वर्तमान इतिहासकार अतीत का अपनी दृष्टि से अवलोकन करता है। वह अतीत को उस रूप में नहीं देखता जिस रूप में वह था। अतीत का निर्माण इतिहासकार के मस्तिष्क में होता है। इतिहास की समसामयिकता को अन्य विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। देनियर के अनुसार सम्पूर्ण अतीत मेरा अतीत है और मैं अपने व्यक्तिगत संतोष के लिए उसे स्मरण करता हूँ।

5.1.2.7. इतिहास का अर्थ

कहा गया है कि इतिहास का कोई अर्थ नहीं होता, क्योंकि इतिहास का कोई लक्ष्य नहीं है। इतिहास का अर्थ इतिहासकार द्वारा प्रदत्त होता है। इतिहासकार तथ्यों को अर्थ प्रदान करता है। इतिहास–लेखन में हम कुछ छोड़ते हैं और कुछ का चयन करते हैं और ऐसा करते हुए अतीत के विभिन्न वर्गों का इतिहास लिखते हैं और इसे मानवजाति के

इतिहास की संज्ञा देते हैं। कार्ल आर. पॉपर ने लिखा है कि इतिहास में अनावश्यक अर्थ की गवेषणा करके उसके प्रचार की आवश्यकता नहीं है। किन्तु अन्य विद्वानों ने कार्ल आर. प्रॉपर के मत की आलोचना की है। काल्हर ने लिखा है कि इतिहास अर्थपूर्ण होता है। वह मानता है कि इतिहास में एक व्यवस्था का दर्शन होता है, वहाँ अर्थ का होना अवश्यंभावी हैं। आधुनिक युग में इतिहास के अर्थ को परिभाषित करने का एक मात्र श्रेय हीगेल को है। हीगेल ने नैतिक अर्थ की समस्या का इस घोषणा से समाधान किया कि इतिहास जगत के प्रति ईश्वर की उन्नति मानव इतिहास के उद्देश्य तथा कार्याविधि की चेतना द्वारा प्राप्त की जाती है। परिणामतः हीगेल के लिए यह अर्थ इतिहास में अंतर्भूत है। ईश्वर प्रकृति में अव्यक्त है, पर इतिहास उद्देश्यमूलक है। इतिहास का लक्ष्य स्वातंत्र्य है। इसकी प्राप्ति के लिए जन नायक होते हैं जो अपने बौद्धिक कौशल द्वारा इतिहास को विकसित करते हैं।

माईकेल ओफशाट के मतानुसार इतिहासकार का कार्य केवल अतीत की घटना संबंधी तथ्यों का संकलन ही नहीं, अपितु एक अर्थपूर्ण निष्कर्ष प्रदान करना होता है। प्रत्येक इतिहासकार अपने विशेष दृष्टिकोण से अतीत का निरूपण करता है। इसका अभिप्राय यह है कि वह अनेक अतीतकालिन तथ्यों के आधार पर घटनाओं का एक परिकल्पनात्मक चित्र प्रस्तुत करता है। इस चित्र में वर्णित घटनाएँ उद्देश्यपूर्ण तथा अर्थपूर्ण होती है। यही इतिहास का अर्थ है।

5.2 इतिहास की शोध प्रविधि

इतिहास की शोध प्रविधि अन्य विषयों की शोध प्रविधि से विशेष भिन्न नहीं है। शोधार्थी को कार्य प्रारंभ करने के पूर्व शोध की वैज्ञानिक प्रविधि से अवगत हो जाना चाहिए। उसके पश्चात् उसे उसके विषय पर किये गये शोध कार्य का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए।

उसे पाण्डुलिपियों को एकत्र कर उन्हें पढ़ने की कला से परिचित होना चाहिए। शोध पत्रियों (Cords) को सूचीबद्ध करने, सामग्री का वर्गीकरण करने और सन्दर्भ ग्रंथों आदि से अवगत हो जाना चाहिए। ज्ञात तथ्यों से अवगत तथ्यों तक पहुँचा जा सकता है। जो इतिहासकार शोध के विषय पर कार्य कर चुके हैं, उनसे सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता होती है। शोधार्थी में प्रलेखों की सामग्री से काम की बात तुरन्त छाँट लेने की क्षमता होनी चाहिए। प्राप्त तथ्यों की व्याख्या भी आवश्यक होती है। जिस काल का शोध करना हो, उस काल का यदि कोई व्यक्ति जीवित हो तो उससे सम्पर्क स्थापित करना अनावश्यक होगा। इतिहास के शोधार्थी को अपने नियम के ज्ञान के अतिरिक्त नृतृत्व–विज्ञान, अर्थशास्त्र, भूगोल–दर्शन, मनोविज्ञान समाज–विज्ञान, विविध भाषाओं के साहित्य का इतिहास आदि का भी ज्ञान संपादित करना होगा, क्योंकि इतिहास राजाओं के कार्यकलाप का वर्णन न होकर राष्ट्र और जाति का सम्पूर्ण चित्र होता है।

5.3. इतिहास की सामग्री के स्रोत

इतिहास की सामग्री के मुख्य दो स्रोत हैं :–

1. लिखित 2. परम्परागत

लिखित स्रोत भी दो भागों में विभाजित किये जा सकते हैं :–

1. साहित्यिक (आंतरिक) 2. शास्त्रीय

साहित्यिक स्रोत से हम उन घटनाओं का चयन कर सकते हैं जो साहित्यकार द्वारा देखी, सुनी गई हैं और जिन्हें उसने अपनी कृतियों में अंकित किया है। दूसरे विभाग में वे शास्त्रीय प्रपत्र आते हैं, जिनमें व्यक्ति समाज और राष्ट्र से लेकर अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं का वर्णन रहता है। भारत का शासन अँग्रेजों ने किस प्रकार भारतीयों को सौंपा, इसका वर्णन 'इण्डिया हाउस, लन्दन' के रिकार्ड से ज्ञात होता है। पार्लियामेन्ट की कार्यवाही से समय–समय पर पारित विधि–नियम आदि का ज्ञान प्राप्त होता है। परंपरागत स्रोतों से प्राप्त साम्रग्री तो पीढ़ी दर पीढ़ी सुनी–सुनाई बातों का संकलन मात्र (घटनाएँ) होती है। लोक साहित्य (गीत कथा आदि) में अतीत की घटनाएँ बहुत कुछ अंश में संचित रहती हैं। राजस्थान का अधिकांश इतिहास कर्नल टॉड ने परम्परा से प्राप्त लोक साहित्य के आधार पर लिखा था।

परम्परा या अन्य स्रोतों से प्राप्त तथ्यों की अन्य स्रोतों से प्राप्त तथ्यों से तुलना करने पर ही उनकी प्रामाणिकता–अप्रामाणिकता जानी जा सकती है। कई तथ्य प्रस्तर लेखों से भी ज्ञात होते हैं। अतः शोधकर्त्ता को उनका भी उपयोग करना होता है। कभी–कभी पत्थर का काल जानना भी आवश्यक होता है। ऐसी दशा में उसे किसी भू–गर्भ विशेषज्ञ तथा पुरातत्व विशेषज्ञ से, जो लिपि ज्ञाता भी हो, सहायता लेनी होती है। इतिहासकार का कार्य तथ्यों का संकलन या सम्पादन मात्र नहीं है, उसे उनका उपयोग अपने इतिहास–लेखन में करना चाहिए।

5.4 इतिहास पर आधारित साहित्य के विविध रूप

5.4.1. ऐतिहासिक उपन्यास

यहाँ हम इतिहास और उपन्यास के अन्तः सम्बन्धों की चर्चा करेंगे। वस्तुतः उपन्यास को इतिहास का विरोधी माना जाता है। जहाँ इतिहास का आधार है ठोस सत्य है, वहाँ उपन्यास की नींव कल्पना है। हिन्दी में 'चन्द्रकांता' और 'चन्द्रकान्ता –सन्तति' उपन्यासों को बड़ी प्रतिष्ठा मिली है। वहाँ कल्पना का वैभव और क्रीड़ा देखते ही बनती है। प्रेमचन्द्र के उपन्यासों में भी कल्पना का साम्राज्य मिलेगा। 'कायाकल्प' और 'सेवा सदन' के पात्र, पात्रों के नाम, नगर, उनकी बातचीत, उनकी गतिविधियों का लेखा–जोख वास्तविक जीवन में ढूंढे न मिलेगा। उपन्यासकार कहीं से कोई संकेत या नाम पा जाता है और कल्पना के सहारे कथ्य–प्रासाद रच डालता है। प्रेमचन्द के प्रसिद्ध उपन्यास

'रंगभूमि' का पूरा कथानक लेखक के द्वारा कल्पित है। उसकी कोई ऐतिहासिक सच्चाई नहीं है, इसलिए जनसाधारण में कुछ ऐसी मान्यता प्रचलित है कि 'उपन्यास सब झूठे होते हैं।

हालाँकि यह सही है कि जहाँ इतिहास का आधार भौतिक सत्य होता है, वहीं उपन्यास का आधार होती है कल्पना। किन्तु ऐतिहासिक उपन्यासकार में इतिहास की सच्चाई भी मिलती है और कल्पना का मनोरंजन भी। किन्तु यह एक निर्विवाद सत्य है कि ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास की सच्चाई की रक्षा करते हुए भी प्रधानतया उपन्यास है। ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहास के प्रभाव या तथ्य को उपन्यास के माध्यम से व्यक्त करता है। श्री वृन्दावन लाल वर्मा झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई के जीवन से बड़े प्रभावित थे। इसका परिणाम है उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई'। शखाल बाबू गुप्त युग से बड़े प्रभावित थे। वह युग–प्रभाव उनके उपन्यासों करूणा, शशांक, ध्रुवा में स्पष्ट है।

5.4.2 ऐतिहासिक उपन्यासकार की भूमिका

ऐतिहासिक उपन्यासकार नवीन समस्याओं का उद्घाटन प्राचीन इतिहास के प्रकाश में करता है। लेखक एक विशेष समस्या को उठाता है। फिर इतिहास में उसी के अनुरूप घटना ढूंढ़ता है। यदि समरूप घटना मिल गई तो ठीक यदि न मिली तो वह प्राचीन घटना का विश्लेषण नवीन समस्या के प्रकाश में करता है। राहुल जी साम्यवाद की रूपरेखा 'मधुर–स्वप्न' में प्राचीन इतिहास के आँचल में करते हैं। यशपाल जी ने 'अमिता' में कलिंग विजय के बहाने विश्वशान्ति का विश्लेषण और परिप्रेक्ष्य उपस्थित किया है।

ऐतिहासिक उपन्यासकार प्राचीन व्यक्तित्व या घटना का भी नवीन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। वह किसी प्राचीन व्यक्तित्व अथवा ऐतिहासिक घटना को आधुनिक अथवा समकालीन संदर्भों से आलोकित करता है। उदाहरणार्थ इतिहास के कूटनीतिज्ञ चाणक्य को श्री के. एम. मुंशी ने भगवान कौटिल्य बना दिया। राँगेय राघव ने द्रोणाचार्य के व्यक्तित्व में अलौकिकता और असाधारणता नहीं देखी, उनके हृदय से भरी हुई वत्सलता को उजागर किया। फलतः 'प्रतिदान' में द्रोणाचार्य का मानव–सुलभ रूप चित्रित किया। श्री चतुरसेन शास्त्री ने आम्रपाली का एक और ही रूप देखा जो उन्होंने' 'वैशाली की नगर वधू' में अंकित किया है।

कुछ ऐतिहासिक उपन्यासकार उपन्यास में वास्तविक इतिहास प्रस्तुत करते हैं। श्री वृन्दावनलाल वर्मा के 'अहिल्या बाई' नामक ऐतिहासिक उपन्यास तथा डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार के 'आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य' इसी कोटि के उपन्यास हैं। प्रसाद जी ने 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक भी इसी दृष्टिकोण से लिखा था। वे तलाक के पक्ष में एक ऐतिहासिक नाटक लिखना चाहते थे। वृन्दावन वर्मा का 'गढ़ कुंढार' भी इसी प्रकार का हैं। वे हिन्दुओं के जातीय अभिमान के विरोध में एवं अन्तर्जातीय विवाह के पक्ष में लिखना चाहते थे।

5.4.3. ऐतिहासिक काव्य और नाटक

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि दिनकर ने 'कुरूक्षेत्र' नामक एक ऐतिहासिक काव्य लिखा है। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि महाकाव्यों के लिये अधिकांश हिन्दी कवि अतीत की ओर क्यों जाते हैं। उनका कथन है कि घटनाओं और नायकों के संबंध की अनुभूतियाँ समय समय पर बदलती रहती हैं और उन्हीं बदली हुई अनुभूतियों को चित्रित करने के लिए कला को भी अपना रूप बदलना पड़ता है। असल–सवाल नायक या घटना के चुनाव का नहीं, उनके संबंध में समकालीन अनुभूति की व्याख्या का है। कवि का विषय, चाहे वह कहीं से भी लिया गया हो, उसके अपने समय से दूर नहीं होता। कविगण उसके माध्यम से अपने समय की व्याख्या करते हैं। इसके अतिरिक्त जो घटना या चरित्र अपनी प्राणवत्ता के कारण अनेक कवियों को लांघकर हमारे पास जीवित रह सकता है, निश्चय ही उसमें कुछ ऐसे गुण होंगे जो सम्पूर्णमानवता को झंकृत कर सकता है। ऐतिहासिक विषय काल्पनिक विषयों की तुलना में कुछ अधिक परिचित और विश्वसनीय होते हैं।

हिन्दी में ऐतिहासिक महाकाव्य तो कम लिखे गये हैं किन्तु ऐतिहासिक नाटकों और उपन्यासों की रचना अधिक हुई है। अधिकांश ऐतिहासिक नाटक अतीत काल के अंधकारमय और विलुप्त जीवन पर प्रकाश डालते हैं। उनमें ऐतिहासिक घटनाओं का उतना महत्त्व नहीं होता जितना तत्कालीन जीवन के चित्र का। उसी से हमें कौतूहल होता है, विस्मय होता है, आतंक होता है श्रद्धा होती है और मानव जीवन की जो समस्याएँ भी उससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं होता। हमें अपने वर्तमानकाल की समस्याओं में व्यस्त रहना पड़ता है। यह बात दीगर है कि हमें वर्तमान काल की समस्याओं को सुलझाने में अतीत काल के आदर्शों से सहायता मिल जाय, किन्तु वर्तमान काल की अनुभूति के आधार पर यदि हम अतीत काल की घटनाओं और नायकों के जीवन की व्याख्या करें तो हम उनके चरित्र का यथार्थ गौरव नहीं प्राप्त कर सकेंगे। वस्तुतः यह लक्षित किया गया है कि साहित्य के विभिन्न रूपों में इतिहास की विभिन्न घटनाओं तथा पात्रों के स्वरूप में परिवर्तन हो जाता है। अतः साहित्येतिहास की ऐतिहासिक शोध–प्रविधि में साहित्यिक रूपों तथा इतिहास के अन्तः सम्बन्धों की छानबीन भी आवश्यक है।

5.5 साहित्येतिहासिक शोध का संदर्भ

भारतीय साहित्य के विकास के विभिन्न सोपान हैं – वैदिक साहित्य, संस्कृत साहित्य, प्राकृत–साहित्य, अपभ्रंश साहित्य तथा हिन्दी साहित्य के विकास की सुदीर्घ परम्परा के विभिन्न काल–बिन्दु हैं। यह विकास कितना प्रामाणिक तथा न्याय संगत है, ऐतिहासिक शोध द्वारा ही सिद्ध किया जा सकता है। साहित्य–विकास के अतिरिक्त भाषा–विकास के भी विभिन्न सोपान हैं– वैदिक भाषा, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी भाषा क्रमशः विकास–क्रम में पूर्वापर संबंधों पर आधारित हैं। इस विकास श्रृंखला की विभिन्न संयोजक

कड़ियों की क्रमबद्धता, वैज्ञानिकता तथा पूर्वापर संबद्धता ऐतिहासिक संदर्भ में ही प्रमाणित हो सकती है। ये भाषा–विकास के सौपान तार्किक तथा वैज्ञानिक दृष्टि से भ्रामक प्रतीत होते हैं। उपर्युक्त विकास सोपान साहित्यिक भाषाओं से संबंधित हैं। भाषा–वैज्ञानिक नियमानुसार किसी साहित्यक भाषा अथवा बोली से दूसरी साहित्यिक भाषा तथा बोली का जन्म नहीं हो सकता। साहित्यिक भाषा का निर्माण स्वयं भी बोलियों के मानकीकरण की प्रक्रिया से होता है। एक साहित्यिक भाषा एकाधिक लोक भाषाओं के सर्वग्राह्य मानक भाषा तत्वों से निर्मित होती है। अतः लोक भाषाओं से साहित्यिक भाषाओं के निर्माण की बात गले नहीं उतरती। ऐतिहासिक शोधकार्यों द्वारा यह प्रमाणित किया जा सकता है कि आर्य तथा द्रविड़ भाषाएँ मूल स्रोत की दृष्टि से एक हैं, क्योंकि आज भी तमिल तथा कन्नड़ लोकभाषाएँ अपनी आधारभूत शब्दावली में ग्राम्यखडी बोली से पर्याप्त समानता रखती है।

भाषा तथा साहित्य के क्षेत्र में पहले वैदिक संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश की कालक्रमिक स्थिति, उनका पारस्परिक संबंध, उनकी संरचना पद्धति आदि स्पष्ट हो जाय तो हिन्दी साहित्य तथा भाषा – विकास की अनेक असंयुक्त कड़ियाँ संयुक्त हो जाएँ तथा इनके विद्वानों के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्त धारणाओं का खण्डन हो जाय। यह सब ऐतिहासिक शोध कार्यों द्वारा संभव हो सकता है। हिन्दी – साहित्य तथा हिन्दी भाषा का साहित्य तथा भाषा के तत्वों तथा प्रवृत्ति एवं प्रभावों के आधार पर ऐतिहासिक अध्ययन किया जा सकता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास का प्रयोग क्षेत्र तथा इसकी सीमाएँ अभी तक स्पष्ट नहीं है। तथा पूर्वीभारत, दक्षिणी भारत तथा पश्चिमोत्तर भारत की भाषाएँ इनका साहित्य हिन्दी का साहित्य माना जायेगा अथवा नहीं। भारत के आर्य, अनार्य, कोल तथा नाग भाषा परिवार आपस में कहाँ संबद्ध हैं, यह नवीन ऐतिहासिक शोध कार्य द्वारा ही स्पष्ट हो सकता है। डॉ. रामविलास शर्मा ने भारत के प्राचीन भाषा परिवार तथा हिन्दी नामक पुस्तक में हिन्दी का भारत के सम्पूर्ण भाषा परिवारों से ही घनिष्ठ संबंध स्थापित नहीं किया है, वरन् विश्व भाषाओं को भी भारतीय भाषा – परिवारों से प्रेरित तथा सम्बद्ध माना है।

भारतीय साहित्य तथा भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा ऐतिहासिक शोध के अनेक कालबिन्दु निर्धारित किये जा सकते हैं। इन साहित्यों तथा भाषाओं में कितनी समानताएँ तथा असमानताएँ है, साहित्य की कौन–कौन सी प्रवृत्तियाँ समान–असमान हैं, भाषा के ध्वनि, शब्द, रूप प्रत्यय तथा वाक्यों में से कौन से भाषा तत्व किस सीमा तक समान हैं, ऐतिहासिक शोध कार्यों द्वारा स्पष्ट किए जा सकते हैं। संस्कृत भाषा की मूल वाक्य रचना विशेष प्रधान रही है पठति, पठसि या पठामि कहने से भाव स्पष्ट हो जाता है। यही वाक्य रचना की प्रवृत्ति प्राचीनतम है। उद्‌देश्य प्रधान वाक्य रचना की पद्धति बाद में विकसित हुई है। ये दोनों भाषा–प्रवृत्तियाँ दो विभिन्न भाषा गण समुदायों से संबंधित रही है। नीलगिरी पर पाई जाने वाली 'तोद' द्रविड़ भाषा में श. ष. स. तीनों सकार मिल जाते हैं, जबकि किसी भी द्रविड़ भाषा में तीनों 'स' नहीं पाये जाते हैं। ट,ण,ठ की प्रधानता 'बौगस' भाषा में है, अतः ऐतिहासिक शोध द्वारा यह प्रमाणित किया जा सकता है कि 'ट' वर्ग द्रविड़ भाषाओं से आर्य भाषाओं में नहीं आया है। इसका विकास केन्द्र हरियाणा रहा है।

विस्तृत परिवेश के अतिरिक्त हिन्दी–साहित्य तथा हिन्दी भाषा तथा ऐतिहासिक शोध को सीमित करके अनेक नवीन निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। वीर गाथा काल की समस्त रचनाओं का संग्रह – विश्लेषण– विवेचन करके ऐतिहासिक दृष्टि से अनेक अभूतपूर्व ऐतिहासिक मान्यताएँ निर्मित की जा सकती है। रासो ग्रन्थों की प्रामाणिकता आन्तरिक तथा बाह्य तथ्यों के विश्लेषण–विवेचन से सिद्ध की जा सकती है। आल्ह खण्ड तथा रासो ग्रंथों की भाषा का तुलनात्मक अध्ययन करके अपभ्रंश तथा हिन्दी भाषा की संरचना भी स्पष्ट की जा सकती है। वीर गाथा काल का वैज्ञानिक नामकरण भी किया जा सकता है।

वीरगाथा काल की समस्त रचनाओं के निस्संग विश्लेषण से उनकी मूलभूत समान प्रवृत्तियों का निरूपण किया जा सकता है, जिनके आधारों पर इनका सर्वस्वीकृत नामकरण किया जा सकता है। वीर गाथा काल के साहित्य तथा भाषा की मूलभूत समान प्रवृत्ति स्पष्ट हो जाने पर हिन्दी साहित्य के आदिकाल की भाषा की समस्या हल हो सकती है। साथ ही परवर्ती हिन्दी साहित्य तथा उसकी विविध भाषाओं के मूल स्रोतों का भी पता चल सकता है। भक्ति काल की रामाश्रयी, कृष्णाश्रयी, ज्ञानाश्रयी तथा प्रेमाश्रयी धाराएँ पूर्ववर्ती हिन्दी साहित्य से किस प्रकार जुड़ी हुई हैं अथवा उनके प्रेरक तथा प्रजनक स्रोत पूर्ववर्ती हिन्दी साहित्य से नितान्त भिन्न हैं। यदि वीरगाथाकालीन हिन्दी साहित्य में राम, कृष्ण, ज्ञान तथा प्रेम की प्रवृत्तियों का प्रादुर्भाव कैसे हुआ? यह ऐतिहासिक शोध का महत्त्वपूर्ण विषय है। भक्तिकाल के बाद हिन्दी साहित्य का रीतिकाल भक्तिकाल तथा वीरगाथा काल से प्रवृत्ति तथा प्रभाव की दृष्टि से कितना जुड़ा हुआ है। क्या इसके काव्य–तत्व भक्तिकाल से पूर्णतया प्रभावित हैं अथवा वीरगाथा काल से अथवा इन दोनों से भिन्न संस्कृत – साहित्य से। रीतिकाल में संस्कृत साहित्य के छः काव्य सम्प्रदायों को आधार बनाकर लक्षण ग्रन्थ ही अधिकतर लिखे गये हैं। फिर भी इसके काव्य तत्वों में भाव, विचार तथा कथा – तत्व भक्तिकाल से सर्वाधिक प्रभावित है। वीरगाथा काल का प्रभाव बहुत कम दिखाई देता है। आधुनिककालीन हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद तथा नई कविता काल–क्रमिक दृष्टि से पूर्वावर संबंध रखते हैं, परन्तु इनका कुछ न कुछ संबंध पूर्ववर्ती हिन्दी साहित्य से भी है।

भारतेन्दु पद्य–साहित्य के क्षेत्र में परंपरावादी रहा है यह रीतिकाल तथा आधुनिक काल के संक्रमण काल से सम्बद्ध है। भाव, विचार तथा कथानक – संरचना में परंपरावादी होते हुए भी यह साहित्य आधुनिक युग बोध से अधिक प्रभावित रहा है। द्विवेदी युग उससे भिन्न रहा है। छायावाद द्विवेदी युग से प्रगतिवाद, छायावादी काव्य, – सिद्धान्तों से, प्रयोगवाद प्रगतिवाद साहित्य–प्रवृत्तियों से तथा नई कविता प्रयोगवादी–मान्यताओं से पृथक रहे हैं, प्रयोगवाद तथा नई कविता परस्पर इतने भिन्न नहीं हैं। जितने भिन्न छायावाद तथा प्रगतिवाद हैं। इन समस्त काव्यधाराओं का परस्पर कैसा तथा कितना सम्बन्ध रहा है, ऐतिहासिक शोध कार्यों द्वारा निश्चित किया जा सकता है।

हिन्दी के गद्य–साहित्य तथा उसकी विभिन्न विधाओं के काल–क्रमिक तथा संरचनागत

विकास को ऐतिहासिक शोधकार्यों द्वारा किया जा सकता है। इन विभिन्न विकास–क्रमों को स्पष्ट करने के साथ ऐतिहासिक शोध कार्य काव्य–तत्वों, विभिन्न – प्रभावों तथा विविध–प्रवृत्तियों के आधार भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं। कथा–तत्व, भावतत्व, विचार – तत्व कला–तत्व तथा भाषा–तत्व काव्य के ये पाँच प्रमुख तत्व हैं। प्रत्येक तत्व को आधार बनाकर काव्य–कृत्तियों का ऐतिहासिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया जा सकता है। 'सूर–सागर के कथानक का उदभव और विकास 'विनय–पत्रिका' में 'भक्ति भावना का स्रोत' 'भक्तिकालीन अद्वैतवाद का उद्‌भव और विकास' 'हिन्दी–ध्वनियों का विकास', 'कामायनी के शैवाद्वैतवाद का स्रोत' 'कबीर साहित्य की कला का विकास', 'अवधी–क्रियाओं का विकास', 'ब्रजभाषा के विभक्ति – प्रत्ययों का विकास', 'हिन्दी–वाक्य–रचना का विकास', 'खड़ी बोली – पद–रचना का विकास' आदि अनेक ऐतिहासिक शोध विषय हो सकते हैं।

5.6. साहित्येतिहास की शोध प्रविधि

साहित्य के इतिहास की कालक्रमानुसार विधि से रचना नहीं हो सकती क्योंकि साहित्य सार्वकालिक होता है। किसी काल–विशेष की सीमा से उसे आबद्ध नहीं किया जा सकता। जो साहित्य काल की सीमा में बद्ध है, वह साहित्य के इतिहास में स्थान पाने का अधिकारी नहीं है। हिन्दी में स्वाधीनता–आन्दोलन में रचा गया साहित्य काल कवलित हो गया। जो रचनाएँ सुख–दुख जैसे मानवीय तत्व अथवा मानवीय अनुभूतियों पर आधारित रही हैं, वे जीवित रही हैं, किन्तु प्रश्न यह है कि उनका काल (तिथि, वर्ष आदि) निर्धारण कैसे किया जाये ? उनका रचनाकाल ही आप जान सकते हैं, जीवनकाल नहीं। इसी तर्क के आधार पर डब्ल्यू. पी. केर ने कहा कि 'हमें साहित्य के इतिहास की आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि उसकी रचनाएँ शाश्वत होती हैं–सदाविद्यमान रहती हैं। और इस तरह उनका कोई इतिहास ही नहीं होता।' टी. एस. इलियट भी लगभग इसी मत के पोषक हैं। वे किसी कृत्ति का अतीत मानते ही नहीं हैं। शॉपनहावर के शब्दों में 'कला सदा ही अपना लक्ष्य प्राप्त करती रही है, इसमें विकास नहीं होता और न ही उसे अतिक्रान्त किया जा सकता है। 'और न दुहराया ही जा सकता है।' इस पर टिप्पणी करते हुए ऑस्टिन वारेन कहता है – 'इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि राजनीतिक इतिहास में और कला के इतिहास में अन्तर है। जो ऐतिहासिक और विगत है, उसमें तथा प्राचीन में जो ऐतिहासिक होने के साथ ही संस्था किसी न किसी कदर इस समय भी वर्तमान है, फर्क तो है ही।'' इतिहास उन घटनाओं का वर्णन या पर्यालोचन है, जो घट चुकी हैं, उनकी वैसी ही पुनरावृत्ति नहीं होती । साहित्य उन कृत्तियों का रूप है जो किसी काल में उत्पन्न भले ही हो गया हो, पर उसका न तो विकास होता है, न अन्त। यहाँ हम शुद्ध साहित्य की चर्चा कर रहे हैं। दुर्भाग्य यह है कि साहित्य के इतिहासों में प्रचार या दलगतता के कारण घटिया साहित्य भी स्थान पा जाता है और शुद्ध साहित्य उपेक्षित कर दिया जाता है। एक लेखक ने ठीक ही कहा है कि साहित्य के नहीं साहित्यकार के इतिहास लिखे जा रहे हैं। जो इतिहास लिखे गये

हैं या तो वे साहित्यकार के जीवन काल क्रमानुसार हैं जिनमें उनकी रचनाओं की या तो तालिका है या तालिकाएँ और आलोचनाएँ हैं।

वे काल–विशेष की प्रवृत्ति–विशेष को लक्ष्य कर भी लिखे गये हैं और उन्हें आदि, मध्य और वर्तमान काल नाम दे दिया गया है। साहित्य पर समय का प्रभाव पड़े यह आवश्यक नहीं है और इसलिए उसकी पृष्ठभूमि में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन देना जरूरी नहीं है। छायावाद–युग का हम उदाहरण ले सकते हैं। यह देश में राजनीतिक – सामाजिक संघर्ष का काल था। छायावादी रचनाओं को पढ़कर हमें काल की बाह्य उथल–पुथल का पता नहीं चलता। प्रत्युत उससे विपरीत स्थिति की कल्पना होती है। जान पड़ता है कि देश की जनता शान्त वातावरण का सुख भोग रही है। इसी से कवि गगन विहारी हो रहा है। ऐसी स्थिति में इस युग की चर्चा का कोई अर्थ नहीं है। तो फिर क्या साहित्य का इतिहास लिखा ही न जाय? क्या वर्तमान साहित्य पर अतीत में रचे गये साहित्य का कोई प्रभाव नहीं खोजा जा सकता? यदि किसी भाषा के साहित्य का इतिहास लिखा जाय तो ऐसे व्यक्ति के द्वारा लिखा जाये जो साहित्य की परम्परा से खूब परिचित हो, अन्यथा वह आलोच्य साहित्य के स्रोत–सूत्र को पकड़ नहीं पायेगा। प्रभाव खोजते समय केवल किसी कवि या लेखक पर कुछ शब्द या भाव की छाया का दिग्दर्शन पर्याप्त नहीं होगा। क्योंकि प्रतीक और बिम्ब किसी काल में प्रचलित होकर सर्वग्राह्य हो जाते हैं।

'खिंचे है ह्रदय बीन के तार' पंक्ति यदि किसी–काव्य में है तो उसे पंत का प्रभाव नहीं समझ लेना चाहिए, यह तो तत्कालीन कविता की सामान्य भाव सम्पत्ति है। हाँ, काव्य का अधिकांश अंश उसी संदर्भ में ग्रहण किया जाय तो आप उसे प्रभाव या चौर्य–कर्म की संज्ञा दे सकते हैं। साहित्य इतिहासकार को अपनी साहित्य–परंपरा के अतिरिक्त अन्य साहित्यों की गतिविधि का भी ज्ञान होना चाहिए। यदि अंग्रेजी–साहित्य का अध्येता केवल अंग्रेजी –साहित्य का ज्ञाता होगा तो वह उसके साहित्य में फ्रांस, जर्मनी, नार्वे से आयातित साहित्य प्रवाहों के स्रोतों को कैसे पहचान सकेगा? हमें यह मानना होगा कि साहित्यिक कृतियों की पूरी प्रणाली है, जिसके आन्तरिक सम्बन्ध नयी कृत्तियों की रचना के साथ निरन्तर परिवर्तित होते जा रहे हैं जो पूरी की पूरी एक चिर परिवर्तनशील जीवधारी की तरह बढ़ रही है। साहित्य–विकास के साथ जैविक या विकासवादी सिद्धान्त लागू नहीं होगा। जैविक विकास में तो जीव का आदि और अन्त है, पर साहित्य का आदि अन्त नहीं होता। हिन्दी में यद्यपि गद्य काव्य की विधा नई कविता के गद्यमय हो जाने से एक सी गयी है या उसका ह्रास हो गया है, पर उसका, यह अर्थ नहीं है कि भविष्य में गद्य–काव्य लिखा ही नहीं जायेगा।

साहित्य कृत्तियों के बीच स्पष्ट सम्बन्धों, स्रोतों और प्रभावों का विवेचन प्रायः किया जाता रहा है और यह परंपरागत पांडित्य की एक शाखा रहा है। यद्यपि इसे संकीर्ण अर्थ में साहित्य का इतिहास नहीं कहा जा सकता, किन्तु लेखकों के बीच साहित्यिक संबंध

स्थापित करना उस तरह का इतिहास लिखने के लिये एक नितान्त महत्वपूर्ण तैयारी रहा है। हिन्दी में पं. पद्मसिंह शर्मा ने बिहारी के दोहों के भाष्य में इसी प्रकार का अध्ययन प्रस्तुत किया है।

साहित्यिक इतिहास का काल–विभाजन एक ऐसी समस्या है जो कभी हल नहीं हो पायेगी। इंग्लैण्ड में भी रोमेंटिसिज्म, सिम्बोलिज्म, रेनेसाँ आदि शब्दों की व्याख्या ही विवाद का विषय बनी हुई है। इन शब्दों का अर्थ विकास होता रहा है। अतः आरंभ में जिन अर्थों के प्रयोग में ये प्रयुक्त हुए उन्हीं अर्थों को लेकर आज के साहित्य को परखना भूल होगी।

5.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में इतिहास और साहित्य के सम्बन्धों की चर्चा करते हुए ऐतिहासिक शोध प्रविधि के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। वस्तुत साहित्य और इतिहास का घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऐतिहासिक शोध प्रविधि के माध्यम से दोनों के सम्बन्धों के स्वरूप और पारस्पदर्शिता को प्रामाणिक ढंग से उद्घाटित किया जाता सकता है –ऐतिहासिक शोध प्रविधि के माध्यम से इतिहास की तथ्यपरकता और साहित्यकार की कल्पनाशीलता के तत्वों की छानबीन भी की जा सकती है, साहित्यकारों ने साहित्य के विभिन्न रूपों में इतिहास की सामग्री का उपयोग किया है। प्रस्तुत इकाई में विभिन्न साहित्यिक रूपों की झलक प्रस्तुत करते हुए ऐतिहासिक शोध – प्रविधि की प्रासंगिकता को रेखांकित किया गया है।

5.8 संदर्भ ग्रन्थ

- शर्मा डॉ. विनय मोहन – शोध–प्रविधि
- डॉ. सत्येन्द्र – अनुसंधान
- सिंह डॉ. तिलक – नवीन शोध विज्ञान, दिल्ली 1982
- डॉ. गोविन्द जी – ऐतिहासिक उपन्यास, इलाहाबाद –1970

5.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. ऐतिहासिक शोध–प्रविधि के उद्देश्य को स्पष्ट कीजिए।
2. इतिहास की अवधारणा और अभिप्राय को स्पष्ट कीजिए।
3. इतिहास की शोध–प्रविधि का निरूपण कीजिए
4. इतिहास की स्रोत सामग्री का विश्लेषण कीजिए
5. हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों के सम्बन्ध में एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
6. साहित्येतिहासिक शोध की संभावनाओं को स्पष्ट कीजिए।

इकाई – 6 तुलनात्मक शोध प्रविधि

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 तुलनात्मक साहित्य की शोध प्रविधि

6.3.1 शोध प्रविधि कलात्मक एवं वैज्ञानिक

6.3.2 हिन्दी भाषा एवं साहित्य के संदर्भ में शोध प्रविधि

6.3.3 शोध प्रविधि के विभिन्न चरण

6.3.4 तुलनात्मक शोध के संदर्भ में शोध प्रविधि

6.4 विषय निर्धारण

6.4.1 विषय निर्धारण का आधार

6.4.2 विषय निर्धारण की सीमाएँ

6.4.3 विषय निर्धारण का महत्व

6.5 पूर्व शोध कार्यों का सर्वेक्षण

6.6 शोध कार्य का प्रारूप

6.7 शोध कार्य में साक्षात्कार एवं प्रश्नावली

6.7.1 साक्षात्कार

6.7.2 प्रश्नावली

6.8 सारांश

6.9 स्व मूल्यांकन

6.10 शब्दावली

6.11 संदर्भ ग्रन्थ

6.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान पाऐंगे कि

- शोध प्रविधि क्या है ।
- कलात्मक शोध और वैज्ञानिक शोध प्रविधि में क्या अंतर है ।

- शोध के विषय का निर्धारण करने में किन बातों का ध्यान रखना चाहिए।
- तुलनात्मक शोध कार्य के लिए प्रारूप किस प्रकार तैयार किया जाता है।
- शोध में साक्षात्कार या प्रश्नावली का इस्तेमाल कैसे किया जाता है।
- तुलनात्मक साहित्य के शोधार्थी में क्या गुण और क्षमताएँ होनी चाहिए।

6.2 प्रस्तावना

शोध प्रविधि का अर्थ है शोध करने का तरीक़ा, पद्धति या विधि। इसमें शोध का विषय और उद्देश्य तय करने से लेकर उसकी प्रक्रिया और अंततः उसके निष्कर्ष और लेखन तक की प्रक्रिया शामिल होती है। वैसे तो शोध प्रविधि का एक वृहत्तर हिस्सा किसी भी विषय के लिए एक जैसा होता है, लेकिन हर विषय की अपनी–अपनी आवश्यकता होती है जिसके अनुरूप शोध प्रविधि में कुछ विशिष्टताएँ भी आ जाती हैं। तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन करते समय भी ऐसी विशिष्टताएँ दिखाई देती है जो तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन और शोध को साहित्य के सामान्य अध्ययन और शोध से अलग बनाती हैं।

उदाहरण के लिए किसी एक कवि और कहानीकार के रचनाकर्म पर किया जाने वाले शोध की प्रविधि में उन तत्वों को शामिल किया जाना अनिवार्य या प्रासंगिक नहीं है जो किन्हीं दो भाषाओं के साहित्य की प्रवृत्तियों या उनके साहित्यिक आंदोलनों के या फिर किन्हीं दो भाषाओं के कवियों, उपन्यासकारों या कहानीकारों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए नितांत आवश्यक हैं। यह ठीक उसी तरह की बात है कि किसी एक भाषा के व्याकरण या उसकी किसी श्रेणी पर किए गए काम में उसी भाषा के विश्लेषण की आवश्यकता होती है, जबकि यदि हम दो भाषाओं की वाक्य संरचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो जहाँ दोनों भाषाओं को समझने में हमें उनकी समानताएँ और व्यतिरेकों से काफ़ी मदद मिलती है वहीं हर भाषा की वाक्य संरचनाओं पर उसके आंतरिक दबावों का अध्ययन करना भी हमारे लिए आवश्यक हो जाता है। यदि हम इसी अध्ययन में भाषाओं के व्याकरण और उन भाषाई समाजों की संस्कृतियों के परस्पर संबंधों का भी अध्ययन करने का निश्चय करें तो हमें अपनी प्रविधि में आवश्यक परिवर्तन करने पड़ेंगे, भले ही शोध प्रविधि का एक बड़ा हिस्सा अपरिवर्तनीय होगा। तुलनात्मक अध्ययन के लिए आवश्यक नहीं है कि हम दो भिन्न भाषाओं या उनके साहित्यों का ही अध्ययन करें। एक ही भाषा के दो कवियों का, बल्कि एक ही साहित्यिक प्रवृत्ति के दो रचनाकारों का भी तुलनात्मक अध्ययन संभव है और किया भी जाता रहा है।

6.3 तुलनात्मक साहित्य की शोध प्रविधि

तुलनात्मक साहित्य के क्षेत्र में किसी भी प्रकार के शोध से पहले यह आवश्यक है कि यह तय किया जाए कि वह अध्ययन साहित्य की किस अवधारणा को लेकर किया जा रहा है या यह कहें कि उस शोध को हम किस संदर्भ से जोड़ रहे हैं। तुलनात्मक

साहित्य के विधिवत् अध्ययन के आरंभिक दिनों से ही साहित्य और साहित्यों की तुलना की विभिन्न अवधारणाएँ रही हैं। आरंभिक दिनों में जहाँ एक ओर विश्व साहित्य की अवधारणा को बल मिला वहीं फ्रांसीसी विचारकों ने साहित्य की विभिन्न तुलनाओं में किसी देश विशेष के साहित्य को प्रभावित करने वाले मूल तत्वों पर ज़ोर दिया। प्रोफेसर इंद्रनाथ चौधरी ने अपनी पुस्तक तुलनात्मक साहित्य की भूमिका में भी तुलनात्मक साहित्य की तीन विशिष्ट दृष्टियों की चर्चा की है। इनके अनुसार अंतर्राष्ट्रीयता के संदर्भ में साहित्य का कालक्रमिक अध्ययन वाला फ्रांसीसी–जर्मन स्कूल, अमेरीकी रूपवादी दृष्टि जिसमें काव्यशास्त्रीय, कलापरक और विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि पर विशेष बल दिया जाता है और तीसरी समाजशास्त्रीय एवं संस्कृतिपरक यथार्थवादी दृष्टि वाला रूसी स्कूल तुलनात्मक साहित्यिक अध्ययनों के वह प्रमुख भेद रहे हैं जो तुलनात्मक साहित्य की शोध प्रवधि को प्रभावित करते हैं, लेकिन बाद के दिनों में नई आलोचना, रूपवादी दृष्टिकोण, रूसी रूपवाद, संरचनावाद, उत्तर संरचनावाद, मार्क्सवाद, फेमिनिज़्म, उत्तर उपनिवेशवाद, नव ऐतिहासिकतावाद, मनोवैज्ञानिक विश्लेषणवाद, विखंडनवाद जैसी कई मिली–जुली दृष्टियाँ और उन पर आधारित आलोचना पद्धतियों से साहित्यों को पढ़ने की विधियाँ भी प्रकाश में आईं। इनकी विस्तार से चर्चा इसी पाठ्यक्रम में अन्यत्र स्वतंत्र खंड में की गई है। तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में प्रवेश करने से पहले शोधार्थी के लिए आवश्यक है कि वह साहित्यालोचना की विभिन्न पद्धतियों को जानें और बाद में यह तय करें कि वह किसी प्रकार के साहित्यिक एवं सामाजिक अध्ययन के औजारों का प्रयोग अपने अध्ययन में करना चाहते हैं।

इसी संदर्भ में रेने वेलेक की पुस्तक 'थ्योरी ऑफ़ लिटरेचर' में भी तुलनात्मक साहित्य की प्रविधियों का उल्लेख मिलता है। यहाँ यह जानना भी प्रासंगिक होगा कि प्रो. इंद्रनाथ चौधरी तुलनात्मक अध्ययन की कुछ अन्य प्रविधियों की चर्चा भी करते हैं। सादृश्य संबंधात्मक प्रविधि, परंपरा प्रविधि, प्रभाव प्रविधि, स्वीकृति एवं संचारण प्रविधि, सौभाग्य प्रविधि, संबंधात्मक द्वंद्वात्मक प्रविधि ऐसी कुछ शोध प्रविधियाँ हैं जिनका उल्लेख प्रो. चौधरी ने अपनी पुस्तक में किया है।

6.3.1 शोध प्रविधि : कलात्मक एवं वैज्ञानिक

साहित्य, संस्कृतियों और कलाओं के बारे में शोध करने की विधियों और वैज्ञानिक शोध करने की विधियों में भी काफ़ी अंतर है। जहाँ विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में किसी सिद्धांत को प्रतिपादित करने के लिए प्रयोगशालाओं में परीक्षण किया जा सकता है वही साहित्य, कलाओं और संस्कृतियों की प्रयोगशालाएँ स्वयं वह समाज होते हैं जहाँ उनका जन्म होता है। फिर ऐसे समाजों में यदि हम प्रयोग करना भी चाहें तो कई बार उन सब परिस्थितियों पर हमारा उतना अधिक नियंत्रण नहीं हो पाता जितना कि वैज्ञानिक शोध के समय प्रयोगशाला में किया जा सकता है, लेकिन लोक साहित्य में काम करने वाले शोधार्थियों के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह उस साहित्य–सृजन के क्षेत्र में जाएँ

और वहाँ से सामग्री एकत्रित करें। एक नज़रिए से इसे भी वैज्ञानिक प्रविधि का ही अंग माना जाता है, फिर भी शोध प्रविधि के बारे में अधिक जानने से पहले हमें यह जान लेना चाहिए कि प्रविधि हम किसे कहते हैं।

कलात्मक शोधों में पाठालोचन, विभिन्न विधाओं के कलात्मक और सौंदर्यशास्त्रीय पक्षों का उपलब्ध पाठों के आधार पर विश्लेषण, विवेचन, वर्गीकरण आदि के अलावा इन्हीं पक्षों के आधार पर किन्हीं विशिष्ट रचनाकारों के कृतित्वों का अध्ययन किया जा सकता है। ये इस प्रकार के शोध हैं जिनमें किसी प्रयोग, प्रयोगशाला, फील्ड वर्क से कहीं अधिक महत्वपूर्ण कृतियों का विभिन्न दार्शनिक या साहित्यिक दृष्टियों से विवेचन करना होता है।

प्रविधि का अर्थ है किसी भी विषय या शोध क्षेत्र से जुड़ी उन अवधारणाओं को जानना एवं उनका प्रयोग करना जो शोध करते समय हमारी मदद करती हैं। कुछ अवधारणाएँ जिनका प्रयोग हम किसी भी प्रकार के शोध करते समय कर सकते हैं, वे इस प्रकार हैं:

- विभिन्न विचारों, संकल्पनाओं और सिद्धांतों का संचयन
- विभिन्न पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन
- प्रत्येक विधि का आलोचनात्मक मूल्यांकन

शोध प्रविधि से हमारा तात्पर्य यही होता है कि अपने शोध के विषय को शोधार्थी किस तर्क से या किस जीवन दृष्टि से या किस वैचारिक आधार से परख रहे हैं, पढ़ रहे हैं। इसलिए यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि किसी भी शोध की जान उसकी शोध प्रविधि में निहित होती है, लेकिन शोध प्रविधि में प्रयुक्त दृष्टियाँ या अवधारणाएँ ही सब कुछ नहीं होती, शोध प्रविधि की सफलता के लिए इन बातों पर भी विचार करना आवश्यक है कि शोध की संकल्पना क्या है, उसका प्रारूप क्या है और उसे कितने खंडों में और क्यों विभाजित किया गया है और अंततः उसे किस प्रकार प्रस्तुत किया जाएगा।

6.3.2 हिन्दी भाषा एवं साहित्य के संदर्भ में शोध प्रविधि

हिन्दी भाषा एवं साहित्य के संदर्भ में जब हम शोध प्रविधि की बात करते हैं तो हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि हमारे तुलनात्मक शोध का दायरा क्या है। भाषाओं के अध्ययन में तो शोध के विषय एवं क्षेत्र के संदर्भ में अधिक दिक्कतें नहीं हैं, लेकिन साहित्य में क्षेत्र और शोध का विषय चुनना एक जटिल प्रक्रिया है, क्योंकि साहित्य का दायरा विशाल है और उसे भी अगर भाषा और संस्कृति आदि से जोड़ दिया जाए तो इतनी अधिक विविधता नज़र आयेगी कि किसी ऐसे विषय को चुनना दूभर कार्य हो जायेगी जिसे विश्वविद्यालयीय शोधों की अवधि के दौरान पूरा किया जा सके।

हिन्दी साहित्य में अनेक प्रकार के शोध संभव हैं और जिन्हें भाव संबंधी, विचार संबंधी, प्रवृत्ति संबंधी, कला संबंधी, भाषा संबंधी, पाठ संबंधी एवं इतिहास संबंधी श्रेणियों में

विभाजित किया जा सकता है। हम किसी काल, प्रवृत्ति या रचनाकार की रचनाओं में भावों एवं संवेदनाओं पर शोध कर सकते हैं। किसी रचनाकार के वैचारिक एवं सामाजिक सरोकारों का अध्ययन उनकी रचनाओं के आधार पर कर सकते हैं। इसी प्रकार अनेक विषयों पर शोध संभव है। इन सभी प्रकारों की शोध प्रविधियाँ भी किए जा रहे शोध और शोधार्थी की दृष्टि के अनुरूप अलग–अलग होंगी।

6.3.3 शोध प्रविधि के विभिन्न चरण

वैसे तो किसी भी प्रकार के शोध की प्रक्रिया लगभग समान होती है, लेकिन विज्ञान, समाज विज्ञान और साहित्य में अपनी–अपनी विशिष्टताओं की वजह से शोध प्रविधि में अंतर आ जाता है। भाषा और साहित्य के क्षेत्र में भी अन्य शोधों की तुलना में तुलनात्मक अध्ययन की शोध प्रविधि में विशेष परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं। यदि हम अंग्रेज़ी या फ्रांसीसी साहित्य और हिन्दी साहित्य के बीच कोई तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते हैं तो सबसे पहले तो हमें एक विषय तय करना होगा, उसके बाद उस विषय से संबद्ध साहित्य एवं अन्य ग्रंथों का अवलोकन करके एक शोध प्रस्ताव तैयार करना होगा जो हमारे शोध की रूपरेखा होगी। इस काम के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम पुस्तकालयों, इंटरनेट एवं अन्य स्रोतों से यह पता लगाएँ कि जिस विषय में हमारी दिलचस्पी है क्या उस पर पहले कोई शोध हो चुका है या नहीं ? यदि हमारे चयनित विषय पर पहले कोई शोध हो चुका है तो यह आवश्यक हो जाएगा कि हम अपने प्रस्ताव में यह स्पष्ट करें कि हमारा शोध पहले किए गए शोध या शोधों से किस प्रकार भिन्न होगा।

शोध प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने के बाद एक बार फिर से शोधार्थी को अपने शोध के विषय को ध्यान में रखते हुए दोनों साहित्यों का अध्ययन करना होगा, उसे साहित्य शास्त्र, दोनों साहित्यों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अलावा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमियों का भी गंभीरता से अध्ययन करना पड़ेगा। यदि शोध में किन्हीं साक्षात्कारों, सर्वेक्षणों या प्रश्नावलियों के विवरण की आवश्यकता हो तो उन पर भी विचार कर उन्हें तैयार करना होगा और कार्यान्वित भी करना होगा।

जब किसी शोध के लिए मौलिक पुस्तकों एवं अन्य ग्रंथों से बाहर निकल कर समाज में जाकर जानकारियाँ उपलब्ध करने की आवश्यकता पड़ती है तब साक्षात्कार एवं प्रश्नावलियों की सहायता लेनी पड़ती है। साक्षात्कार विधि अधिक अनुकूल है, क्योंकि इसकी मदद से भारत जैसे कम साक्षरता वाले देश में भी निरक्षर लोगों की राय भी विभिन्न उन्नत रिकार्डिंग पद्धतियों से दर्ज की जा सकती है जबकि प्रश्नावली का उपयोग तभी संभव है जब शोधार्थी स्वयं लोगों से सवाल पूछ–पूछ कर प्रश्नावली में दर्ज करे। इसके बावजूद विभिन्न शोधों में लोग साक्षात्कार से अधिक तरजीह प्रश्नावली को इसलिए देते है कि उसमें शोध के उद्देश्य अधिक सुव्यवस्थित ढंग से रखे जा सकते हैं

और यदि प्रश्नावली के आधार पर कोई सांख्यिकीय विश्लेषण करना हो तो वह भी संभव हो पाता है। साक्षात्कार एवं प्रश्नावलियों के बारे में आगे विस्तार से चर्चा की गई है।

6.3.4 तुलनात्मक शोध के संदर्भ में शोध प्रविधि

तुलनात्मक शोध के संदर्भ में शोध प्रविधि में जो कुछ अंतर आते हैं उनकी चर्चा करना भी आवश्यक है। मान लीजिए कि कोई शोधार्थी हिन्दी और फ्रांसीसी साहित्य के क्षेत्र में तुलनात्मक अध्ययन करना चाहता है। अब सबसे पहले तो विषय चयन की ही समस्या का समाधान करना होगा। शोधार्थी को तय करना होगा कि वह दोनों साहित्यों के इतिहास का अध्ययन करना चाहता है या दोनों साहित्यों की किसी विधा विशेष पर कार्य करना चाहता है या फिर वह दोनों साहित्यों के किन्हीं दो साहित्यकारों का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहता है।

तुलनात्मक साहित्यिक के शोध के कई प्रकार हो सकते हैं जैसे एक ही साहित्य के अंदर शोध किया जा सकता है, किसी साहित्य के अन्य साहित्यों पर प्रभाव पर शोध किया जा सकता है या फिर दो या उनसे अधिक साहित्यों के बीच तुलनात्मक शोध किया जा सकता है। तुलनात्मक साहित्य के शोधों में एक और प्रकार का विभाजन संभव है। इसके अंतर्गत हम साहित्यिक प्रवृत्तियों, साहित्यिक युगों या आंदोलनों, साहित्यिक कृतियों या साहित्यकारों की तुलना कर सकते हैं।

यदि हम विश्व के कुछ विश्वविद्यालयों में तुलनात्मक साहित्य में हो रहे वर्तमान शोधों पर नज़र दौड़ाएँ तो हम यह जान पाएँगे कि तुलनात्मक साहित्य के दायरे में कौन–कौन से विषय और समस्याएँ आजकल अध्ययन का आधार बन रही हैं। लंदन के यूनिवर्सिटी कॉलेज के तुलनात्मक साहित्य के विभाग में पिछले दिनों जिन विषयों पर शोध कार्य किया गया उनमें से कुछ यहाँ दिए जा रहें हैं जिससे कि तुलनात्मक साहित्य की प्रविधि का कुछ आभास हो सके। यह विषय हैं–

- प्रवासी आत्मकथा लेखन में भाषा और अस्मिता का प्रश्न (ईवा हॉफ़मैन और एमाइन सेवज़ी अज़ुदामार के लेखन का अध्ययन)
- बलात्कार, रंग और उपनिवेशवाद– एलें रस्ने की मूरियल और इ.एम. फ़ॉस्टर की पासाज़ टू इंडिया
- गेजी की कथा और उसका शिल्प. चार अनुवादों का तुलनात्मक अध्ययन
- शारलोत ब्रोंत के विल्लेत और मादाम द स्ताल के कोरीन का महिला लेखन के मनोविश्लेषणात्मक मॉडल पर आधारित अध्ययन

इसी प्रकार त्रासदी के विभिन्न रूपों पर या शेक्सपियर और फ्रांसीसी लेखक रासीन की त्रासदियों का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा रहा है। डबलिन के विश्वविद्यालय में भी इसी तरह साहित्यिक विधाओं, सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन के संदर्भ में

साहित्यिक कृतियों के अध्ययन, साहित्यिक इतिहास के सार्वभौमिक एवं स्थानीय संकल्पनाओं पर आधारित अध्ययन कराए जाते हैं।

हाल ही में एक पुस्तक पर नज़र पड़ी थी जिसका विषय था– विनय पत्रिका और निराला के विनय गीत। हालाँकि यह जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में पीएच.डी. के लिए लिखा गया शोध प्रबंध है, लेकिन पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हो जाने के बाद इस प्रकार के अध्ययन पर वरिष्ठ आलोचक परमानंद श्रीवास्तव ने टिप्पणी करते हुए लिखा है 'न तो यह परिपाटीबद्ध तुलनात्मक अध्ययन है न प्रभावी विवेचन तक सीमित है। इस दृष्टि से ... सार तत्व छठे और अंतिम अध्याय 'तुलसीदास और निराला की वेदना का तुलनात्मक अनुशीलन' में उपलब्ध है। इस प्रसंग का उल्लेख यहाँ इसलिए किया गया है ताकि आप तुलनात्मक साहित्य और साहित्यिक तुलनात्मकता के संदर्भ को हिन्दी के वर्तमान संदर्भ में भी ग्रहण कर पाएँ।

6.4 विषय निर्धारण

शोध का विषय वह है जिसमें शोध की पूरी संकल्पना की झलक मिलती है। वास्तव में जब शोधार्थी अपने शोध के बारे में बात करना आरंभ करता है तो वह अपने पूरे शोध के सारांश के तौर पर कुछ पदबंधों को ही व्यक्त करता है। इन्हीं पदबंधों को थोड़ा और अधिक परिमार्जित कर देने से उस शोध का विषय तैयार हो जाता है। इसीलिए शोध के विषय को बहुत सोच–समझ कर तय करना चाहिए।

किसी भी शोध के लिए किसी एक निश्चित परिकल्पना की आवश्यकता हो ऐसा आवश्यक नहीं, लेकिन यह भी सच है कि अधिकांश शोध किसी परिकल्पना से ही आरंभ होते हैं। ऐसे में जिस परिकल्पना को हम किसी वाक्य में कहें, उसी को यदि संक्षिप्त कर दें तो शोध का विषय तय हो जाता है।

6.4.1 विषय निर्धारण का आधार

किसी भी शोध का पहला कदम उसका विषय तय करना होता है। शोध का विषय तय किए जाने के कई आधार होते हैं। यदि शोधार्थी साहित्य के अध्ययन के किसी विशेष क्षेत्र से जुड़ा रहा है तो वह सामान्यतः उसी क्षेत्र के किसी विषय को चुनना चाहेगा, क्योंकि उस विषय पर किया गया शोध उसकी रुचि और अब तक किए गए अध्ययन का ही विस्तार करती है। जैसे आधुनिक हिन्दी कविता का कोई ऐसा विद्यार्थी जिसकी रुचि अपने स्नातक पाठ्यक्रम के आरंभ से कविता में रही है, वह चाहे तो हिन्दी उपन्यास के किसी विषय पर शोध कर सकता है लेकिन हिन्दी कविता के अपने अध्ययन के दौरान जो सवाल उसके मन में आए हों, यदि उन्हीं में से किसी पर वह शोध करे तो उसका अनुसंधान अधिक उपयोगी होगा। इसी प्रकार कई बार शोध का विषय शोधार्थी की इच्छा से कम उसकी उन बाह्य परिस्थितियों से अधिक प्रभावित होता है जो उस पर अन्यान्य कारणों से प्रभाव डालती हैं। जैसे वह जिस विश्वविद्यालय या संस्थान से

शोध कर रहा है उसकी शोध नीति और विशेषज्ञता क्या है या जिस शोध निर्देशक के साथ शोधार्थी कार्य करना चाहता है, उनकी स्वयं की शोध रुचियाँ क्या हैं। शोध किस स्तर पर किया जा रहा है अर्थात् एम. फिल, पीएच.डी. या फिर पोस्ट डाक्टोरल स्तर।

तुलनात्मक साहित्य के शोध पर भी यही बात लागू होती है। इस क्षेत्र में शोध के लिए एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह है कि अपने पूर्व अध्ययन के अलावा इसमें शोधार्थी को किसी अन्य भाषा और उसके साहित्य का भी ज्ञान होना चाहिए। यदि जर्मन भाषा के बारे में आपकी जानकारी पर्याप्त नहीं है, लेकिन आपने जर्मन साहित्य का अपनी प्रथम भाषा या किसी अन्य भाषा में उपलब्ध सामग्री के आधार पर अध्ययन किया हुआ है, तो भी तुलनात्मक साहित्य पर शोध करना आपके लिए संभव हो सकता है भले ही उसे बेहतर न समझा जाए। कई बार अपने साहित्य का अध्ययन करते हुए भी ऐसे संदर्भ सामने आ जाते है कि हम तुलनात्मक शोध करने को प्रेरित हो जाते हैं, जैसे अगर हम हिन्दी में उपन्यास विधा के विकास का अध्ययन करते है तो अनायास हमें यूरोप में उपन्यास विधा के विकास का संदर्भ और हिन्दी के उपन्यासों पर उसके प्रभाव का सवाल परेशान करने लगता है। यह भी तुलनात्मक शोध का प्रेरक हो सकता है। हिन्दी के प्रकृतिवाद और पश्चिम के नेचुरलिज्म के संदर्भ भी आपस में टकराते हैं और शोध की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं।

6.4.2 विषय निर्धारण की सीमाएँ

विषय निर्धारण के आदर्श के तौर पर तो यह कहा जा सकता है लेकिन यह भी सच है कि विश्वविद्यालयों में होने वाले शोध में से अधिकांश इस बात पर भी निर्भर करते हैं कि किसी विशेष विश्वविद्यालय में शोधार्थी के इच्छित विषय में शोध कराने की योग्यता या स्वीकार्यता है या नहीं। तात्पर्य यह है कि कई विश्वविद्यालयों में साहित्य और भाषा के कुछ क्षेत्रों की ही विशेषज्ञता उपलब्ध होती है, कई बार विभाग के कुछ आचार्य अपने वर्षों के अध्ययन एवं अनुभव के आधार पर कुछ सीमित क्षेत्रों में ही शोध कराने में दिलचस्पी लेते हैं और कई बार शोधार्थियों को अपने सोचे हुए विषय में शोध निर्देशक के कहे अनुसार परिवर्तन करने पड़ते हैं।

शोध विषय का चयन करते समय शोध उपाधि के लिए उपलब्ध समय, शोध का विस्तार, शोधार्थी की महत्वाकांक्षा एवं अध्ययन की संभावनाओं के यथार्थ पर भी ठीक से विचार करने की ज़रूरत है। यह कोई गंभीर समस्या नहीं है, लेकिन आवश्यक बात यह जानना है कि विषय निर्धारण की प्रक्रिया में केवल शोधार्थी और उसका इच्छित विषय ही नहीं होता, और भी कई ऐसे कारण या बाधाएँ हो सकती है जो विषय निर्धारण को प्रभावित कर सकती है। इसीलिए शोधार्थी को चाहिए कि वह बहुत सोच समझ कर शोध का विषय निर्धारित करे ताकि उसका शोध कार्य निर्विघ्न और आसानी से संपन्न हो सके।

6.4.3 विषय निर्धारण का महत्व

किसी भी शोध का आरंभ ही उस शोध के विषय के निर्धारण से होता है। शोध के विषय–निर्धारण में शोधार्थी जिन शब्दों का इस्तेमाल करेंगे, शोध उन्हीं शब्दों के इर्द–गिर्द किया जा सकेगा। इसीलिए किसी भी शोध कार्य के लिए सबसे महत्वपूर्ण उसके विषय को तय करना अर्थात् विषय निर्धारण होता है क्योंकि बिना यह तय किए कि हम किस पर शोध करेंगे? कोई शोध संभव ही नहीं है। हालाँकि यह उक्ति कि 'नाम में क्या रखा है' आजकल बहुत प्रचलित हो गई है, विशेषकर विभिन्न उपभोक्ता उत्पादों के लिए, लेकिन शोध के संदर्भ में यह पूर्णतया निरर्थक है क्योंकि शोध का विषय ही उसकी पहचान है।

6.5 पूर्व शोध कार्यों र्का सर्वेक्षण

जब भी आप किसी विषय पर शोध करना चाहते हैं तो यह अनिवार्य हो जाता है कि आप यह पता लगा लें कि उस विषय पर कोई शोध पहले किया गया है कि नहीं। साथ ही उस विषय से मिलते–जुलते विषयों पर हुए शोध कार्यों को भी देख लेना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि उनमें प्रकट दृष्टियाँ कई बार आपके शोध कार्य में सहायक हो सकती है। आपको यह काम करना इसलिए भी आवश्यक हो जाता है क्योंकि कई बार जिस बारे में आप शोध करने पर विचार कर रहें हैं उस पर यदि पहले ही काम किया जा चुका है तो आपका किया गया शोध कोई नई दृष्टि नहीं दे पाएगा, लेकिन यदि पहले किए गए शोध में कमियाँ है या उसमें सिद्ध की गई बातों का आप खंडन करना चाहते हैं तो उसी विषय पर शोध करना संभव और उचित हो सकता है।

पूर्व शोधों एवं आवश्यक पाठ्य सामग्री के लिए हमें पुस्तकालयों, ग्रंथालयों एवं इंटरनेट जैसे स्रोतों की आवश्यकता पड़ती है। कई बार ऐसी सामग्री तक पहुँचने के लिए हमें अपने ही शहर में स्थित अनेक पुस्तकालयों तक या फिर अनेक शहरों के पुस्तकालयों तक की खोज करनी पड़ती है। यहाँ यह जानना भी आवश्यक है कि कुछ विशेष विषयों पर देश–विदेश में कुछ विशिष्ट पुस्तकालय या ग्रंथालय है जहाँ उन विषयों से संबंधित वह पुस्तकें उपलब्ध हो सकती है जो अन्यत्र कही उपलब्ध न हों। कई बार इंटरनेट पर खोज करने से भी वाँछनीय सामग्री प्राप्त हो जाती है, हालाँकि ऐसी जानकारियों की विश्वसनीयता कम होती है और वह केवल राह दिखाने के काम भर आती है।

पूर्व शोधों के सर्वेक्षण से केवल इतना ही लाभ नहीं होता। इसके अतिरिक्त जो सबसे बड़ा लाभ शोधार्थियों को होता है वह यह है कि एकदम नए क्षेत्र में कदम रखते समय किए गए इस प्रकार के अध्ययन से शोधार्थी को अपने विषय के मर्म तक पहुँचने में मदद मिलती है और अपने से वरिष्ठ कई विभिन्न शोधकर्ताओं की शोध प्रविधियों का भी उसे अच्छा खासा ज्ञान हो जाता है जो कालांतर में भी उसकी मदद करता है।

6.6 शोध कार्य का प्रारूप

किसी भी प्रकार के शोध के लिए उसका प्रारूप या रूपरेखा जितनी महत्वपूर्ण है उतनी ही वह तुलनात्मक साहित्य के शोध के लिए भी आवश्यक है। प्रारूप या रूपरेखा किसी भी शोध के प्रारूप का सबसे महत्वपूर्ण अंग होता है क्योंकि उसी से यह तय होता है कि शोध कार्य किस–किस प्रकार एवं किन–किन चरणों में संपन्न किया जाएगा। यही प्रारूप या रूपरेखा उसको लिखते समय विभिन्न अध्यायों में विभाजित करने में भी मददगार होती है। इसीलिए शोध का प्रारूप तैयार करने का अर्थ यह भी है कि हम इस पर विचार कर रहे हैं कि शोध करने की प्रक्रिया क्या होगी, उसकी पद्धति क्या होगी और शोध संपन्न होने पर उसे किस प्रकार लिखा जाएगा?

दरअसल शोध की परिकल्पना और उसके विषय का निर्धारण हो जाने के बाद ही प्रारूप या रूपरेखा का प्रश्न उठता है। वैसे तो प्रारूप विषय से संबद्ध साहित्य को पढ़ने और शोध के विषय पर पर्याप्त चिंतन के बाद ही उभर कर सामने आता है लेकिन अधिकांशतः विश्वविद्यालय शोध आवेदन के साथ ही शोध के प्रारूप की मांग करते हैं। ऐसे में शोध ार्थी अस्थाई प्रारूप प्रस्तुत करता है जिसमें वह विषय तथा अध्यायों और उनमें वर्णित प्रसंगों का संक्षिप्त परिचय देता है। शोध पाठ्यक्रम में प्रवेश मिल जाने के बाद शोधार्थी अपने शोध निर्देशक की मदद से उसे परिमार्जित करता है और तब परिमार्जित प्रारूप पर ही उसे शोध करने की अनुमति मिलती है।

इन्हीं दोनों चरणों के दौरान शोधार्थी के लिए यह आवश्यक है कि वह शोध के विषय को अध्यायों और उप अध्यायों में विभाजित करे। किसी भी शोध में प्रस्तावना और निष्कर्ष तो होते ही हैं लेकिन बीच के अध्यायों में विषय विस्तार, विषय की व्यापक दृष्टि और विषय से संबद्ध अन्य विषयों की चर्चा की जानी भी आवश्यक है।

यह सच है कि हर विषय के लिए अध्याय विभाजन उस विषय की आवश्यकता के अनुरूप होता है फिर भी किसी विषय के किस प्रकार अध्यायों और उपाध्यायों में विभाजित किया जाए ? यह जानने के लिए शोधार्थी तुलनात्मक साहित्य में पूर्व में किए गए जितने अधिक शोधों पर नज़र डालेंगे उनकी दृष्टि उतनी ही परिमार्जित होगी।

6.7 शोध कार्य में साक्षात्कार एवं प्रश्नावली

शोध कार्य में साक्षात्कार एवं प्रश्नावली का प्रयोग शोध की प्र.ति पर निर्भर करता है। कुछ शोध ऐसे होते हैं जिनमें शोधार्थी उपलब्ध पाठों का ही विश्लेषण या विवेचन करता है। ऐसे में किसी प्रश्नावली या साक्षात्कार की आवश्यकता नहीं होती, लेकिन यदि शोधार्थी किसी कविता, कहानी या उपन्यास, किसी कवि, कहानीकार या उपन्यासकार आदि के पाठकों पर असर या उसकी सामाजिक प्रासंगिकता पर कार्य कर रहा है, तो वह पाठकों के विचार जानने के लिए उनसे साक्षात्कार ले सकता है या एक सुविचारित प्रश्नावली वितरित कर सकता है। ऐसा करने से उसके शोध की विश्वसनीयता बढ़ जाती है

क्योंकि उसके शोध को एक वैज्ञानिक आधार मिल जाता है और वह अधिक वस्तुगत प्रतीत होता है।

6.7.1 साक्षात्कार

कई शोध के विषय ऐसे होते हैं जिनमें हमें पाठानुसंधान के अलावा अन्य साधनों से भी जानकारियाँ हासिल करनी पड़ती है। इतिहास के विस्मृत या ऐसे तथ्य जिन पर कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है लेकिन जिनका उल्लेख समय–समय पर साहित्यकारों या आलोचकों ने अपने भाषणों, बातचीत आदि में किया है या साहित्य की कुछ नई प्रवृत्तियों या समकालीन आलोचकों एवं विद्वानों के ऐसे विचार जो शोध को सही दिशा देने में सहायक हो, केवल साक्षात्कार के माध्यम से ही संकलित किए जा सकते है। इस दृष्टि से साक्षात्कार हमेशा ही शोध प्रविधि का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है।

साक्षात्कार के माध्यम से आवश्यक जानकारियाँ हासिल करना एक कठिन काम है। इसके लिए शोधार्थी को पूर्व अध्ययन के आधार पर किसी भी व्यक्ति का साक्षात्कार लेने से पहले अपने प्रश्नों पर गंभीरता से विचार करना चाहिए। उसे जिस विद्वान या जिन लोगों से वह साक्षात्कार लेने जा रहा है, उनके बारे में भी पर्याप्त जानकारी हासिल करनी चाहिए ताकि साक्षात्कार लेते समय उसे किसी अनचाही स्थिति का सामना न करना पड़े। शोधार्थी जो प्रश्न करने वाला है उनके संभावित जवाबों पर भी विचार करके यदि प्रश्न के भीतर उठने वाले प्रश्नों पर भी विचार करता है, तो उसका साक्षात्कार निश्चय ही लाभदायक होगा। ध्यान रहे की भले ही साक्षात्कार आप शोध के लिए कर रहे हैं पर साक्षात्कार लेना एक कला है और इस कला में दक्ष व्यक्ति ही लोगों से आवश्यक जानकारियाँ हासिल कर पाता है।

6.7.2 प्रश्नावली

साक्षात्कार के अलावा एक और विधि से हम पाठेनर सूचनाएँ प्राप्त कर सकते है। इस विधि को प्रश्नावली विधि कहते है। जहाँ साक्षात्कार कुछ विद्वानों या लोगों से अलग–अलग समय पर किया जाता है वहीं जब हमें एक बड़े समूह से एक साथ कुछ गिने–चुने सवालों के जवाबों की दरकार होती है तब हम प्रश्नावली विधि का प्रयोग करते है।

प्रश्नावली के लिए आवश्यक है कि हम तय करें की प्रश्नावली बहुत लम्बी न हो ताकि आसानी से लोगों के जवाब मिल सकें। लंबी–लंबी प्रश्नावलियाँ लोगों को उबा देती है और कई बार इसकी वजह से लोग अनमने हो कर कुछ का कुछ जवाब भी दे देते हैं जो हमारे शोध को प्रभावित कर सकता है। तात्पर्य यह है की प्रश्नावली के लिए प्रश्न तय करना अपने आप में एक शोध विधि है। यहाँ भी प्रश्नों के भीतर के प्रश्नों पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता होती है।

हालाँकि जानकारियाँ हासिल करने के और भी कई तरीकें हैं जैसे प्रेक्षण विधि, लेकिन साक्षात्कार और प्रश्नावली जैसी विधियों की जो विश्वसनीयता है वैसी और विधियों में नही है, फिर प्रश्नावली विधि से प्राप्त जानकारियों को आवश्यकता पड़ने पर सांख्यिकी में भी तब्दील किया जा सकता है जिससे साहित्य जैसे विषय में भी वैज्ञानिकता का समावेश हो जाता है। संरचना और उत्तर संरचनावाद के दौर में ऐसे कई शोध हुए हैं जिनमें पाठालोचन तक में सांख्यिकी का प्रयोग किया गया है।

6.8 सारांश

यूँ तो तुलनात्मक शोध भी साहित्य के किसी अन्य शोध जैसा ही है और इस दृष्टि से उसकी शोध प्रवधि भी कमोबेश अन्य प्रकार के साहित्य संबंधी शोधों जैसी ही होती है, लेकिन जब हम किन्हीं दो भाषाओं, साहित्यों और संस्कृतियों का तुलनात्मक या व्यतिरेकी अध्ययन करते है तो हम अपने शोध के दायरे को काफ़ी अधिक व्यापक बना लेते है जो हमसे एक विशेष प्रकार की शोध प्रविधि की माँग करता है। यही तथ्य तुलनात्मक साहित्य की शोध प्रविधि को कुछ विशिष्टता प्रदान करता है। हमने तुलनात्मक शोध की बारीकियों को स्पष्ट करने के लिए अलग–अलग स्थानों पर शोध प्रविधि के संदर्भ में तुलनात्मकता की या विभिन्न साहित्यों में तुलनात्मक शोध अध्ययनों की चर्चा की है।

शोध प्रविधि में जहाँ एक ओर संकल्पनाओं, अवधारणाओं और वैचारिकता के अध्ययन की आवश्यकता होती है वहीं दूसरी ओर कुछ बेहद बुनियादी प्रक्रियाएँ भी होती है, जैसे विषय का चयन, शोध का प्रकृति तय करना, पूर्व शोधों का सर्वेक्षण करना, विषय को आवश्यक अध्यायों में विभाजित करना, जानकारियाँ एकत्रित करने के लिए प्रश्नावली का प्रयोग करना या साक्षात्कार लेना आदि। इसीलिए इस इकाई में हमने इन बातों की चर्चा भी विशेष रूप में की है।

6.9 स्व मूल्यांकन

उपर्युक्त पाठ को पढ़ कर तुलनात्मक साहित्य के किसी भी क्षेत्र पर अपने शोध का विषय निर्धारित कीजिए एवं उस शोध का प्रारूप तैयार कीजिए। अपने शोध विषय से संबद्ध पूर्व शोध ग्रंथों की जानकारियाँ जुटाइए एवं एक ऐसी पुस्तक सूची तैयार कीजिए जो आपके शोध में सहायक हो। यदि आप इस इकाई को पढ़ने के बाद निर्दिष्ट कार्य करने के पश्चात अपने शोध विषय पर आगे शोध करने में अपने को सक्षम पाते हैं तो आप समझ सकते हैं कि आपने इस इकाई से आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

6.10 शब्दावली

शोध प्रविधि	शोध क्षेत्र से जुड़ी वह प्रक्रिया जिसकी शोध करते समय हम मदद लेते हैं।
तुलनात्मक शोध	शोध की वह प्रविधि जिसमें दो समान या असमान विषयों को साथ रख कर अध्ययन किया जाता है।

अवधारणा	किसी विषय विशेष के बारे में शोध एवं विभिन्न विद्वानों द्वारा तय की गई संकल्पना।
परिकल्पना	किसी भी शोध को आरंभ करने से पहले शोधार्थी के समक्ष उपस्थित वह समस्या जिसका समाधान शोध के द्वारा संभव हो सकता है, हालाँकि शोध के लिए परिकल्पना की अवधारणा पर विद्वानों के अलग–अलग मत हैं।
शोध विषय	ज्ञान के किसी क्षेत्र पर शोध करने के लिए शोधार्थी द्वारा चयनित विषय।
रूपरेखा	शोध अध्ययन को विभिन्न चरणों में विभाजित करने की प्रक्रिया जो अंततः शोध लेखन में अध्यायों का रूप ले लेती है।

6.11 संदर्भ ग्रन्थ

- शर्मा डॉ. विनय मोहन, शोध प्रविधि, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2003
- जैन डॉ. रविन्द्र कुमार, साहित्यिक अनुसंधान के आयाम, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- नगेन्द्र, शोध और सिद्धांत, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2003
- द्विवेदी आचार्य हजारीप्रसाद, अनुसंधान की प्रक्रिया, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 2008
- मिश्र राजेन्द्र प्रसाद, अनुसंधान की प्रविधि और प्रक्रिया, तक्षशिला प्रकाशन, 2008
- चौधरी प्रो. इन्द्रनाथ, तुलनात्मक साहित्य की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1998

6.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. हिन्दी और किसी भारतीय भाषा के साहित्य के संदर्भ में तुलनात्मक शोध प्रविधि पर एक विस्तृत लेख लिखिए?
2. अपने शोध विषय के लिए उपलब्ध तुलनात्मक साहित्य की शोध प्रविधियों में से किसी एक के चयन का आधार समझाइए ?
3. तुलनात्मक साहित्य पर किसी एक विषय का चयन कीजिए और उसकी रूपरेखा तैयार कीजिए?
4. शोध प्रविधि के विभिन्न आयामों को समेटते हुए एक व्याख्यात्मक लेख लिखिए?

इकाई–7 पाठालोचन शोध प्रविधि

इकाई की रूपरेखा

7.0 पाठालोचन : उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 मूलपाठ के उपयोग

7.3 पाठालोचन सामग्री

7.4 मूलपाठ संबंधी विकृतियाँ

7.4.1 मूलपाठ की अशुद्धि और लिपिक

7.4.2 शब्द विकार : काल्पनिक

7.4.3 शब्द विकार : यथार्थ

7.4.4 प्रमादवश

7.4.5 छूट, भूल, आगम और अन्य विकृतियाँ

7.5 मूलपाठ : वंशवृक्ष

7.5.1 क्षेपक

7.5.2 क्षेपक के कारण

7.5.3 छूट

7.6 अप्रामाणिक रचनाएँ

7.6.1 पाठालोचन : शब्द और अर्थ का महत्त्व

7.7 पाठालोचन की प्रणालियाँ

7.7.1 स्वेच्छया पाठ निर्धारण प्रणाली

7.7.2 तुलनात्मक स्वेच्छया सम्पादनार्थ पाठ निर्धारण प्रणाली

7.7.3 वैज्ञानिक पाठालोचन प्रणाली

7.8 पाठालोचन प्रक्रिया

7.8.1 पाण्डुलिपि या ग्रंथ संग्रह

7.8.2 तुलना एवं संकेत प्रणाली

7.8.2.1 क्रमांक प्रणाली

7.8.2.2 प्रतिलिपिकार प्रणाली

7.8.2.3 स्थान संकेत प्रणाली

7.8.2.4 पाठ साम्य समूह प्रणाली

7.8.2.5 पत्र संख्या प्रणाली

7.8.2.6 रूपान्तर प्रणाली

7.8.2.7 पुनरूद्धार प्रणाली

7.9 मूलपाठ प्रतियाँ

7.9.1 मूलपाठ तुलना

7.9.2 तुलना के आधारों पर संबंध

7.9.2.1 प्रतिलिपि संबंध

7.9.2.2 प्रक्षेप संबंध

7.9.2.3 पाठान्तर संबंध

7.10 पाठ–सम्पादन सिद्धान्त

7.11 मूलपाठ : सम्भावनाएँ

7.12 प्रक्षेप का क्या करें ?

7.13 पाठालोचन में 'अर्थ न्यास' का महत्त्व ?

7.14 क्या एक प्रतिलिपि का पाठालोचन हो सकता है ?

7.15 उपसंहार

7.16 खोज रिपोर्ट

7.17 पत्रिकाएँ

7.18 भारतीय पुस्तकालय एवं संग्रहालय जहाँ पाण्डुलिपियाँ हैं

7.18.1 पुस्तकालय

7.18.2 संग्रहालय

7.19 संदर्भ ग्रन्थ

7.20 अभ्यासार्थ प्रश्न एवं टिप्पणियाँ

7.0 पाठालोचन – उद्देश्य

मूल लेखक द्वारा लिखित हस्तलेख (पाण्डुलिपि) को 'मूलपाठ' कहते हैं। अंग्रेजी में इसे 'मैन्यूस्क्रिप्ट' कहा जाता है। इस मूलपाठ की खोज (शोध) करने को 'पाठानुसंधान' या 'पाठशोध' कहते हैं। 'पाठ' और 'अनुसंधान' के योग से बने शब्द 'पाठानुसंधान' का अर्थ है – रचना के मूलपाठ (टैक्स्ट) के शुद्ध रूप का 'अनुसंधान'। अंग्रेजी में इसे 'टेक्सच्यूल क्रिटिसिज्म' कहते हैं। अतः पाठानुसंधान, पाठालोचन या पाठ–शोध का उद्देश्य रचना का मूल लेखक कौन था, यह जानना न होकर, यह जानना होता है कि 'रचना' का मूल स्वरूप (पाठ) क्या था ? इस तरह पाठालोचक का कार्य मूल रचनाकार के वास्तविक पाठ का निर्धारण करना होता है। अर्थात् यह कार्य पाठ के सम्पादन का कार्य है, जिसमें रचना के शब्द–रूप, वर्तनी के मूलरूप की प्रतिष्ठा कर, प्रक्षेपों से बचा जाता है। वस्तुतः पाठालोचन विज्ञान मूलपाठ की खोज का कार्य करने वाला विज्ञान है।

7.1 प्रस्तावना

आवश्यकता : पाठालोचन आज के साहित्य मनीषियों की महती आवश्यकता है, क्योंकि स्वयं लेखक के हाथ से लिखा हुआ पाठ (मूलपाठ) बहुत महत्त्वपूर्ण एवं बहुमूल्य वस्तु होती है। किसी ग्रंथागार में किसी रचनाकार के मूलपाठ का सुरक्षित होना, उस ग्रंथागार के गौरव को बढ़ा देता है। 'पाठालोचन' की आवश्यकता प्राचीन ग्रंथों से संबंध रखती है। प्राचीन काल में मुद्रण–कला के अभाव में रचनाएँ ताड़पत्र, भोजपत्र, वस्त्र और काष्ठपट्टियों आदि पर लिखी जाती थी। ये सभी रचनाएँ पाण्डुलिपियाँ कहलाती है। कालान्तर में ऐसी रचनाएँ प्रायः खण्डित, प्रक्षिप्त तथा एकाधिक रूपों में प्राप्त होती है। ऐसी बहुमूल्य रचनाओं के प्रकाशन से पूर्व उनका पाठालोचन होना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि ऐसी रचनाओं में पाठ–भेद, प्रक्षेपण या एकाधिक प्रतिलिपियों के कारण हो सकते हैं। प्राचीन काल में किसी रचना के प्रचार–प्रसार हेतु मंदिरों, मठों, राजदरबारों आदि के प्रतिलिपिक अनेक प्रतिलिपियाँ तैयार करते थे जिनमें किंचित असावधानी या प्रमाद वश 'पाठ–भेद' होना स्वाभाविक था। ऐसी ही रचनाओं की यदि और प्रतिलिपियाँ तैयार करवाई जाती थी, तो प्रक्षिप्त अंशों का बढ़ जाना भी कोई बड़ी बात नहीं। अतः ऐसे मूल्यवान ग्रंथों का पाठालोचन साहित्यिक आवश्यकता एवं जिम्मेदारी है। जहाँ ऐसे ग्रंथ सुरक्षित हों वहाँ के आगाराध्यक्ष को विशेष ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि पाठालोचन में बहुत–सी बातों पर ध्यान देना अपेक्षित रहता है, जैसे – वर्णों, मात्राओं, शब्दों और वाक्यों पर ध्यान देना, शब्दलोप, शब्द–परिवर्तन, वर्तनी परिवर्तन, वर्णागम, विपर्यय और प्रक्षेप आदि का परीक्षण करना आदि।

7.2 मूलपाठ के उपयोग

किसी रचना के मूलपाठ के अनेक उपयोग है। डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार कुछ उपयोग निम्न प्रकार हैं –

(क) लेखक की लिपि से लेखक की लेखन शैली का पता चलता है, जिससे उसके लिखते समय की स्थिति और अभ्यास का भी ज्ञान हो जाता है।

(ख) लेखक की वर्तनी विषयक नीति का पता चलता है।

(ग) ग्रंथ–संघटन–सम्पादन में मूल–पाठ आदर्श का काम देता है।

(घ) लेखक की शब्दार्थ–विषयक प्रतिभा का शुद्ध ज्ञान होता है।

(ङ) मूलपाठ से अन्य उपलब्ध पाठों को मिलाने से पाठान्तरों और पाठभेदों में लिपि, वर्तनी और शब्दार्थ के रूपान्तर में होने वाली प्रक्रिया का पता चल जाता है, इस प्रक्रिया का ज्ञान अन्य पाठालोचनों में बहुत सहायक हो सकता है।

(च) मूल पाठ के कागज, स्याही, पृष्ठांकन, तिथि–लेखन, चित्र, हाशिया, हड़ताल–उपयोग, आकार, ग्रंथन आदि से बहुत सी ऐतिहासिक बातें विदित हो सकती हैं या उनकी पुष्टि–अपुष्टि हो सकती है। कागज, स्याही आदि के अलग–अलग इतिहास में भी ये बातें उपयोगी हैं।

7.3 पाठालोचन सामग्री

पाठालोचन सामग्री की प्राप्ति निम्नलिखित दो स्रोतों से हो सकती हैं –

(क) मूल – रचनाकार का पाठ

(ख) रचनाकार के अलावा व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत किया हुआ पाठ

उपर्युक्त दोनों प्रकार की सामग्री हमें निम्न प्रकार से मिल सकती है –

1. हस्तलिखित ग्रंथ–भण्डारों की सूचियों से।
2. पुराने पुस्तकालयों की सूचियों से।
3. अनुसंधान या खोज रिपोर्टों से।
4. हस्तलिखित पुस्तकों के स्वामियों या संरक्षकों से।
5. हस्तलिखित ग्रंथों के संग्रह में संलग्न व्यक्तियों से अथवा अनुसंधानकर्ताओं से।

इनमें से किसी भी प्रकार से आपके मतलब की मूलपाठ प्रति मिल सके, उन्हें प्राप्त कर लेना चाहिए।

7.4 मूलपाठ संबंधी विकृतियाँ

मूलपाठ सम्बन्धी विकृतियाँ इन दोनों ही प्रकार के स्रोतों से प्राप्त सामग्री में हो सकती है, क्योंकि कभी–कभी मूल रचनाकार द्वारा भी असावधानीवश भूल हो सकती है और प्रतिलिपियों द्वारा तो सुनने या अन्य प्रकार की असावधानी के कारण इस प्रकार की भूलें होती ही रहती हैं क्योंकि सभी हस्तलेख मूलपाठ में नहीं हो सकते। वे तो मूलपाठ वंश

के आगे की कई पीढ़ियों से आगे के हो सकते हैं। मूलपाठ से शुरू में जितनी प्रतिलिपियाँ लिखी गई वे सभी मूलपाठ के वंश की प्रथम स्थानीय संतानें मानी जा सकती हैं। जैसे – मूलपाठ से चार लिपिक प्रतिलिपि निम्न प्रकार प्रस्तुत करते हैं –

प्रथम	–	2 प्रतियाँ
द्वितीय	–	3 प्रतियाँ
तृतीय	–	4 प्रतियाँ
चतुर्थ	–	5 प्रतियाँ

यह भी निश्चित है कि प्रत्येक लिपिक अपनी–अपनी विद्या–बुद्धि से अपनी ही पद्धति से प्रतिलिपि प्रस्तुत करेगा। परिणामतः लिपिक की कितनी ही प्रकार की अयोग्यताओं के कारण मूलपाठ अशुद्ध हो जाता है। जैसे – लिपिक में मूलपाठ की लिपि को ठीक–ठीक पढ़ने की योग्यता के अभाव के कारण पाठ अशुद्ध हो जाएगा। कभी–कभी असुन्दर हस्तलेख के कारण लिपिक किसी शब्द को कुछ का कुछ लिख सकता है। पाठालोच्य सामग्री, मूलप्रति/प्रतियों, टीकाओं, अनुवादों संकलनों आदि के रूप में मिल सकती है, साथ ही समकालीन रचनाकारों की रचनाएँ भी सहायक हो सकती है। इस सम्पूर्ण सामग्री में मूलप्रति का सर्वाधिक महत्त्व है। इसके अभाव में अन्य गौण सामग्री भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

7.4.1 मूलपाठ की अशुद्धि और लिपिक

'मूलपाठ' का लेखन यदि सुन्दर नहीं होता है, तब अज्ञानता के कारण प्रतिलिपिकार किसी शब्द को कुछ का कुछ लिख देता है। इससे पाण्डुलिपि में अनेक विकार आ जाते हैं। इस 'कुछ का कुछ' लिखने के 3 कारण हैं। ये निम्नलिखित हैं –

7.4.2 शब्द–विकार : काल्पनिक

मूल लेखक द्वारा लिखे 'राम' को 'राय' पढ़ लेना या 'राय' को 'राम' पढ़ना असम्भव नहीं है। इसी प्रकार 'र' और 'व' (रव) को 'ख' पढ़ा जा सकता है। ऐसे एक नहीं अनेक 'शब्द' किसी भी पाण्डुलिपि को पढ़ने में आते हैं, जिनको असावधानी के कारण कुछ का कुछ पढ़ा जा सकता है। फलतः लिपिक भी भ्रमवश कुछ का कुछ लिख सकता है। इस भ्रम की परम्परा का कोई अन्त नहीं। परिणामतः मूल शब्द का अर्थ ही कुछ का कुछ हो जाता है। जैसे –

मूल लेखक ने लिखा	–	राम
प्रथम लिपिक ने पढ़ा	–	'राय'
द्वितीय लिपिक ने पढ़ा	–	'राच' (लिखने में 'य' की शीर्ष रेखा कुछ हटा ली तो 'य' को 'च' पढ़ लिया गया।)

तृतीय लिपिक ने इसे पढ़ा – 'सच' (उसे लगा कि 'र' और 'या' की खड़ी पाई के बीच 'स' बनाने वाली रेखा भूल से छूट गई है।)

चतुर्थ लिपिक ने इसे पढ़ा – 'सत्र' ('च' लिपिक की शैली के कारण 'च' को 'त्र' पढ़ा जा सकता है।)

इस प्रकार एक ही शब्द भ्रमवश विकार को प्राप्त कर भविष्य के लिए विकारों की श्रृंखला बना देता है।

7.4.3 शब्द–विकार – यथार्थ

महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी कृत 'पद्मावत' महाकाव्य की निम्न पंक्ति को देखिए–

होइ लगा जेवनार सुसारा – डॉ. माता प्रसाद गुप्त का पाठ

होइ लगा जेंवनार पसारा – आ. रामचन्द्र शुक्ल का पाठ

इस पंक्ति में डॉ. गुप्त ने 'सुसारा' पढ़ा है तो आ. शुक्ल ने 'पसारा' पढ़ा है।

इसी प्रकार 'बीसलदेव रासो' (डॉ. तारकनाथ बाली) की 27 प्रतियों में से कुछ प्रतियों की एक पंक्ति में शब्द विकार को यों देखा जा सकता है –

(1) सं. 1633 की प्राचीनतम प्रति में – 'गवर का नंदन त्रिभुवन सार'।

(2) सं. 1669 की प्रति में – 'गौरि का नंदन त्रिभुवन सार'।

(3) सं. 1681 की प्रति में – 'गउरि का नंदन त्रिभुवन सार'।

(4) सं. 1724 की प्रति में – 'गवरी का नंदन त्रिभोवन सार'।

(5) सं. 1737 की प्रति में – 'गवरि का नंदन त्रिभुवन सार'।

'गवर का' पाठ भेद 'गौरिका', 'गउरिका', 'गवरीका' तथा 'गवरिका' हो गया है।

मंझन कृत 'मधुमालती' की केवल चार प्रतियाँ उपलब्ध हैं, जिनको लेकर डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने 'मधुमालती' का पाठ संपादन किया है। ये चारों प्रतियाँ रा.भा.मा. और ए. संकेताक्षरों से सूचित की गई हैं। एक उदाहरण देखिए – मा.भा.ए.

(1) स्वीकृत पाठ – सरग चाँद 'जैस कुई पतारा'।
इन्ह हुहुं कैस पेप बेवहारा।

'जैस कुई पतारा' के स्थान पर मा. में 'वसै मीन पचारा' भा. में 'बस मीन पतारा' और ए. में 'बस मनि पतारा' है। प्रेम व्यवहार चन्द्र और कुमुदिनी का ही लोक–प्रसिद्ध है, चन्द्र और मीन का नहीं।

7.4.4 प्रमाद वश

पाण्डुलिपियों की पुष्पिकाओं में लिपिक कहता है कि 'यादृशं पुस्तके दृष्टवा तादृशं लिखितं मया' – 'जैसा देखा है वैसा ही लिखा है'। 'पंडित जन सौ बिनती मोरी। टूटा अक्षर मेरवहि जोरी', परन्तु उपर्युक्त उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि लिपिक ऐसा कर नहीं पाता। मूल पाठ को पढ़ कर ही तो लिपिक लिखेगा। इस पढ़ने और लिखने में अज्ञान और प्रमाद से कुछ का कुछ परिणाम हो जाता है। उपर्युक्त उदाहरण प्रमाद लिपिक के प्रमाद के उदाहरण हैं। यह प्रमाद 'दृष्टिकोण' कहलाता है। दूसरा 'लोपक प्रमाद' होता है, जिसमें लिपिक किसी शब्द या वाक्य के किसी अंश को ही छोड़ देता है।

7.4.5 छूट, भूल, आगम और अन्य विकृतियाँ

यदि लिपिक स्थिर चित्त होकर नहीं लिख रहा है तो वह अपने मन में तो पूरा शब्द बोलता है, परन्तु लिखते समय उससे कोई न कोई अक्षर छूट जाता है। जैसे 'सरवर' को 'सवर' लिखना। लिपिक 'र' को लिखना ही भूल गया। इसी प्रकार अनुनासिक, चंद्र बिन्दु एवं लघु–गुरु मात्राओं की भूल तो होती ही रहती है। कभी–कभी किसी अक्षर का 'आगम' तो कभी 'विपर्यय' भी हो जाता है। कभी एक ही अक्षर या शब्द दो बार लिखा जाता है। कभी–कभी लिपिक द्वारा भ्रमवश अपने को लेखक से अधिक योग्य समझ कर या किसी शब्द का अर्थ ठीक नहीं समझ पाने के कारण कोई अन्यार्थक शब्द या वाक्य समूह रख देता है। जैसे 'आखत ले' को 'आँख तले' कर देता है। ऐसे लिपिकर्ता प्रमादवश मूल पाठ में गंभीर विकार उत्पन्न कर देते हैं। इस ओर डॉ. टेसीटरी ने 'वचनिका' की भूमिका, पृ. 9 पर विशेष ध्यान आकर्षित किया है, क्योंकि प्राचीन चारण साहित्य के लिपिकों में अक्सर ऐसा पाया गया है। कहने का अभिप्राय यह है कि ये विकृतियाँ प्रायः चार प्रकार से होती है –

1. मूलपाठ में लिपिक की कुछ अपनी ओर से बढ़ा देने की प्रवृति से।
2. लिपिक द्वारा किसी पाठ को अशुद्ध समझ कर छोड़ देने से।
3. किसी पाठ के स्थान पर लिपिक द्वारा दूसरा पाठ लिख देने से।
4. कभी–कभी पाठ के क्रम में परिवर्तन कर देने से।

'अनुसंधान' में पं. उदय शंकर शास्त्री कहते हैं – "कभी–कभी किसी संकेत विशेष का न समझ पाने से, हाशिये पर लिखे हुए संकेत को असावधानी से दूसरे स्थान पर लिख जाने से भी पाठ भेद या विकार हो जाता है। इस प्रकार आगम, लोप, विपर्यय और व्यत्यय इन चार के अतिरिक्त भी पाठ भेद पाए जाते हैं। इसलिए हस्तलेख में यह भी देख लेना चाहिए कि लिपिक ने कहीं अपनी ओर से कोई सुधार तो नहीं कर दिया है अथवा कहीं कुछ छोड़ तो नहीं गया है।"

कभी–कभी परस्पर समानता के कारण लिपिक एक के स्थान पर दूसरा अक्षर लिख देता

है, जिससे पाठ में विकृति की संभावना बढ़ जाती है। प्रसिद्ध पाण्डुलिपि वैज्ञानिक मुनि पुण्य विजय जी ने हस्तलिखित ग्रंथों में प्रयुक्त ऐसे अक्षरों की सूची दी है, (भारतीय जैन श्रमण संस्कृति अने लेखनकला, पृष्ठ 78–79) उनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं –

(क) मूल वर्ण क का क् लिखा जा सकता है। इसी प्रकार ख झ र व, स्व, ग झ रा, द्य झ घ, व, थ, प्य, च झ वु,ठ, ध, छ झ ब, ज, ज्ञ, ट झ ठ, द, उ झ र, म, त झब, च झ व, न झ त, व, नु झ तु, प झ ए, य, फ झ पु, भ झ पु, भ झ स, म, म झ फ, स, रा, ग, व झब, त, ह झ ई, त्त झ तू, छ झ द्व, द्ध, द्र, ग्र झ ग्ग, ग्ज, द्र झ उ, वु झ तु, ध झ थ, घ, ज्ज, झ ब्व, द्य, सू झ स्त, स्व, म्, त्थ झ च्छ, कृ झ क्ष, त्व झ च, प्रा झ था, टा झ य, च झ थ, एय झ एम, था झ थ्य, पा झ प्य, सा झस्य, षा झ ष्य, ड्ढ झ ट्ट, द्द, त्त झ न्न, च्च झ थ, इ झ ह, द्र, ई, ई, ए झ प, च, ऐ झ पे, ये, क्ष झ क्र, कु, क्ष, प्त झ प्, पृ, सु झ मु, ष्ठ झ ष्व, ष्ट, ब्द, त्म झ त्स, ता, त्य, क झ क्त, ऋ।

(ख) इसी प्रकार लिपिकर्ता की भ्रान्तियों के कारण शब्द रूपों के भ्रांत–लेखन के भी कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं –

प्रभाव, प्रमाद वश प्रसव लिखा जा सकता है, स्तवन झ सूचन, यच्च झ यथा, नवाँ झ तथा, नच झ तव, तदा झ तथा, पर्वत्तस्य झ पवन्नस्य, नचैव झ तदैव आदि।

इस प्रकार लिपिक अक्षर ही नहीं 'शब्द' भी छोड़ जाता है। कोई दूसरा लिपिक अपने अनुमान से कोई कोई शब्द वहाँ रख देता है। इस तरह पाठ में विकृतियों का सिलसिला चलता रहता है।

7.5 मूल पाठ : वंश–वृक्ष

यह स्वाभाविक सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति की लेखन–कला अपनी प्रवृति एवं प्रकृति के अनुसार अनुशासित होती है। यही कारण है कि हम किसी के हस्तलेख को पढ़ते समय अपनी प्रवृत्ति के अनुसार पढ़ते या लिखते हैं। परिणामतः मूल लेखक ने अपनी प्रवृति अनुसार जो लिखा उसे हम अपनी प्रवृति के कारण गलत पढ़–लिख लेते हैं। मुख्य प्रश्न लिखावट का है। कोई लिपिक 'अ' लिखता है और कोई 'ऋ' लिखता है, कोई 'ष' या 'ख' लिखता है। कोई शिरोरेखाएँ लगाता है कोई नहीं। कोई भ और 'म' में, 'प' और 'य' में अन्तर करता है या नहीं – ये सभी बातें लिपिकर्ता की प्रकृति और प्रवृत्ति से सम्बन्ध रखती है। इसलिए प्रत्येक हस्तलिपि, लिपिकर्ता की प्रकृति और प्रवृत्ति के कारण भिन्न होती है। अतः 'वंश वृक्ष' में पहली स्थानीय सन्तानें ही तीन लिपिकर्ताओं के माध यम से तीन वर्गों में विभक्त हो जायेंगी। इसके बाद इन प्रथम स्थानीय प्रतियों से फिर अन्य लिपिक प्रति तैयार करेंगे और एक के बाद दूसरी से प्रतिलिपियाँ तैयार होती रहती है। इस तरह एक पाण्डुलिपि का वंश–वृक्ष बढ़ता रहता है। इसको डॉ. सत्येन्द्र ने 'पाण्डुलिपि विज्ञान' के पृ. 220 पर इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

मूलपाठ

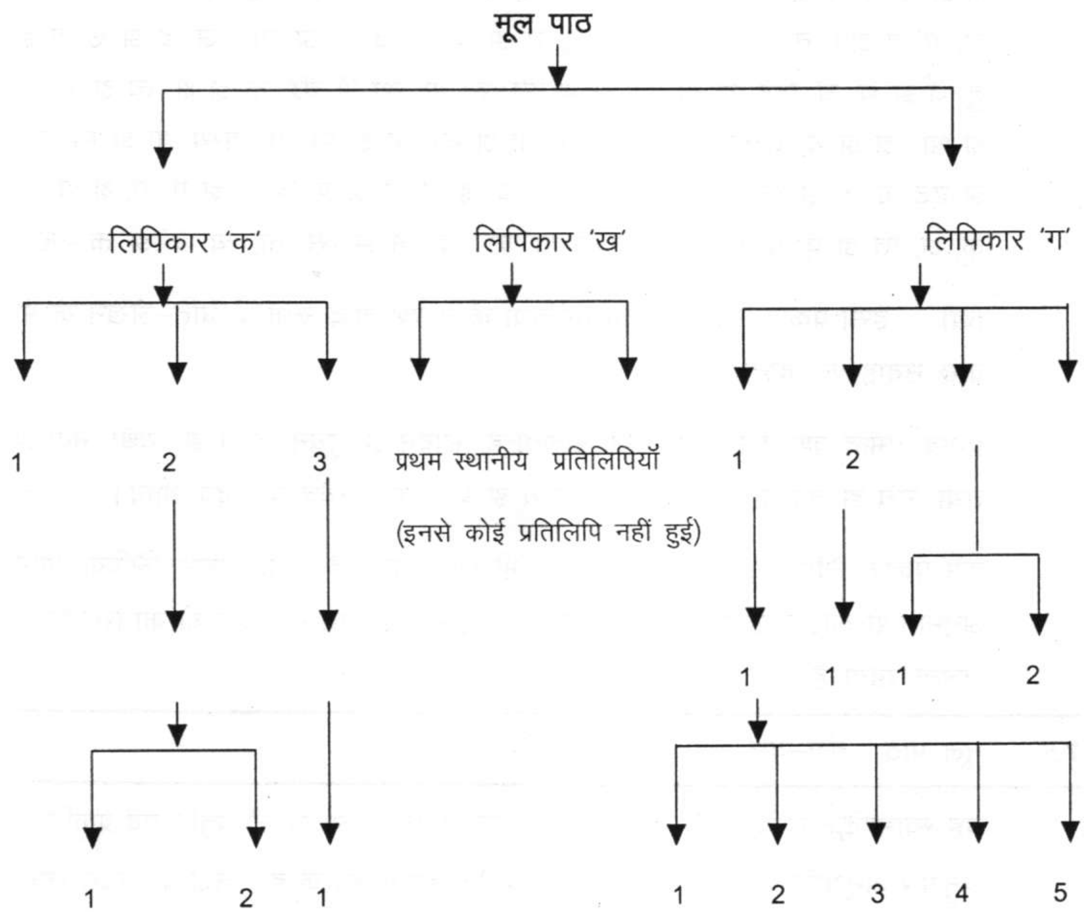

इस प्रकार प्रत्येक पाठ में कुछ न कुछ वैशिष्ट्य मिलता रहेगा और वंश–वृक्ष बढ़ता जायेगा।

पाठालोचन की आवश्यकता तब होती है जब ग्रंथागार में एक ही प्रति उपलब्ध हो और वह भी 'मूलपाठ' वाली न होकर निम्नलिखित वर्ग – (८) 2–3–1–5–2 की हो। अर्थात् चौथी पीढ़ी की दूसरी शाखा की तीन प्रतियों में से प्रथम प्रति की पाँचवीं प्रति की दूसरी प्रति। इसे यों समझा जा सकता है –

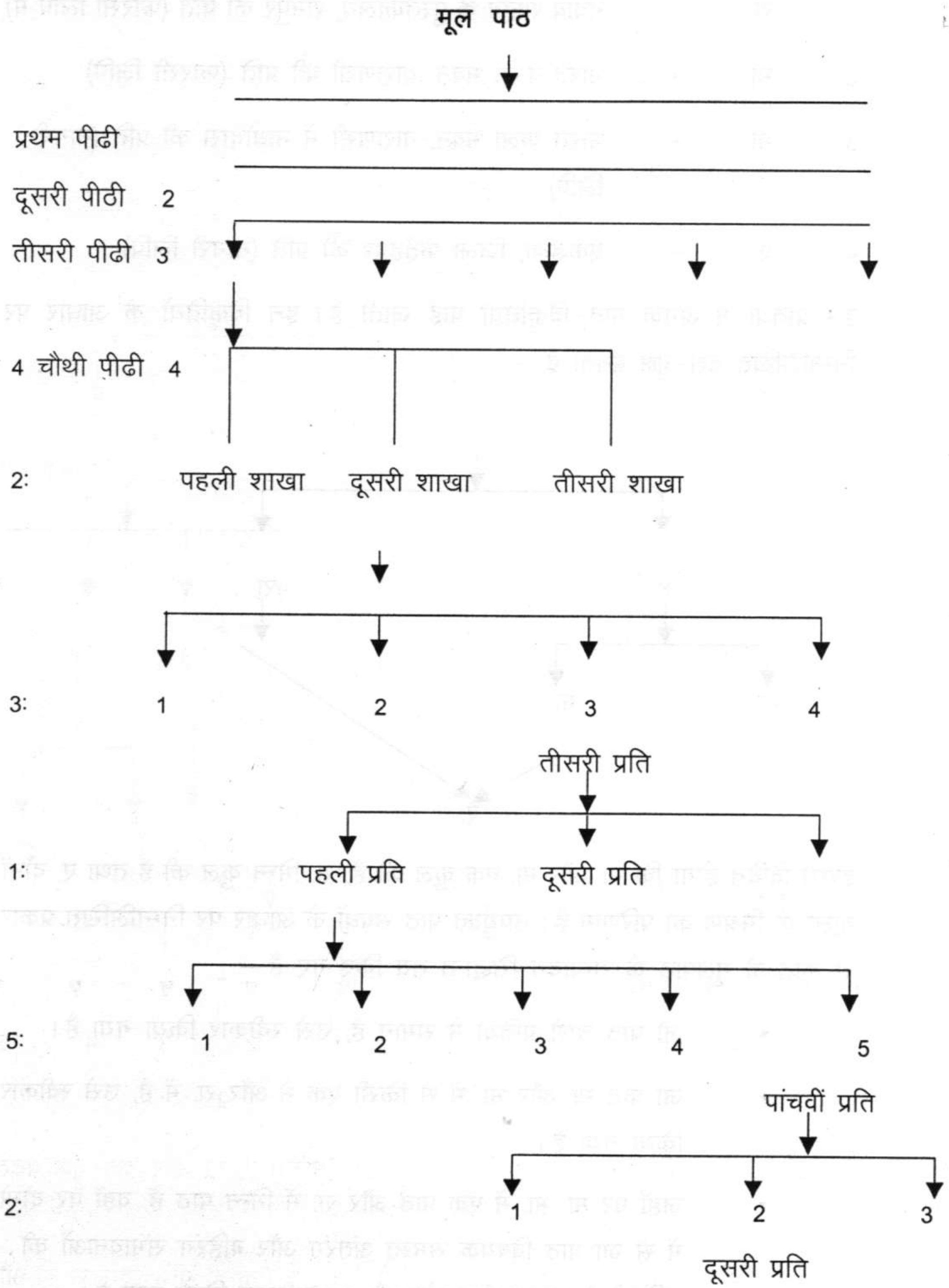

इससे यह स्पष्ट है कि इस 'मूलपाठ' के पूरे वंशवृक्ष में प्रत्येक प्रति का अपना महत्त्व है। कारण यह है कि प्रत्येक प्रति एक कड़ी का कार्य करती है।

डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने 'मंझन कृत मधुमालती' का 'मूलपाठ' सम्पादित करते समय 'पाठालोचन' की जिस पद्धति का अनुसरण किया है, उसे भी देख लें। मंझन कृत मधुमालती की केवल चार प्रतियाँ प्राप्त है और इसके सम्पादन–पाठालोचन में इन चारों का उपयोग किया गया है। ये निम्न प्रकार हैं –

1. रा. – नवाब साहब के पुस्तकालय, रामपुर की प्रति (फारसी लिपि में)

2. भा. – भारत कला भवन, वाराणसी की प्रति (फारसी लिपि)

3. मा. – भारत कला भवन, वाराणसी में माधोदास की प्रति (नागरी लिपि)

4. ए. – एकड़ला, जिला फतेहपुर की प्रति (नागरी लिपि)

इन प्रतियों में अनेक पाठ–विकृतियाँ पाई जाती हैं। इन विकृतियों के आधार पर निम्नलिखित वंश–वृक्ष बनता है –

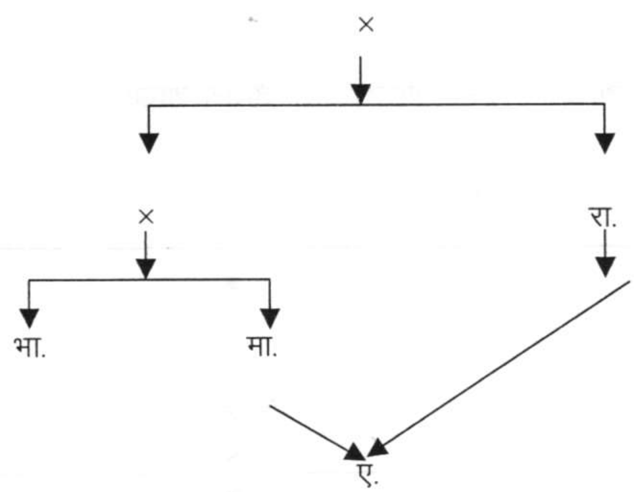

इससे विदित होगा कि भा. और मा. एक कुल की हैं, रा. भिन्न कुल की है तथा ए. दोनों कुलों के मिश्रण का परिणाम है। उपर्युक्त पाठ संबंधों के आधार पर निम्नलिखित प्रकार से कृति के मूलपाठ के सम्पादन सिद्धान्त तय किए गए हैं –

- जो पाठ चारों प्रतियों में समान है, उसे स्वीकार किया गया है।
- जो पाठ मा. और भा. में से किसी एक में और रा. में है, उसे स्वीकार किया गया है।
- जहाँ पर मा. भा. में एक पाठ और रा. में भिन्न पाठ हैं, वहाँ पर दोनों में से जो पाठ विषयक समस्त अंतरंग और बहिरंग संभावनाओं की दृष्टियों में सम्भव ज्ञात होता है, वह स्वीकार किया गया है।
- ए. प्रति का पाठ उन्हीं स्थलों पर देखा गया है जहाँ पर मा. और भा. दोनों के समान रूप से खण्डित होने के कारण दो में से किसी का भी पाठ प्राप्त नहीं है और ए. का पाठ रा. के पाठ से भिन्न है।
- रचना के प्रथम छन्द में केवल ए. का पाठ प्राप्त होने के कारण आवश्यक संशोधनों के साथ उसी को ग्रहण करना पड़ा है।

डॉ. हीरालाल माहेश्वरी ने भी 'जाम्भोजी, विश्नोई सम्प्रदाय और साहित्य' में जम्भवाणी का पाठ–सम्पादन डॉ. माता प्रसाद गुप्त के सम्पादन सिद्धान्तों की तर्ज़ पर ही किया है।

7.5.1 क्षेपक

पाठालोचनकर्ता को प्रतिलिपिकर्ता के प्रमाद के कारण हुए वर्तनी एवं शब्द–भेदों संबंधी विकारों से सजग रहना चाहिए। इसी प्रकार मूल ग्रंथ में आये क्षेपक, प्रक्षिप्तांश या छूट के कारण भी विकृति आ जाती है। प्राचीन ग्रंथों में इस विकृति की अधिक गुंजाइश रहती है। ऐसे क्षेपकों से युक्त काव्यों को आजकल 'विकासशील' काव्य कहा जाने लगा है। 'विकासशील' काव्य मानने वालों का यह कहना है कि अपने मूल रूप में छोटे काव्य को बाद के लिपिकर्ताओं, पाठकों, कवियों या कथावाचकों ने नमक–मिर्च लगाकर विशाल महाकाय बना दिया है। 'महाभारत' और 'पृथ्वीराज रासो' ऐसे ही काव्य ग्रंथ हैं। यहाँ तक कि कथावाचकों ने 'रामचरितमानस' में स्वरुचि के अनुसार 'गंगावतरण' का क्षेपक जोड़ दिया है।

7.5.2 क्षेपक के कारण

किसी काव्य में इन क्षेपकों का समावेश निम्नलिखित कारणों से होता है –

- किसी कथावाचक या कवि द्वारा अपने उपयोग के लिए ऐसे स्थलों को जोड़ देना, जो उसे उपयोगी लगते हैं। वह ऐसा या तो किसी विशेष स्वरूचि के प्रकरण को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए या अपनी किसी स्वतंत्र रचना को जो उसकी पाठ्यकृति के किसी अंश से संबंधित है, जोड़ देता है।
- कभी–कभी एक ही विषय की भिन्न–भिन्न रचनाओं को किसी अन्य व्यक्ति द्वारा एक में संदर्भानुसार सम्पादित कर दिया जाता है।
- कभी–कभी रचनाकार के अधूरे ग्रंथ को उसी रचनाकार के पुत्र या शिष्य पूरा करते हैं। कभी–कभी ग्रंथ के आगे परिवर्तन या संशोधन भी कर देते हैं। ऐसा 'पृथ्वीराज रासो', जैन काव्य 'पउमचरिउ' आदि के संदर्भ में कहा जाता है।
- कभी–कभी अपूर्ण या बिखरी हुई सामग्री की लुप्त कड़ियाँ मिलाने हेतु कवि अपनी ओर से बीच–बीच में रचना जोड़ देते हैं। जैसे राजस्थानी के लोक–काव्य 'ढोला मारू रा दूहा' के बारे में कहा जाता है कि महाकवि कुशललाभ ने कथापूर्ति हेतु बीच–बीच में चौपइयाँ जोड़ दीं। कभी–कभी स्वयं की रचना के अतिरिक्त किसी अन्य कवि के कृतित्व को भी जोड़ दिया जाता है।
- कभी–कभी नया कवि किसी पुराने कवि के नाम की छाप जोड़ कर रचना में प्रक्षेपक अंश समाहित कर देता है। ऐसा सूर, कबीर, मीरां, तुलसी आदि के पदों में प्रायः देखा जा सकता है। मुक्तक साहित्य में ऐसा अक्सर हो जाता है।

परिणामतः एक कुशल पाठालोचक को चाहिए कि वह ऐसे क्षेपकों की पहचान कर उन्हें निकाले और वैज्ञानिक प्रणाली से मूलपाठ को प्रस्तुत करे। ऐसा करते समय स्वेच्छा या अवैज्ञानिकता को महत्त्व न दे।

7.5.3 छूट

क्षेपकों की तरह पाठ में 'छूट' की भी संभावना रहती है। प्रतिलिपिकर्ता कभी–कभी प्रमादवश कोई पंक्ति, शब्द या वर्ण छोड़ देता है। पाठालोचक का यह दायित्व है कि ऐसी छूटों को प्रामाणिक मूल पाठ में प्रतिष्ठित करें।

7.6 अप्रामाणिक रचनाएँ

कभी–कभी ऐसी रचनाएँ भी प्राप्त होती है जो पूरी की पूरी अप्रामाणिक होती हैं। ऐसी रचनाएँ जिस रचनाकार के नाम से प्रचारित की जाती हैं वस्तुतः वह उस द्वारा लिखित नहीं होती। यह श्रद्धालुओं या शिष्यों द्वारा लिखित होती हैं। इस प्रकार के छल–छद्म का पर्दाफास पाठालोचन या पाठानुसंधान द्वारा ही किया जा सकता है। अतः कहा जा सकता है कि पाठालोचन एक महत्त्वपूर्ण अनुसंधान है।

.6.1 पाठालोचन : शब्द और अर्थ का महत्त्व :

पाठालोचन में शब्द और अर्थ का संबंध अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है। शब्द है और शब्द के पीछे उसका सत्य–स्वरूप अर्थ है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल अपने 'कला और संस्कृति' ग्रंथ के पृ. 221 पर कहते हैं –"शब्द ईंधन की तरह भारी है। अर्थ अग्नि के समान, फूल की तरह हल्का। शब्द पृथ्वी की ओर गिरता है, अर्थ आकाश की ओर उठ कर तैरता है।" शब्द और अर्थ के संबंध को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं, "शब्द शरीर है, अर्थ प्राण है। शब्द रूपी शरीर की श्री अर्थ रूपी प्राण में है। महाकवि कालिदास ने 'रघुवंश' में कहा है –

> वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थो प्रतिपत्तये।
>
> जगत. पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।।"

अर्थात् शब्द अर्थ के समान सम्पृक्त जगत के माता–पिता पार्वती परमेश्वर को (मैं) वाणी अर्थ की प्रतिपत्ति के लिए वन्दना करता हूँ।

शब्द और अर्थ का सम्बन्ध भाषाविज्ञान और साहित्य दोनों से है। पाठालोचन में एक भाषा वैज्ञानिक तथ्यपरक दृष्टि और साहित्यकार का संवेदनशील रूप, दोनों ही अपेक्षित है। इस सम्बन्ध में 'सम्मेलन पत्रिका' के अंक 1892 के पृ. 177 पर डॉ. किशोरीलाल कहते हैं –

"इस दृष्टि से सम्पादन की दो सारणियों का उपयोग हो रहा है –

(1) वैज्ञानिक सम्पादन और (2) साहित्यिक सम्पादन। वैज्ञानिक एवं साहित्यिक

प्रक्रिया में मूलतः अन्तर न होते हुए भी आज का वैज्ञानिक सम्पादक 'शब्द' को अधिक महत्त्व देता है और साहित्यिक सम्पादक 'अर्थ' को। इसमें सन्देह नहीं कि शब्द और अर्थ की सत्ता परस्पर असंपृक्त नहीं है, फिर भी अर्थ को मूलतः ग्रहण किये बिना प्राचीन हिन्दी काव्यों का सम्पादन सर्वथा निर्भ्रान्त नहीं। इन्हीं सब कारणों से शब्द की तुलना में अर्थ की महत्ता स्वीकार करनी पड़ती है। आज अधिकतर पाठ–सम्पादन में जो भ्रांतियाँ उत्पन्न होती है, वे अर्थ न समझने के कारण।"

डॉ. किशोरीलाल के कथन की आलोचना करते हुए डॉ. सत्येन्द्र "पाण्डुलिपि विज्ञान" के पृ. 223 पर कहते हैं – "डॉ. किशोरीलाल जी ने जो विचार व्यक्त किये हैं, वे समीचीन हैं, पर किसी सीमा तक ही। ठीक पाठ न होने से ठीक अर्थ पर भी नहीं पहुँचा जा सकता। डॉ. किशोरीलाल जी ने अपने निबन्ध में जो उदाहरण दिये हैं, वे गलत अर्थ से गलत शब्द तक पहुँचने के हैं। उदाहरणार्थ, 'आँख तले' जिसने पाठ दिया, उसकी समझ में 'आँख तले' नहीं जमा, उसे लगा कि 'आँख' को ही गलती से 'आख' लिख दिया गया है। 'आख' का कोई अर्थ नहीं होता, ऐसा उसने माना। क्योंकि पाठ–सम्पादक या लिपिक ने अर्थ को महत्त्व दिया, उसने 'आख' को 'आँख' कर दिया। अब आप अर्थ को महत्त्व देकर 'आखत ले' कर रहे हैं, तो भ्रांत पाठ वाले की परिपाटी में ही खड़े हैं। यथार्थ यह है कि 'आँख' और 'आख' शब्द रूप से अर्थ ठीक नहीं बैठता। आपने उसके रूप की नयी सम्भावना देखी। 'तले' का 'त' आख से मिलाया और 'ले' को स्वतंत्र शब्द के रूप में स्वीकार किया। 'आँख तले' शब्द रूप के स्थान पर 'आखत ले' रूप जैसे ही खड़ा हुआ, अर्थ ठीक लगने लगा। शब्द रूप 'आख+तले' नहीं 'आखत+ले' है। जब हम शब्द का रूप 'आखत ले' ग्रहण करेंगे तभी ठीक अर्थ पर पहुँच सकेंगे। शब्द ही ठीक नहीं होगा तो अर्थ कैसे ठीक हो सकता है। शब्द से ही अर्थ की ओर बढ़ा जाता है। अतः आवश्यक है कि वैज्ञानिक प्रणाली से ठीक या यथार्थ शब्द पर पहुँचा जाय, क्योंकि शुद्ध शब्द ही शुद्ध या समीचीन अर्थ दे सकता है।" इस प्रकार पाठालोचन की वैज्ञानिक प्रणाली में शब्दों का महत्त्व स्वयंसिद्ध है किन्तु मूल–पाठ निर्धारण में अर्थ का भी कम महत्त्व नहीं है।

7.7 पाठालोचन की प्रणालियाँ

'पाठालोचन' की तीन प्रणालियाँ प्रचलित हैं – (1) स्वेच्छया पाठ निर्धारण प्रणाली, (2) तुलनात्मक स्वेच्छया – सम्पादनार्थ पाठ–निर्धारण प्रणाली, (3) वैज्ञानिक प्रणाली।

7.7.1 स्वेच्छया पाठ–निर्धारण प्रणाली

स्वेच्छया पाठ–निर्धारण प्रणाली पाठालोचन की एक सामान्य प्रणाली होती है, जिसमें सम्पादक, पुस्तक का सम्पादन करते समय प्राप्त प्रति ही पर निर्भर रहता है। इसमें वह इतना भर कर सकता है कि जो सामान्य दोष–मात्रा, वर्ण आदि के – दिखाई देते हैं ; उन्हें वह दूर कर सकता है। इस प्रकार के अनेक सम्पादन, जो एक प्रति पर आधारित

थे, हमने किये हैं। जैसे – श्रीराम परत्व ग्रंथ की टीका, सदाचार प्रकाश, श्री रामोपासना आदि।

7.7.2 तुलनात्मक स्वेच्छया सम्पादनार्थ पाठ निर्धारण प्रणाली

दूसरी प्रणाली के अन्तर्गत सम्पादक को किसी ग्रंथ की दो प्रतियाँ मिलती हैं। वह उन दोनों की तुलना करता है। तुलना करने की प्रक्रिया में दोनों प्रतियों में पाठ–भेद मिलता है तो उसे किसी भी कारण से जो पाठ अच्छा लगता है वह उसी को ठीक मान लेता है। इस प्रकार के सम्पादन में पाठान्तर देने की आवश्यकता नहीं होती। हाँ, यदि उसे दोनों ही पाठ अच्छे लगते हैं तो मूलपाठ में ही कोष्ठकों में या नीचे दूसरा पाठ भी दे देता है।

इस प्रणाली के अन्तर्गत यह भी देखा गया है कि पाठालोचक को एक ही ग्रंथ के कई पाठ उपलब्ध हो जाते हैं, तब भी वह स्वेच्छया जिस पाठ को उचित मानता है, उसे मूल में रखता है। इस स्वेच्छया सम्पादनार्थ पाठ–निर्धारण में वह अपनी ज्ञान–गरिमा का उपयोग करता है। साथ ही ग्रंथ की प्रामाणिकता सिद्ध करने हेतु वह कवि विषयक स्व–विवेक और कवि की भाषा संबंधी विशेषताओं का सहारा लेता है, किन्तु सम्पादन करते समय पाठ के निर्धारण में अपनी रूचि को ही महत्त्व देता है। फिर उसे ही रचनाकार की रचना मान कर, रचनाकार के तत्संबंधी वैशिष्टय को सिद्ध करने का प्रयास करता है। इस कार्यप्रणाली की सूचना वह भूमिका में दे देता है, किन्तु जब दो प्रतियों के पाठ–निर्धारण में कौन–सी कृति श्रेष्ठ है, यह तय करना मुश्किल होता है तब वह एक पाठ के साथ दूसरा पाठ विकल्प में दे देता है। कभी–कभी इस दूसरे पाठ को पाठान्तर की तरह पाद–टिप्पणी में भी दे दिया जाता है।

7.7.3 वैज्ञानिक पाठालोचन प्रणाली

वैज्ञानिक पाठालोचन प्रणाली में कई पाण्डुलिपियों की तुलना की जाती है। तुलनात्मक आधार पर प्रत्येक प्रति में व्याप्त त्रुटियों–भूलों में साम्य–वैषम्य देखा जाता है। इसे परिणाम के आधार पर इन समस्त पाण्डुलिपियों का एक वंशवृक्ष तैयार किया जाता है और रचना का मूल पाठ या आदर्श पाठ निर्धारित किया जाता है। यहाँ वैज्ञानिक पाठालोचन का प्रारंभ होता है। आज पाठालोचन एक अलग विज्ञान बन गया है। कुछ विद्वान इसे साहित्य की अपेक्षा भाषा विज्ञान का अंग मानते हैं। डॉ. टेसीटरी, माता प्रसाद गुप्त, मुनि जिन विजय, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. माहेश्वरी, डॉ. तारकनाथ बाली आदि विद्वानों ने इसी वैज्ञानिक पाठालोचन पद्धति या प्रणाली से अपने ग्रंथों का पाठ–सम्पादन किया है।

7.8 पाठालोचन की प्रक्रिया

पाठालोचन या पाठानुसंधान की प्रक्रिया में निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाना

अपेक्षित है –

7.8.1 पाण्डुलिपि या ग्रंथ–संग्रह

पाण्डुलिपि या हस्तलिखित ग्रंथ प्राप्त करने के कई तरीके हैं। ये ग्रंथ या तो किसी के घर या मन्दिर या पुस्तकालयों में रखे हुए हैं। इसलिए अनुसंधित्सु के लिए यह आवश्यक है कि वह उन तमाम स्थानों से परिचित हो लें जहाँ उसके विषय से संबंधित ग्रंथ उपलब्ध हो सकते हैं। डॉ. सत्येन्द्र जी ने 'अनुसंधान के मूलतत्व' पुस्तक के पृ. 73 पर निम्नलिखित सूचना दी है, जहाँ से ग्रंथ प्राप्त किए जा सकते हैं।

- हस्तलिखित ग्रंथ–भण्डारों की सूचियों से,
- पुराने पुस्तकालयों की सूचियों से,
- अनुसंधान या खोज रिपोर्टों से,
- हस्तलिखित पुस्तकों के स्वामियों या संरक्षकों से,
- हस्तलिखित ग्रंथों के संग्रह में संलग्न व्यक्तियों से अथवा अनुसंधाताओं से।

अतः सर्वप्रथम किसी एक ग्रंथ का पाठालोचन करते समय उस ग्रंथ से संबंधित प्रकाशित एवं अप्रकाशित (हस्तलिखित) सामग्री का संकलन कर लेना चाहिए। जहाँ–जहाँ भी उक्त ग्रंथ के प्राप्त होने की संभावना हो वहाँ स्वयं जाकर या पत्र–व्यवहार या दूरभाष आदि द्वारा सूचनाएँ एकत्र कर लेनी चाहिए। इसके बाद उन ग्रंथों को उन–उन स्थानों से प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। कहीं से आपको मूल प्रति मिलेगी, तो कहीं से फोटो कॉपी या किसी प्रतिलिपिकर्ता द्वारा तैयार की गयी प्रतिलिपि मिलेगी। कहीं–कहीं से माइक्रो फिल्म भी लेनी पड़ सकती है। इस प्रकार येन–केन–प्रकारेण ग्रंथों का संग्रह करना चाहिए।

7.8.2 तुलना एवं संकेत प्रणाली

ग्रंथ–संग्रह के बाद उनके पाठों की पारस्परिक तुलना करनी होती है। तुलना करने के लिए पहले उन्हें कालक्रमानुसार व्यवस्थित करना होता है फिर प्रत्येक पाण्डुलिपि को एक संकेत नाम देना होता है। ऐसा करने से ग्रंथ के पाठ–संकेत देने में सुविधा रहती है तथा अनावश्यक समय और स्थान की बचत होती है। 'संकेतनाम' किस प्रकार रखा जाये इसे 'संकेत प्रणाली' द्वारा समझना होता है। किसी प्राप्त ग्रंथ का 'नाम–संकेत' देने की कई प्रणालियाँ हैं। जैसे –

7.8.2.1 क्रमांक प्रणाली

इस प्रणाली के अन्तर्गत सभी संग्रहीत आधार–ग्रंथों को क्रमवार (काल–क्रमानुसार) सूचीबद्ध करते समय उन्हें जो क्रमांक दिया जाता है, उसे ही ग्रंथ संकेत मान लिया

जाता है। जैसे – ग्रंथ–सूची के क्रम संख्या (1) पर जयपुर वाली प्रति, क्रम संख्या (2) पर आगरा वाली प्रति, क्रम संख्या (3) पर बीकानेर वाली प्रति आदि। अब जब–जब हम प्रति सं. 2 का उल्लेख करेंगे तो उसका अभिप्राय आगरा वाली प्रति समझा जायेगा। क्रमांक–संकेत देते समय ग्रंथ का विवरण भी देना चाहिए। ग्रंथ विवरण या परिचय में निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए –

(क) पाण्डुलिपि की प्रति के प्राप्ति–स्थान एवं उसके संरक्षक का परिचय।

(ख) प्राप्त–प्रति की वस्तुस्थिति (1) क्या वह पूर्ण है / अपूर्ण है। कटी–फटी या दीमक द्वारा नष्ट है? (2) प्रति पृष्ठ कितनी पंक्तियाँ है और प्रति पंक्ति कितने शब्द हैं ? (3) स्याही का रंग?

(4) कागज कैसा है ? (5) प्रति सचित्र या सादा है ? चित्र है तो कितने और किन रंगों में है आदि।

(ग) छन्द संख्या कितनी है ? आदि मध्य–अंत के छन्दों के उदाहरण।

(घ) पाठ का लेख स्पष्ट है या घसीटाक्षर में है ?

(ड) ग्रंथाकार – से.मी. (फुट इंच) में क्या है ?

(च) प्राप्ति उपाय ?

(छ) पुष्पिका ?

(ज) ग्रंथ–रचना का इतिहास – सन्/संवत् आदि

(झ) पाठ–परम्परा तथा पाठ विषयक उल्लेखनीय बातें – जैसे – वर्तनी संबंधी उलझनें आदि।

(ज) वर्तमान शोध की दृष्टि से प्रस्तुत ग्रंथ का महत्त्व आदि। कभी–कभी प्रति में दिये गये सन् / संवत् को भी 'संकेत' बनाया जा सकता है। जैसे सन् 1560 वाली प्रति आदि।

7.8.2.2 प्रतिलिपिकार प्रणाली

कभी–कभी प्राप्त ग्रंथ के प्रतिलिपिकर्ता के नाम के प्रथम अक्षर को लेकर भी 'संकेत' बनाये जा सकते हैं। जैसे – 'बीसलदेव रासो' की एक प्रति के प्रतिलिपिकार 'पंडित सीहा' है, तो उनके नाम के प्रथम अक्षर 'प.' को लेकर संकेत चिन्ह 'प.' वाली प्रति बनाया जा सकता है। उक्त प्रति की 'पुष्पिका' निम्न प्रकार है –

"इति श्री वीसलदेव रास समाप्रतं। संवत् 1633 वर्षे बैशाष वदि। दिना आदित्य वारे। लिषतं आगरा मध्ये पं. सीहा लिषतं सम्पूर्ण।"

7.8.2.3 स्थान संकेत प्रणाली

पाण्डुलिपि की पुष्पिका में यदि लिपिकर्ता ने लिपि के स्थान का उल्लेख किया है तो उस स्थान के नाम के प्रथम अक्षर के आधार पर भी संकेत बनाया जा सकता है। जैसे – 'वीसलदेव रासो' की उपर्युक्त प्रति आगरा में लिपिबद्ध हुई थी, अतः इसका संकेत चिन्ह 'आ.' वाली प्रति बनाया जा सकता है। जैसे – मंझन कृत मधुमालती का पाठ–सम्पादन करते समय डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने प्राप्त चार प्रतियों के संकेत 'रा.' वाली प्रति (रामपुर वाली), 'भा.' वाली प्रति (भारत कला भवन, वाराणसी वाली), 'मा.' प्रति (भारत कला भवन की माधोदास वाली प्रति) एवं 'ए' प्रति (एकड़ला, जिला फतेहपुर की प्रति) आदि, 'मा. ' को छोड़कर स्थान के नाम के आधार पर ही रखे हैं। इसी प्रकार 'पृथ्वीराज रासो' की मोहनपुरे वाली सं. 1697 की प्रति का संकेत 'मो.' दिया जा सकता है।

7.8.2.4 पाठ–साम्य–समूह प्रणाली

ग्रंथ संग्रह करने के बाद समस्त प्राप्त पाण्डुलिपियों का वर्गीकरण पाठ्य–साम्य के आधार पर समूह बनाकर किया जा सकता है। जैसे – 'बीसलदेव रासो' का पाठ–सम्पादन करते समय डॉ. तारकनाथ बाली ने इसी प्रणाली से पाठ–सम्पादन किया है। उन्होंने प्राप्त हस्तलिखित 27 प्रतियों की सूची बनाकर उनको पुष्पिका के आधार पर चार पाठ–साम्य समूहों में विभाजित किया है। कार्य–सुविधा हेतु इन चार–समूहों का संकेताक्षर क्रमशः 'अ', 'आ', 'क', 'ख' रखा गया है।

(1) 'अ' समूह – इस समूह में क्र.सं. 1 से 4 तक की 17वीं शताब्दी की प्रतियाँ है।

(2) 'आ' समूह – इस समूह में क्र.सं. 5 से 13 तक की 18वीं शताब्दी की प्रतियाँ है।

(3) 'क' समूह – इस समूह में क्र.सं. 14 वाली 19वीं शताब्दी की प्रतियाँ है।

(4) 'ख' समूह – इस समूह में क्र.सं. 15 से 27 तक अज्ञात लेखन काल की प्रतियाँ है।

अब प्रथम 'अ' समूह में 4 ग्रंथ हैं तो उनके संकेत होंगे (1) अ.1, अ.2, अ.3, अ.4

7.8.2.5 पत्र–संख्या प्रणाली

कई बार ग्रंथ संग्रह में 'खुले पत्रों' में भी कोई पाण्डुलिपि हो सकती है। ऐसी पाण्डुलिपि से जब कोई भी ऐसी सूचना उपलब्ध नहीं होती है जिससे 'संकेत' निर्धारित किया जा सके तब पत्रों की संख्या को ही आधार बनाया जा सकता है। जैसे – किसी प्रति में 7 पृष्ठ हैं तो उसका संकेत 'सा.' बनाया जा सकता है। जैसे अब्दुल रहमान कृत 'संदेश रासक' के पाठ सम्पादन के समय डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी एवं डॉ. विश्वनाथ तिवाड़ी को किसी प्रति का एक ही पृष्ठ प्राप्त था, तो भी वह बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। वे कहते हैं – "यद्यपि इस प्रति का एक ही पत्र प्राप्त हुआ है, फिर भी सौभाग्यवश प्राप्त पत्र से

एक विवादास्पद छन्द (सं. 95) के पाठ–शोध के कार्य में बड़ी सहायता मिली।"

7.8.2.6 रूपान्तर प्रणाली

कभी–कभी पाठ साम्य–समूह प्रणाली के समूहों के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि किसी रचना की प्रतियों के दो रूपान्तर है। जैसा कि श्री अगरचन्द नाहटा ने 'बीसलदेव रासो' के दो रूपान्तरों का वर्णन किया है और बताया है कि दोनों रूपान्तरों में काफी भिन्नता पायी जाती है (राजस्थानी, भाग–3, अंक 3, पृ. 18)। एक तो वह जो चार खण्डों में विभक्त है और दूसरा वह जिसमें खण्डों का विभाजन नहीं। 'बीसलदेव रासो' के पाठ–सम्पादन में डॉ. तारकनाथ बाली ने प्राप्त 27 प्रतियों को चार समूहों – अ, आ, क, ख – में विभक्त किया है। प्रत्येक समूह की प्रत्येक प्रति दोनों रूपान्तरों में से किस रूपान्तर में आती है, उसे निम्न प्रकार स्पष्ट करते हैं–

समूह	खण्डों में अविभाजित	खण्डों में विभाजित
अ.	सं. 1, 3, 4	संख्या – 2
आ.	सं. 5, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13	संख्या – 6
क.	सं. 14	
ख.	सं. 15 से 27	

वे कहते हैं – "विभिन्न समूहों के इस विश्लेषण द्वारा यही सिद्ध होता है कि खण्डों में अविभाजित रूपान्तर वाली प्रतियों में प्राचीनतम प्रति 'अ' समूह की संख्या वाली प्रति है, जो सं. 1633 की लिखी हुई है तथा खण्डों में विनाजित रूपान्तर वाली प्रतियों में भी प्राचीनतम प्रति 'अ' समूह की संख्या–2 वाली प्रति है जो सं. 1669 की लिखी हुई है। अतः इन्हीं दो प्रतियों को दोनों रूपान्तरों की प्रतिन्धि प्रति मान कर सम्पादन का कार्य किया गया है।"

7.8.2.7 पुनरुद्धार प्रणाली

पाठालोचन की एक अन्य प्रणाली पुनरुद्धार प्रणाली होती है। इस प्रणाली के अन्तर्गत पुष्पिका के अभाव में दो भिन्न प्रतियों के पन्ने मिले हों और दोनों ही प्रतियाँ खण्डित हों तब उसमें यदि एक ही संख्या के दो पन्ने हों तो, इस पुनरुद्धार प्रणाली का प्रयोग होता है। डॉ. माता प्रसाद गुप्त बबीसलदेव रास के पृ. 5 पर कहते हैं –

"इस प्रति की पुष्पिका भी स्पष्टतः अपर्याप्त थी, किन्तु इसको देखने पर ज्ञात हुआ कि इसके कुछ पन्ने एक प्रति के थे और शेष पन्ने दूसरी प्रति के थे। दोनों प्रतियाँ खण्डित थी और उन्हें मिलाकर एक पुस्तक पूरी कर दी गई थी। यही कारण है कि 19वीं संख्या के इसमें दो पन्ने हैं। इसी पुनरुद्वार के आधार पर इस प्रति का संकेत 'पुः' रख दिया गया है।'"

इसके अतिरिक्त भी अनुसंधानकर्ता स्वयं अपनी कल्पना से कोई भी संकेत किसी ग्रंथ को दे सकता है।

7.9 मूलपाठ – प्रतियाँ

प्राप्त ग्रंथों के संकेत चिह्न निर्धारित करने के बाद प्रत्येक प्रति के एक–एक छन्द को अलग–अलग कागज पर लिख लेना चाहिए। साथ ही प्रत्येक छन्द की प्रत्येक पंक्ति के क्रमांक भी दे देने चाहिए। छन्द लिखते समय कागज का प्रत्येक पत्र इतना बड़ा होना चाहिए कि छन्द लिखने के बाद भी उसमें पाठान्तर, टिप्पणियाँ आदि लिखने के लिए अवकाश रहे। सारे कागज तैयार होने पर पुनः एक बार मूल–प्रति से मिलान कर लेना चाहिए।

7.9.1 मूलपाठ : तुलना

मूलपाठ की प्रतियाँ तैयार हो जाने के उपरान्त प्रत्येक छन्द की सभी प्रतियों के रूपों की तुलना करनी चाहिए। यह देखना चाहिए कि प्रत्येक छन्द समान चरणों के हैं या असमान चरणों के, प्रत्येक चरण में समान शब्द है या भिन्न–भिन्न, प्रत्येक चरण में वर्तनी संबंधी समानता है या असमानता आदि। साथ ही यह भी ध्यान रखें कि किस–किस प्रति में इस चरण में कहाँ–कहाँ भिन्न–भिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस तरह चरण प्रति चरण, शब्द प्रति शब्द तुलना करने के बाद प्रत्येक शब्द के पाठों के अन्तर की सूची बनानी चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक आगम–लोप की सूची भी तैयार करनी चाहिए। साथ ही पिंगल शास्त्र की दृष्टि से भी प्रत्येक चरण की संगति देखनी चाहिए।

7.9.2 तुलना के आधारों पर संबंध

उपर्युक्त तुलना के आधारों पर मूलपाठ की निम्नलिखित तीन 'सम्बन्धों' की दृष्टि से तुलना करनी चाहिए–

(क) प्रतिलिपि – संबंध,

(ख) प्रक्षेप – संबंध,

(ग) पाठान्तर – संबंध

7.9.2.1 प्रतिलिपि संबंध

प्रतियों का प्रतिलिपि संबंध अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है। इससे हमें प्रामाणिक पाठ का निर्धारण करने में सहायता मिलती है। इसी से हमें उन चरणों का पता लग सकता है जिनके आधार पर मूल प्रामाणिक पाठ की खोज की जा सकती है। इससे यह भी मालूम होगा कि किस प्रति की पूर्वज कौन–सी प्रति है? इस प्रकार सभी प्रतिलिपियों का एक वंशवृक्ष तैयार किया जा सकता है। प्रतियों के गहन अध्ययन से उनके पूर्वजों की कल्पना भी कर सकते हैं। ऐसे कल्पित पूर्वज को वंश–वृक्ष में (ग) गुणा के चिन्ह से

बताया जाता है। इससे प्रतियों के संबंध के साथ ही प्राथमिकता की दृष्टि से महत्त्व का भी पता चलता है।

7.9.2.2 प्रक्षेप–संबंध

प्रतिलिपि संबंधों की तरह प्रक्षेपों की तुलना भी की जा सकती है और प्रक्षेपों का भी परस्पर संबंधों का वंश–वृक्ष बनाया जा सकता है।

7.9.2.3 पाठान्तर संबंध

पाठान्तर संबंध की तुलना सभी प्राप्त पाण्डुलिपियों में नहीं हो सकती। कारण यह है कि कुछ ग्रंथों में लिपिकार ही हाशिये में किसी शब्द का पाठान्तर लिख देता है और अन्य बहुतों में पाठान्तर नहीं लिखे होते हैं। हाँ, यदि प्रतिलिपियों में पाठान्तर प्राप्त होते हैं तो उनकी तुलना के द्वारा भी मूलपाठ की खोज में सहायता मिल सकती है।

इस प्रकार इन तीन संबंधों के द्वारा तुलना करने पर जब सर्वाधिक प्रामाणिक पाठ वाली प्रति निर्धारित कर ली जाती है, उसके पाठ को मूलपाठ मान सकते हैं, किन्तु प्रामाणिक पाठ नहीं कह सकते, क्योंकि जिन प्रतियों के पाठ मिश्रण से बने हैं वे प्रामाणिक पाठ नहीं प्रस्तुत कर सकते। हाँ जिन प्रतियों ली परम्परा पर दूसरों का प्रभाव कम से कम पड़ा है, वे ही प्रामाणिक मानी जा सकती हैं। प्रामाणिक पाठ प्रस्तुत करने के लिए उक्त पाठ संबंधों की सम्यक् विवेचना करके पाठ–सम्पादन के सिद्धान्त तय कर लिए जाने चाहिए।

किसी मूलपाठ की प्रामाणिकता के लिए सभी पाठान्तरों की तुलना अपेक्षित है। तुलना से ही 'शब्द' और 'चरण' के रूप को निर्धारित करना होगा। इसमें ध्यान देने की बात यह है कि यदि कम विकृत पाठ किसी प्राचीन पीढ़ी का है तो वह अति विकृत बाद की पीढ़ी से अधिक प्रामाणिक माना जायेगा। साथ ही यदि कोई एक पाठ कुछ स्वतंत्र पाठ परम्पराओं में समान मिलता है तो भी वह प्रामाणिक माना जायेगा। साथ ही यदि कोई एक पाठ कुछ स्वतंत्र पाठ–परम्पराओं में समान मिलता है तो भी वह प्रामाणिक माना जायेगा। इस प्रकार अन्य स्वतंत्र परम्पराओं के पाठों का सापेक्षिक महत्त्व प्रतिष्ठित किया जा सकेगा, क्योंकि कुछ अंश तो सभी स्वतंत्र और कम प्रभावित परम्पराओं में समान मिल सकते हैं, पर कुछ में ऐसा अंश होगा जो सबमें समान रूप से प्राप्त नहीं, तब तुलना द्वारा दूसरी कोटि के प्रमाण पर निर्भर करना पड़ेगा। अतः हमें दूसरी कोटि के पाठ को प्रामाणिक बनाने के लिए "शेष समस्त बाह्य और अंतरंग संभावनाओं की साक्षी से ही पाठ निर्णय करना होगा।"

इसे डॉ. माता प्रसाद गुप्त की 'मधुमालती' की भूमिका में दी गई प्रक्रिया के द्वारा समझा जा सकता है। डॉ. गुप्त ने विभिन्न प्रतिलिपि संबंधों का भली प्रकार विवेचन करके उन प्रतियों के पाठ संबंधों को निम्नलिखित वंश–वृक्ष के द्वारा समझाने का प्रयास किया है।

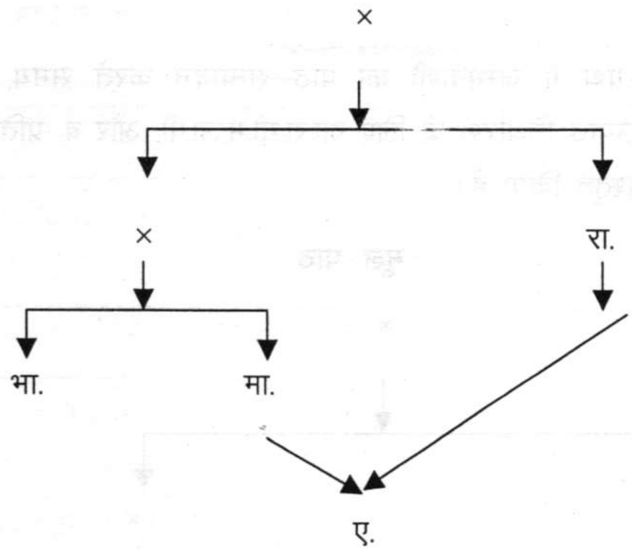

इससे स्पष्ट होता है कि भा. और मा. एक कुल की है, रा. भिन्न कुल की है और ए. दोनों कुलों के मिश्रण का परिणाम है। उक्त चित्र में (ग) गुणा का निशान यह बताता है कि यह प्रति प्राप्त नहीं है, लेकिन प्राप्त प्रतियों के माध्यम से हम यह कह सकते हैं कि ऐसी प्रति होनी चाहिए।

7.10 पाठ सम्पादन सिद्धान्त

प्रतियों के उपयुक्त पाठ–संबंधों के आधार पर निम्नलिखित सिद्धान्तों पर पाठ का सम्पादन किया गया है –

(क) जो पाठ समस्त प्रतियों में समान है, उसे स्वीकार किया जा सकता है।

(ख) जो मा. और भा. में से किसी में और रा. में है, उसे स्वीकार किया गया है।

(ग) जहाँ पर मा.भा. में एक पाठ और रा. में भिन्न पाठ है, वहाँ पर दोनों में से जो पाठ विषयक समस्त अंतरंग और बहिरंग संभावनाओं की दृष्टियों से संभव ज्ञात हुआ है, वह स्वीकार किया गया है।

(घ) ए. प्रति का पाठ दोनों शाखाओं के मिश्रण का परिणाम होने के कारण रचना के पाठ–निर्धारण के लिए उन्हीं स्थलों पर देखा गया है जहाँ पर मा. और भा. दोनों के समान रूप से खण्डित होने के कारण दो में से किसी का भी पाठ प्राप्त नहीं है और ए. का पाठ रा. के पाठ से भिन्न है।

(ङ) रचना के प्रथम छन्द में केवल रा. का पाठ प्राप्त होने के कारण आवश्यक संशोधनों के साथ उसी को ग्रहण करना पड़ा है।

इन सिद्धान्तों का प्रयोग न केवल विभिन्न स्थलों पर पाठ निर्धारण के लिए किया गया है, वरन् रचना के छंद–निर्धारण के लिए भी किया गया है।

नामक शोध–ग्रंथ में जम्भवाणी का पाठ–सम्पादन करते समय, अध्याय 6 की भूमिका में मूलपाठ निर्धारण के लिए जा.रा.गो.म.ला पी. और ब. प्रतियों के संबंध को निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है।

मूल पाठ

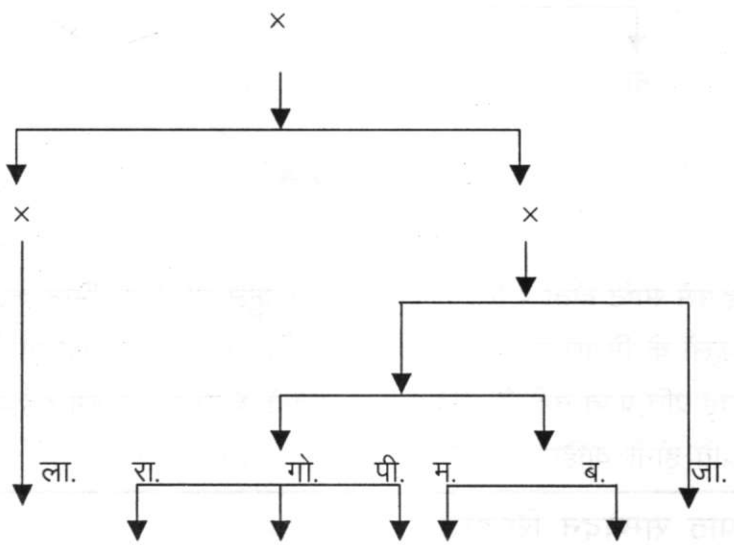

डॉ. माहेश्वरी के 'सम्पादन सिद्धान्त' निम्न प्रकार हैं –

- सभी प्रतियों में प्राप्त संगत पाठ,
- ला. और जा. प्रतियों में प्राप्त संगत पाठ,
- ला. तथा रा.गो.पी. प्रतियों के समूह में प्राप्त संगत पाठ,
- ला. तथा म.ब. प्रतियों के समूह में, पाठ–मिश्रण के उदाहरणों के अतिरिक्त प्राप्त संगत पाठ–मूल प्रति का माना गया है।

7.11 मूलपाठ : सम्भावनाएँ

मूलपाठ की प्रामाणिकता की कसौटी संभावनाएँ होती हैं। यह दो प्रकार की होती हैं – बाह्य संभावनाएँ और अंतरंग संभावनाएँ। यह हम पहले बता चुके हैं कि मूलपाठ की प्रामाणिकता के लिए ''शेष समस्त बाह्य और अंतरंग संभावनाओं की साक्षी से ही पाठ निर्णय करना होगा।'' ग्रंथ के संदिग्ध स्थलों के शब्दों और चरणों की प्रामाणिकता के लिए अंतरंग साक्ष्य तो मिलता है, उसी प्रकार ग्रंथ के अन्दर आवृति के द्वारा – अन्यत्र कहाँ, किस–किस स्थान और रूप में प्रयोग मिलता है। इस प्रयोग की आवृति की स्टेटिस्टिक्स (सांख्यिकी) मूलपाठ की प्रामाणिकता को पुष्ट करेगी।'

ग्रंथ की प्रामाणिकता की पुष्टि के लिए 'अर्थ' की समीचीनता की उद्भावना भी आवश्यक है। इस बात को डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने 'पद्मावत की टीका' के प्राक्कथन, पृ.

19 पर स्पष्ट किया है कि डॉ. माता प्रसाद गुप्त का वैज्ञानिक विधि से संशोधित पाठ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के पाठ से समीचीन है। उदाहरण के लिए – जायसी की अति क्लिष्ट पंक्ति का मूल पाठ इस प्रकार था –

आ. शुक्ल – (34) जीभा खोलि राग सौ मढ़े। लेजिम घालि एरा कह्नि चढ़े। श्री मनेर शरीफ ने कुछ संदेह के साथ प्रथम अर्द्धाली का अर्थ किया है – "तोपों ने कुछ संगति के साथ अपना मुँह खोला।"

डॉ. माता प्रसाद गुप्त – जेबा खोलि राग सौं मढे।

शाह की सेना के सरदारों के लिए कहा गया है कि जिरहबख्तर (जेबा), झिलमिल टोप (खोल) और टांगो के कवच (राग) से ढके थे। इसमें 'जेबा', 'खोलि', 'राग' – ये पारिभाषिक शब्द हैं। अतः इस विषय के बाह्य प्रमाण से इसकी पुष्टि होती है और शुक्ल के पाठ की अपेक्षा डॉ. गुप्त की वैज्ञानिक विधि से प्राप्त पाठ की समीचीनता सिद्ध होती है।

इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि पाठालोचन में भ्रम से या पाठालोचन सिद्धान्तों के पालन में असावधानी से इच्छित पाठ और अर्थ प्राप्त नहीं हो सकते।

किसी ग्रंथ के मूलपाठ की प्रामाणिकता की दृष्टि से 'शब्दों' को तत्कालीन 'रूप' और 'अर्थों' से भी पुष्ट करना चाहिए। जैसे 'पद्मावत' में प्रयुक्त अनेक शब्दों के अर्थ 'आईने अकबरी' जैसे तत्कालीन ग्रंथों से पुष्ट होते हैं। इसी प्रकार अन्य समकालीन रचनाकारों द्वारा प्रयुक्त शब्दों या नाम मालाओं जैसे कोश–ग्रंथों से शब्दों की पुष्टि की जा सकती है।

'पाठ सिद्धान्त' निश्चित करने के बाद एक–एक छन्द के लिए अलग–अलग पृष्ठ पर एक छन्द लिखना चाहिए, फिर उसके नीचे सभी पाठान्तर लिखने चाहिए। पाठान्तर जिन प्रतियों से दिये गये हैं, उन प्रतियों का संकेत चिन्ह भी देना उचित है। इसे डॉ. माता प्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित 'मधुमालती' के निम्नलिखित उदाहरण से समझा जा सकता है –

कथा एक चित दइयं1 उपानी। सुनहु कान दै कहौं बखानी।

अमी1 'रसिक रसाल जो होई'2। गुन औ दोख3 विचारहि सोई।

जओ आखहिं जोरि बनाइहि1। गुन के2 पीछे3 दोस लुकाइहि।

उतपति दोस दइयं1 हम लावा। औ निरदोख2 लाइ जनमावा।

आदि दोख1 लागा होइ जाही। अंत दोख लागै निजु2 ताही।

निहकलंक निरदोखी1 एक अकेला सोइ।

दोसिहि दोस जो लागै तेहि का अचरिजु होइ1।

पाठान्तर – ए. में यह छन्द नहीं है।

(1) 1 रा. दई।

(2) 1 भा. अमीं। 2.भा. रसिक रस कह जो कोई । 3. भा. दोस।

(3) 1 भा. ओछआखर पढि बूझि न आइहि। 2. भा. किन गुन। 3. रा. पीछे।

(4) 1 रा.दई। 2. भा. निरदोस।

(5) 1 भा. दोस। र.भा. दोस पै लागै।

(6) 1 भा. निरकलंक निरदोसी।

(7) 1 भा. किछु दोस नहि होइ।

इस उदाहरण में ऊपर प्रामाणिक पाठ दिया है। नीचे 'पाठान्तर' में मूल प्रामाणिक पाठ के शब्दों से भिन्न शब्द रूपों का उल्लेख किया गया है और साथ ही प्रति संकेत चिन्ह दिया गया है। ए., रा., भा. में अक्षर प्रतियों के संकेताक्षर हैं।

7.12 प्रक्षेप का क्या करें ?

प्रामाणिक मूलपाठ निर्धारण करते समय हमारे समक्ष बहुत–सी ऐसी सामग्री भी आयेगी, जिसे 'प्रक्षेप' कहा जाता है। इस 'प्रक्षिप्त' सामग्री को अलग निकालकर ग्रंथ के 'परिशिष्ट' के रूप में प्रस्तुत कर देना चाहिए। हाँ, उस 'प्रक्षेप' को यथासंभव प्रामाणिक बना कर देना चाहिए, क्योंकि मान लो, पाठालोचक से सारी सावधानी बरतने के बावजूद यदि कोई भूल हो गई हो तो पाठक अपनी कसौटी पर सम्पूर्ण सामग्री को स्वयं जाँच ले। इस प्रकार 'प्रक्षेप' सामग्री का भी अपना महत्त्व है।

7.13 पाठालोचन में अर्थ न्यास का महत्त्व

'पाठालोचन' की वैज्ञानिक प्रक्रिया के संबंध में 'अर्थ–न्यास' के महत्त्व पर प्रश्न किया जा सकता है, क्योंकि यह तो निश्चित है कि किसी ग्रंथ का पाठ उसका अर्थ प्राप्त करने के लिए ही किया जाता है, लेकिन यह भी सच है कि विकृत पाठ से प्रामाणिक अपेक्षित अर्थ नहीं लिया जा सकता। ध्यान देने की बात यह है कि पाठालोचन का महत्त्व अपेक्षित अर्थ के लिए ही होता है, किन्तु वैज्ञानिक प्रक्रिया में 'अर्थ' का विशेष महत्त्व नहीं होता। वह केवल सहायक भर होता है। इस क्रम में डॉ. सत्येन्द्र, पाण्डुलिपि विज्ञान के पृ. 239 पर कहते हैं –

'शब्द' के अर्थ का ज्ञान अध्ययन परिमाण सापेक्ष्य है। यदि 'क' का ज्ञान बहुत सीमित है तो कभी–कभी वह एक क्षेत्र के बहु प्रचलित शब्द का अर्थ भी नहीं जानेगा और अर्थ को दृष्टि में रखेगा तो अपने सीमित ज्ञान से त्रुटिपूर्ण संशोधन कर देगा। जैसे यदि कोई ब्रज में प्रचलित 'हटरी' से परिचित नहीं है तो वह 'सूरसागर' में इस शब्द को 'हट री' (हटरी) कर सकता है, क्योंकि उसकी दृष्टि में 'हटरी' कोई शब्द ही नहीं। पाठालोचक

भी शब्दों के समस्त अर्थों से परिचित होगा, विशेषतः कृतिकालीन अर्थ से, यह संभव नहीं। अतः पाठ–विज्ञान से जो रूप निर्धारित हो उसे रखना चाहिए, क्योंकि कोई ऐसा शब्द हो सकता है, जिसका अर्थ आगे ज्ञानवर्धन के साथ प्राप्त हो।"

7.14 क्या एक प्रतिलिपि का पाठालोचन हो सकता है ?

प्रायः कभी–कभी किसी ग्रंथ की केवल एक ही प्रति प्राप्त होती है और वह भी मूल प्रति न होकर किसी अन्य प्रतिलिपिकार की होती है। ऐसी प्रति का भी पाठालोचन–सम्पादन हो सकता है। ऐसी प्रति के पाठालोचक सम्पादन के लिए यह आवश्यक है कि आन्तरिक बाह्य साक्ष्य से यह पता लगाया जाये कि ग्रंथ का रचनाकाल क्या है और कहाँ लिखा गया है? और क्या एक ही स्थान पर लिखा गया है? जहाँ रचनाकार रहता था वहाँ का वातावरण एवं भाषा कैसी और क्या थी। उस रचनाकार के समकालीन अन्य रचनाकार कौन थे, कौन से ग्रंथ लिखे और उनकी भाषा एवं शब्दावली कैसी थी? आदि बातें बाह्य साक्ष्य हैं और इस ग्रंथ के पाठालोचन के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है, किन्तु साथ ही ऐसी रचनाओं का अन्तरंग ज्ञान भी उतना ही आवश्यक है।

इस प्रक्रिया में 'अर्थ–न्यास' का बहुत महत्त्व है, क्योंकि अर्थ का अनुमान पूरी कृति के अध्ययनोपरान्त ही लगाया जा सकता है। ग्रंथ के अध्ययन से ग्रंथ में प्रयुक्त शब्दावली एवं वाक्य–विन्यास का भी पाठालोचन को इतना परिचय हो जाना स्वाभाविक है कि वह संदिग्ध स्थलों की पूर्ति प्रायः उपयुक्त शब्द या वाक्य से कर सकता है। ऐसे अनुमानित शब्दों को सदैव कोष्ठकों ( ) में रखा जाता है। ये कोष्ठक सम्पादक पाठालोचक के सुझाव स्थल कहलाते हैं। इस प्रकार के पाठ–निर्धारण में सांख्यिकी के उपयोग से शब्द–रूपों की आवृति से सम्भव प्रामाणिक रूप तक पहुँचा जा सकता है। आलोच्य ग्रंथ की भाषा का व्याकरण भी तैयार कर लेना चाहिए। साथ ही यदि आलोच्य ग्रंथकार की अन्य रचनाएँ भी हों तो उससे तुलना करके इस ग्रंथ के मूल पाठ के कई संदिग्ध स्थलों को प्रामाणिक रूप दिया जा सकता है। इस प्रकार के ग्रंथों की शब्दानुक्रमणिका भी देनी सहायक एवं उपयोगी हो सकती है।

आज पाठालोचन या पाठानुसंधान, भाषा विज्ञान का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। अतः पाठालोचन के सिद्धान्त भी वैज्ञानिक हो गये हैं।

7.15 उपसंहार

उपर्युक्त पृष्ठों में हमने पाठालोचन के विद्यार्थी हेतु एक सामान्य जानकारी प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वस्तुतः पाठालोचन या पाठानुसंधान के शोधार्थी को 'पाण्डुलिपि विज्ञान' से भी अवश्य परिचय प्राप्त करना चाहिए। कारण यह है कि 'पाठालोचन' की प्रक्रिया में प्रकाशित ही नहीं अपितु अप्रकाशित हस्तलिखित ग्रंथों का बड़ा महत्त्व है। ये ग्रंथ हमें ताड़पत्र, भोजपत्र, कागज आदि लिप्यासनों पर प्राचीन ग्रंथ भण्डारों में उपलब्ध होते हैं। अतः इनकी निर्माण–प्रक्रिया में रोशनाई, लिपिक, चित्र–निर्माण, लिप्यांकन,

आदि की सम्यक् जानकारी भी होनी चाहिए। संस्कृत काल से प्राप्त हस्तलिखित ग्रंथों में अनेक भाषाओं, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि के ग्रंथ होते हैं। अतः इन भाषाओं एवं उनके व्याकरण का ज्ञान भी शोधार्थी के लिए अत्यधिक उपयुक्त है।

'पाठालोचन' करते समय विभिन्न लिपिकों द्वारा तैयार की गई विभिन्न रचनाएँ प्राप्त होती है। 'मूलपाठ' का अनुसंधान करने के लिए इन सभी प्रकार की प्रतियों का अध्ययन करना पड़ता है। प्रतिलिपिकारों का एक महावाक्य है –

यादृशं पुस्तक दृष्टवा तादृशं लिखितं मया।

यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते।।

लेकिन इसका यह अभिप्राय कभी नहीं होता कि लिपिक ने अपनी ओर से ग्रंथ के लिप्यांकन में कोई नई अशुद्धि न की हो। इसके बचाव में भी वे एक महावाक्य का प्रयोग करते हैं –

मुनेरपि मतिभ्रंशों भीमस्यापि पराजयः।

यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयताम्।।

अतः बहुत सावधानीपूर्वक की गई प्रतिलिपि में भी निर्विवाद रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि लिपिक ने ज्यों की त्यों प्रतिलिपि की है या कुछ छोड़ दिया है या सही नहीं पढ़ पाने के कारण कुछ का कुछ लिख दिया है। इसलिए पाठालोचक का यह दायित्व है कि वह प्रत्येक पाण्डुलिपि को पाठालोचन के वैज्ञानिक सिद्धान्तों की दृष्टि से अवलोकन करें।

एक बात और, नागरी लिपि का मूल उत्स ब्राह्मी लिपि है। किन्तु ब्राह्मी लिपि में कागज पर लिखा कोई उदाहरण अब तक प्राप्त नहीं हुआ है। ब्राह्मी लिपि समय–समय पर अनेक करवटें लेती रही है, जिसे अशोक के अभिलेखों, सेन और पाल राजाओं के राज्यकाल तक के शिलालेख एवं ताम्र पत्रों में देखा जा सकता है। फिर भारत में अनेक लिपियाँ भी प्रचलित रही है। इसलिए नागरी लिपि का प्रयोग कागज पर ही होता रहा है। साथ ही मुगलकाल में फारसी लिपि का भी प्रचलन बढ़ा। इस संबंध में 'जायसी ग्रंथावली' की भूमिका में डॉ. माताप्रसाद गुप्त लिखते हैं – पाठ परम्परा प्रायः उर्दू (फारसी–अरबी) लिपि में चली है, प्रतियाँ अधिकतर इसी लिपि में है और अच्छी प्रतियाँ तो प्रायः इसी लिपि में है। जो प्रतियाँ नागरी लिपि में प्राप्त हुई है, उनके भी पूर्वज उर्दू (फारसी–अरबी) लिपि के प्रमाणित हुए हैं।

हस्तलिखित ग्रंथों में उनका 'काल निर्णय' करना एक समस्या है। अतः प्राचीनकाल से वर्तमान तक भारत में प्रचलित सन्–संवतों के ज्ञान के साथ ही उनकी लेखन–पद्धति का भी ज्ञान होना आवश्यक है। इस प्रकार तत्कालीन लेखन–पद्धतियों का विकास–क्रम भी अध्ययन का विषय हो सकता है।

आज हिन्दी में पाठालोचन ने गति पकड़ ली है। अनेक ग्रंथ इस पद्धति से प्रकाश में आ गये हैं और अनेक अभी बाकी हैं। इसमें भी संदेह नहीं है कि अनेक प्राचीन ग्रंथ प्रकाशित होने पर भी अपने पाठ–संशोधन की अपेक्षा रखते हैं। 'पाठालोचन' के लिए हर एक व्यक्ति अधिकारी नहीं कहा जा सकता। यह बुद्धि और श्रम के सम्यक् प्रयोग के साथ वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित विज्ञान है।

इसके अलावा 'पाठालोचन' में 'निश्चय' और 'निर्णय' की महती भूमिका है। यहाँ कल्पना को स्थान नहीं है, क्योंकि वैज्ञानिक निष्कर्ष कल्पना के क्रोड़ से नहीं निकाले जा सकते और न ही तथ्यों की गवेषणा वस्तुपरकता के बिना हो सकती है। पाठालोचन तथ्यों की गवेषणा पर आधारित होता है।

7.16 खोज रिपोर्ट

- श्री लालचंद भगवानदास गाँधी : जैसलमेर भाण्डागारीय ग्रंथानाम् सूची
- डॉ. नरेन्द्र भानावत : आचार्य श्री विनयचंद ज्ञान भण्डार सूची
- डॉ. मोतीलाल मेनारिया : राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज
- नागरी प्रचारिणी सभा, काशी : हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों का त्रैवार्षिक विवरण
- डॉ. मोतीलाल गुप्त : मत्स्यप्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन
- डॉ. के.सी. कासलीवाल : राजस्थान में जैन ग्रंथ भण्डार

7.17 पत्रिकाएँ

- राजस्थान भारती, बीकानेर
- परिषद पत्रिका, पटना
- शोध पत्रिका, उदयपुर
- सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग
- विश्वभारती, शांति निकेतन
- सप्तसिंधु, चण्डीगढ़

7.18 भारतीय पुस्तकालय एवं संग्रहालय जहाँ पाण्डुलिपियाँ हैं

7.18.1 पुस्तकालय

- पाटलिपुत्र – पटना
- काश्मीर सरस्वती मंदिर, कश्मीर
- सरस्वती महल, तंजौर

- जैन भण्डार, जैसलमेर
- 11 पुस्तकालय, उदयपुर में
- 19 पुस्तकालय, बीकानेर में
- 01 पुस्तकालय, हनुमानगढ़ में
- 02 पुस्तकालय, नागौर में
- 06 पुस्तकालय, अलवर में
- 01 पुस्तकालय, किशनगढ़ में
- आगरा में
- आमेर–जयपुर पोथीखाना, जयपुर
- प्राच्य विद्यामंदिर, बड़ौदा
- भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद
- राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
- नेशनल लाइब्रेरी, कोलकाता
- खुदाबक्स ओरियंटल पुस्तकालय, पटना
- सिंधिया पुस्तकालय, उज्जैन
- जैन विद्या संस्थान, लाडनूँ
- भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना
- जैन विद्या संस्थान, श्री महावीर जी
- भारतीय विश्वविद्यालयों के पुस्तकालय
- श्रीराम भवन पुस्तकालय, कोटपुतली, जयपुर

7.18.2 संग्रहालय, जहाँ पाण्डुलिपियाँ है –

1. मद्रास, 2. नागपुर, 3. लखनऊ, 4. सूरत, 5. अजमेर, 6. भारत कला भवन, वाराणसी, 7. आशुतोष संग्रहालय, कलकत्ता, 8. जयपुर, 9. अलवर, 10. कोटा, 11. झालावाड़, 12. प्रयाग, 13. शिमला, 14. सालारजंग संग्रहालय, हैदराबाद, 15. राजस्थान के सभी प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, 16. जोधपुर, 17. भरतपुर, 18. राजस्थान के सभी अभिलेखागार आदि, 19. जैन विद्या संस्थान, 20. श्री महावीर जी, जैन विश्वविद्यालय, लाडनूं आदि।

7.19 संदर्भ ग्रन्थ

- अग्रवाल डॉ. वासुदेव शरण : पद्मावत, संजीवनी भाष्य
- ओझा डॉ. गौरीशंकर हीराचंद : भारतीय प्राचीन लिपि माला
- गुप्त डॉ. माता प्रसाद : पृथ्वीराज रासो
- गुप्त डॉ. माता प्रसाद : मंझन कृत मधुमालती
- गुप्त डॉ. माता प्रसाद : पद्मावत
- गुप्त डॉ. माता प्रसाद : बीसलदेव रास
- द्विवेदी डॉ. हजारी प्रसाद : संदेश शसक
- माहेश्वरी डॉ. हीरालाल : जाम्भोजी, विश्नोई सम्प्रदाय और साहित्य
- मुनि पुष्य विजय जी : भारतीय जैन भ्रमण संस्कृति अने लेखन कला
- डॉ. सत्येन्द्र : पाण्डुलिपि विज्ञान
- शर्मा डॉ. महावीर प्रसाद : सामान्य पाण्डुलिपि विज्ञान
- डॉ. सत्येन्द्र : अनुसंधान
- सिन्हा डॉ. सावित्री : अनुसंधान प्रक्रिया
- वाजपेयी आचार्य नन्द दुलारे : सूरसागर
- मिश्र डॉ. शिव गोपाल : मंझनकृत मधुमालती
- रत्नाकर बाबू जगन्नाथ : बिहारी सतसई
- गुप्त डॉ. परमेश्वरी लाल : चंदायन, मुल्ला दाउद कृत
- डॉ. विश्वनाथ प्रसाद : चंदायन, मुल्ला दाउद कृत
- गुप्त डॉ. परमेश्वरी लाल : कुतुबन कृत मृगावती
- बाली डॉ. तारकनाथ : बीसलदेव रासो
- गुप्त डॉ. माता प्रसाद : कुतुबन कृत मृगावती

7.20 अभ्यासार्थ प्रश्न एवं टिप्पणियाँ

1. 'पाठालोचन' शब्द का अर्थ बताते हुए उसके उद्देश्य पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
2. 'मूलपाठ' किसे कहते हैं ? मूलपाठ के उपयोग बताइये।
3. 'पाठालोचन' की सामग्री के स्रोत बताइये।
4. 'मूलपाठ' में व्याप्त अशुद्धियों के लिए प्रतिलिपिकार का दायित्व निर्धारित करें।
5. 'मूलपाठ' में पायी जाने वाली अशुद्धियों के कारण लिखिए।
6. किसी ग्रंथ के 'मूलपाठ' का वंश–वृक्ष बताइये।
7. डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने मंझन कृत मधुमालती का पाठ–सम्पादन करते हुए किस पद्धति का आश्रय लिया। उनके मूलपाठ सिद्धान्त बताइये।
8. 'क्षेपक' से क्या अभिप्राय है ? 'क्षेपक' के कारणों पर प्रकाश डालिए।
9. 'पाठालोचन' में 'शब्द' और 'अर्थ' का महत्त्व प्रतिपादित कीजिए।
10. 'पाठालोचन' प्रक्रिया में किन–किन बिन्दुओं पर ध्यान देना अपेक्षित है ?
11. 'पाठालोचन' की प्रणालियों पर प्रकाश डालिए।
12. 'मूलपाठ' निर्धारण में किन–किन संबंधों का समावेश किया जाना अपेक्षित है।
13. 'मूलपाठ' निर्धारण में संभावनाओं पर चर्चा कीजिए।
14. 'पाठालोचन' में 'अर्थन्यास' का महत्त्व प्रतिपादित कीजिए। (टिप्पणी)
15. 'पाठालोचन' की दृष्टि से यह बताइये कि क्या 'एक प्रति' का पाठालोचन हो सकता है ? (टिप्पणी)
16. 'पाठालोचन' विज्ञान में एक प्रतिलिपिकार से क्या–क्या अपेक्षाएँ की जा सकती है ? स्पष्ट करें।

इकाई 8 भाषावैज्ञानिक एवं शैलीवैज्ञानिक शोध प्रविधि

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 भाषावैज्ञानिक शोध

8.2.1 भाषाविज्ञान

8.2.2 भाषाविज्ञान की प्रमुख शाखाएँ

8.2.2.1 ऐतिहासिक भाषाविज्ञान

8.2.2.2 तुलनात्मक भाषाविज्ञान

8.2.2.3 वर्णनात्मक भाषाविज्ञान

8.2.2.4 संरचनात्मक भाषाविज्ञान

8.2.3 अन्य शाखाएँ

8.3 शैलीवैज्ञानिक शोध

8.3.1 अर्थ एवं परिभाषा

8.3.2 विश्लेषण प्रक्रिया

8.3.3 विश्लेषण प्रणाली

8.3.3.1 संरचना

8.3.3.2 गठन

8.3.3.3 साभिप्राय विचलन

8.3.3.4 समानान्तरता

8.3.3.5 विन्यासक्रमी और सहचारक्रमी सम्बन्ध

8.3.3.6 विरलता

8.4 सारांश

8.5 संदर्भ ग्रन्थ

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप भाषावैज्ञानिक एवं शैलीवैज्ञानिक शोध के विषय में अध्ययन करेंगे। इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- भाषाविज्ञान की परिभाषा, उसके अंग और शाखाओं के विषय में बता सकेंगे।
- भाषावैज्ञानिक शोध के सम्बन्ध में अपेक्षित जानकारी प्राप्त करेंगे।
- शैलीविज्ञान की परिभाषा और उसकी विश्लेषण प्रक्रिया के बारे में बता सकेंगे।
- शैलीवैज्ञानिक शोध के सम्बन्ध में अपेक्षित जानकारी प्राप्त कर लेंगे।

8.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अन्तर्गत आप भाषा सम्बन्धी शोध के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे। इस समय अनेक विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागों में शोध कार्य हो रहे हैं। इन शोध कार्यों के सम्बन्ध में बहुत पहले डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने कहा था, "हिन्दी में शोध का क्षेत्र असीम है। यह क्षेत्र आसानी से तीन भागों में बाँटा जा सकता है–(1) हिन्दी भाषा, (2) हिन्दी साहित्य तथा (3) हिन्दी संस्कृति। भाषा सम्बन्धी खोज की दो प्रधान धाराएँ हो सकती हैं–साहित्य में प्रयुक्त भाषा सम्बन्धी खोज तथा जनता की मौखिक बोलियों से सम्बद्ध खोज।" भाषा सम्बन्धी खोज को हम भाषावैज्ञानिक शोध के अन्तर्गत समाहित करते हैं। विगत तीन–चार दशकों में भाषाविज्ञान का काफी विस्तार हुआ है। प्रथम अखिल विश्व भाषाविज्ञान के द हेग सम्मेलन से ही इस दिशा में जागरूकता प्रारम्भ हो गई थी। 1967 ई0 में रूमानिया में हुए अन्तर्राष्ट्रीय भाषाविज्ञान सम्मेलन में भाषाविज्ञान के अनेक विभाग किये गए थे। यथा, भाषाविज्ञान के सिद्धान्त एवं उसका इतिहास, समाज भाषाविज्ञान, भाषाभूगोल, अर्थविज्ञान, रचनाविज्ञान, शैलीविज्ञान आदि। ध्वनि विज्ञान पहले ही भाषा विज्ञान से अलग एक ज्ञानानुशासन के रूप में स्वीकृत हो चुका था। एवरक्राम्बी ने ठीक कहा है कि ध्वनिविज्ञान का सम्बन्ध उन उपादानों से है जिनका प्रयोग बोलने में किया जाता है। भाषा के अवयवों ध्वनि, शब्द / पद, वाक्य और अर्थ को आधार बनाकर भाषाविज्ञान के अनेक भेद किये गए हैं। आज आधुनिक भाषाविज्ञान में कई सम्प्रदाय (स्कूल) विकसित हो चुके हैं, जिनसे प्रेरणा लेकर अनेक शोध कार्य हो रहे हैं। इन स्कूलों में प्रमुख हैं–रूसी स्कूल (स्वनिम विषयक केन्द्र), जेनेवा स्कूल (संरचनात्मक भाषाविज्ञान का मूल उत्स), फ्रांसीसी स्कूल (मूलतः ध्वनिविज्ञान से संबंधित), ब्रिटिश स्कूल (ध्वनिविज्ञान से सम्बन्धित), प्राग स्कूल (स्वनिम विज्ञान से प्रेरित) आदि। इसी क्रम में आठवें दशक के प्रारम्भ में शैलीविज्ञान शोध और समीक्षा के क्षेत्र में एक नया प्रतिमान बनकर प्रतिष्ठित हुआ। बहुत दिन तक यह माना जाता रहा कि शैली का सम्बन्ध साहित्यिक भाषा से है; किन्तु अब शैली की संकल्पना को मूलतः भाषा के साथ जोड़कर देखा जा रहा है। इसीलिए भाषा के साहित्यिक प्रयोगों से भिन्न प्रयोग भी 'शैली विज्ञान' के अध्ययन क्षेत्र

में आते हैं। पाश्चात्य शैलीवैज्ञानिकों में रोमन याकोब्सन का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। हिन्दी में डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, आचार्य विद्यानिवास मिश्र, पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु, डॉ. सुरेश कुमार आदि ने इसकी नींव रखी।

यहाँ हम भाषा वैज्ञानिक शोध के साथ–साथ शैलीवैज्ञानिक शोध प्रविधि की भी स्पष्ट जानकारी प्राप्त करेंगे।

8.2 भाषावैज्ञानिक शोध

8.2.1 भाषाविज्ञान

जैसा कि प्रस्तावना में आपको बताया जा चुका है कि भाषा समाज विशेष के लोगों के बीच सम्प्रेषण का माध्यम है। इसीलिए इसको परिभाषित करते हुए आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा ने कहा है–"उच्चरित ध्वनि संकेतों के माध्यम से भाव या विचार की पूर्ण अभिव्यक्ति भाषा है।" इस परिभाषा से भाषा के भीतर की तीन व्यवस्थाओं का पता चलता है–(1) ध्वनि–संकेतों की व्यवस्था, (2) अर्थ की व्यवस्था और (3) सम्प्रेषण व्यवस्था। किसी भी भाषा समुदाय के वक्ता अनेक संभव ध्वनियों में से कुछ ध्वनियों का प्रयोग करते हैं। दूसरी महत्त्वपूर्ण व्यवस्था अर्थ से जुड़ी है। भाषा के प्रयोग के लिए कम से कम एक वक्ता और एक श्रोता अर्थात् दो पक्ष का होना अनिवार्य है। उसका स्वरूप एकल न होकर द्विपक्षीय होता है। अभिव्यक्ति और अधिग्रहण उसके मूल आधार हैं। श्रोता वक्ता के ध्वनि–संकेतों का विकोडन कर उसके अर्थ को ग्रहण करता है। भाषा की तीसरी महत्त्वपूर्ण व्यवस्था है–सम्प्रेषण। यह व्यवस्था दूसरी व्यवस्था की ही फलश्रुति है। वक्ता के ध्वनि–संकेत जब अर्थ में परिवर्तित होकर श्रोता तक ठीक–ठीक पहुँच जाते हैं, तो इसे ही सम्प्रेषण कहते हैं। मानव स्वभावतः अपनी बात कहना और दूसरों की बातों को सुनना और समझना चाहता है। इस 'कहने' और 'सुनने–समझने' की प्रक्रिया को ही सम्प्रेषण कहते हैं। यह प्रक्रिया वक्ता और श्रोता के बीच उच्चारण तथा श्रवण अवयवों द्वारा सम्पन्न होती है। वैसे सम्प्रेषण की प्रक्रिया को पूर्णता देने के लिए कतिपय अभाषिक तत्त्व भी सहायक होते हैं–जैसे, उच्चारण शैली, स्वरों का आरोह–अवरोह, अंग भंगिमा–अंग संचालन (बॉडी लैंग्वेज) आदि, किन्तु भाषाविज्ञान के अन्तर्गत इन अभाषिक तत्त्वों का अध्ययन नहीं किया जाता है।

विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान। अर्थात् भाषा के विशिष्ट ज्ञान को भाषाविज्ञान कहा जाता है, किन्तु भाषाविज्ञान उस अर्थ में विज्ञान नहीं है जिस अर्थ में भौतिकी या गणित। वस्तुतः यह विज्ञान, समाजविज्ञान और मानविकी की त्रिवेणी पर स्थित एक ज्ञानानुशासन है। ध्वनि–निर्माण और श्रवण तक की पूरी प्रक्रिया विज्ञान, भाषा की सामाजिक उपयोगिता और अर्थ–परिवर्तन की प्रक्रिया समाजविज्ञान और वैयक्तिक तथा सर्जनात्मक भाषा के रूप में वह मानविकी की सीमाओं में पड़ता है। फिर भी इसे विज्ञान इसलिए कहते हैं कि इसके नियम कार्य–कारण सम्बन्ध पर आधारित होते हैं। यद्यपि इन नियमों

के भी अपवाद होते हैं, पर नियम हैं ही नहीं–ऐसा नहीं कहा जा सकता। न तों यह शुद्ध रूप से मनोविज्ञान या दर्शन की तरह आनुभविक शास्त्र है और न ही गणित और भौतिकी की तरह शुद्ध विज्ञान। भाषाविज्ञान की स्थिति मध्यवर्ती है, क्योंकि उसमें नियम और अनुभव दोनों का योग है। दूसरे अनुशासनों के लिए भाषा माध्यम का कार्य करती है अर्थात् साधन है, किन्तु भाषाविज्ञान के लिए वह साधन और साध्य–दोनों है। भाषाविज्ञान को परिभाषित करते हुए डॉ. भोलानाथ तिवारी ने लिखा है–"भाषाविज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा–विशिष्ट, कई और सामान्य–का समकालिक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक और प्रायोगिक दृष्टि से अध्ययन और तद्विषयक सिद्धान्तों का निर्धारण किया जाता है।"

8.2.2 भाषाविज्ञान की प्रमुख शाखाएँ

भारतवर्ष में वैदिक काल से ही भाषा चिन्तन प्रारम्भ हो गया था। इसी का परिणाम है कि संसार के प्राचीनतम साहित्य 'ऋग्वेद' में आज तक एक अक्षर का परिवर्तन या मिश्रण नहीं हो सका है। इसके मंत्रों को कण्ठस्थ करने के लिए कई पद्धतियाँ प्रयोग में लायी गयीं–जैसे, मंत्रपाठ, पदपाठ, क्रमपाठ, जटापाठ एवं घनपाठ। इन पंचविध पाठों के साथ प्रत्येक मंत्र का स्मरण किया जाता था। विस्तार और अन्तर्दृष्टि दोनों विशेषताओं से पूर्ण विश्व का प्रथम भाषावैज्ञानिक अध्ययन पाणिनि का 'अष्टाध्यायी' है। पाणिनी की स्थिति ईसा पूर्व आठवीं शताब्दी से चौथी शताब्दी के मध्य है। भाषाविज्ञान के इतिहास में यह विश्व का प्रथम पूर्ण, सर्वोत्कृष्ट एवं परिनिष्ठित ग्रंथ है।

भाषाविज्ञान का आधुनिक रूप अठारहवीं–उन्नीसवीं शताब्दी से अपना आकार ग्रहण करने लगता है। इस प्रक्रिया में भारत और पश्चिम दोनों देशों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसके अध्ययन के क्षेत्र में आज अनेक शाखाएँ विकसित हो चुकी हैं। जिसमें प्रमुख हैं–तुलनात्मक भाषाविज्ञान, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान, वर्णनात्मक भाषाविज्ञान, संरचनात्मक भाषाविज्ञान। इसके अतिरिक्त भाषा को आधार बनाकर अध्ययन की अन्य शाखाएँ भी विकसित हो रही हैं। भाषा भूगोल, समाजभाषाविज्ञान, मनोभाषाविज्ञान आदि। आज इन पद्धतियों के आधार पर भाषाविज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण शोधकार्य हो रहे हैं।

8.2.2.1 ऐतिहासिक भाषाविज्ञान

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के अन्तर्गत विभिन्न कालों में एक ही भाषा के स्वरूप का अध्ययन किया जाता है। किसी भाषा के प्राचीन रूप से नवीन रूप का विकास किस प्रकार हुआ? इसकी खोज इस पद्धति से ही की जाती है। आधुनिक भाषाविज्ञान के जनक द सस्यूर ने इस पद्धति को गत्यात्मक या विकासात्मक पद्धति कहा है। उन्होंने यह स्वीकार किया है कि एककालिक अध्ययन के साथ–साथ ऐतिहासिक अध्ययन भी उपयोगी है। जैसे–वैदिक युग से लेकर संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश से होते हुए आधुनिक भारतीय भाषाओं का ध्वनि, रूप और अर्थ की दृष्टि से किस प्रकार विकास हुआ, यह दिखाना

इस पद्धति के अन्तर्गत आएगा। ऐतिहासिक भाषावैज्ञानिक का पहला काम यह है कि वह जाने कि भाषाओं में परिवर्तन किस प्रकार होता है? इस परिवर्तन के कारण और उनके परिणाम की भी वह खोज करता है।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का मुख्य आधार लिखित सामग्री होती है, जिसे हम 'पाठ' कह सकते हैं। इस 'पाठ' के विश्लेषण में हमें लिपिविज्ञान, वर्णनात्मक भाषाविज्ञान, ऐतिहासिक–सांस्कृतिक एवं सामाजिक ज्ञान आदि की भी सहायता लेनी पड़ती है। ध्वन्यात्मक, रूपात्मक, रचनात्मक और अर्थ के स्तर पर हुए भाषिक परिवर्तन की ऐतिहासिक खोज ही इस पद्धति का प्रमुख कार्य है। इसके अतिरिक्त भाषाओं के वर्गीकरण में भी इस पद्धति से सहायता ली जाती है। भारत और यूरोप की भाषाओं का अध्ययन करते हुए भारोपीय भाषा परिवार के निर्धारण में इस पद्धति का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसी प्रकार अन्य परिवारों का भी निर्धारण किया गया है।

8.2.2.2 तुलनात्मक भाषाविज्ञान

तुलनात्मक पद्धति में दो या दो से अधिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन में वर्णनात्मक तथा ऐतिहासिक दोनों पद्धतियों का अन्तर्भाव हो जाता है। यह अध्ययन किसी एक निश्चित काल का भी होता है तथा ऐतिहासिक दृष्टि से भी होता है। किसी भाषा विशेष की बोलियों का भी तुलनात्मक अध्ययन हो सकता है। जैसे–हिन्दी का तुलनात्मक अध्ययन

(क) हिन्दी तथा राजस्थानी से तुलना

(ख) हिन्दी के विभिन्न कालक्रमिक स्वरूपों की तुलना

(ग) हिन्दी की विभिन्न बोलियों की तुलना

तुलनात्मक पद्धति से यह भी निश्चित किया जा सकता है कि तुलना की गई भाषाएँ एक परिवार की हैं अथवा नहीं। भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा विश्व की सभ्यता पर भी प्रकाश डाला जा सकता है। जैसे एक भाषापरिवार की भाषाओं को बोलने वालों के पूर्वज एक रहे होंगे तथा उनकी संस्कृति भी एक प्रकार की होगी। तुलनात्मक भाषा विज्ञान अनेक प्राचीन तथ्यों के उद्घाटन में सहायक सिद्ध हो सकता है। अठारहवीं शताब्दी में संस्कृत, ग्रीक और लैटिन की तुलना द्वारा यह बात सिद्ध हुई कि ये तीनों भाषाएँ एक परिवार की हैं; इनका साम्य उसी का परिणाम है। इसीलिए प्रारम्भिक दिनों में भाषाविज्ञान को तुलनात्मक भाषाविज्ञान (कम्पेरेटिव फिलॉलोजी) ही कहा जाता था। बाद में तुलनात्मक शब्द हटा दिया गया। वस्तुतः भाषाविज्ञान का प्रारम्भ ही तुलनात्मक पद्धति से हुआ था। अब तुलना के बिना भी भाषाविज्ञान की स्थिति संभव है।

8.2.2.3 वर्णनात्मक भाषाविज्ञान

वर्णनात्मक भाषाविज्ञान के अन्तर्गत भाषा विशेष का एककालिक अध्ययन और विश्लेषण

आता है। भाषा के काल विशेष के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए नियमों का निर्धारण किया जाता है। द सस्यूर ने इसे स्थित्यात्मक भाषाविज्ञान कहा है। वर्णनात्मक भाषाविज्ञान का सर्वोत्तम उदाहरण पाणिनी कृत 'अष्टाध्यायी' है।

आधुनिक भाषावैज्ञानिक शोध में वर्णनात्मक पद्धति का स्वरूप प्रमुख हो गया है। इसमें शोधकर्त्ता अपना सारा ध्यान भाषा या बोली विशेष पर ही रखता है। वह यह नहीं देखता कि इस भाषा या बोली का पूर्व रूप क्या था या इससे मिलती जुलती कौन–सी भाषाएँ या बोलियाँ हैं? इस पद्धति में किसी दूसरे शास्त्र की सहायता भी अपेक्षित नहीं है। इस शोध पद्धति में प्रमुख कार्य ध्वनिग्राम एवं पदग्राम से आरम्भ होकर वाक्य संरचना तक चलता है। यह पद्धति अर्थविज्ञान को अपनी सीमा से बाहर रखती है। इसका लक्ष्य केवल भाषा के उच्चरित रूप का अध्ययन करना है। इस अध्ययन के लिए सर्वाधिक आधारभूत तत्त्व स्वनिम हैं।

8.2.2.3.1 स्वनिम (ध्वनिग्राम)

स्वनिम वाक् की वे क्रियाएँ हैं जो सभी वक्ताओं में सामान्य रूप से पाई जाती हैं। स्वनिम भाषा विशेष के अंग होते हैं। डेनियल जॉन्स ने कहा है, "भाषा की लघुतम ध्वनि लक्षण भेदक इकाई को स्वनिम कहते हैं।" भाषण ध्वनि एक ध्वन्यात्मक इकाई है, किन्तु स्वनिम एक प्रकार का ध्वनि समुदाय है। इस ध्वनि समुदाय में कई भाषण ध्वनियाँ समाविष्ट हैं। इन भाषण ध्वनियों का 'सहध्वनिग्राम' या 'संस्वन' कहते हैं। एक स्वनिम (ध्वनिग्राम) के अन्तर्गत एकाधिक संस्वन (सहध्वनिग्राम) हो सकते हैं। कुछ स्वनिमों में एक ही संस्वन होता है। ऐसे स्वनिमों को 'मोनोफोन' कहते हैं। 'स्वनिम' का कोई सामान्य भाषा निरपेक्ष रूप नहीं होता। 'स्वनिम' को स्पष्ट करते हुए डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा ने लिखा है, "स्वनिम की निश्चित और सर्वथा निर्दोष परिभाषा देना कठिन है, परिभाषा का आग्रह छोड़कर यदि शब्द को स्पष्ट करने का प्रयास करें तो कह सकते हैं कि स्वनिम उच्चरित भाषा का न्यूनतम अंश है, जो दो ध्वनियों का अन्तर प्रदर्शित करता है। 'क', 'ख' या 'च' में अन्तर इसलिए है कि ये भिन्न स्वनिम हैं। 'कान' और 'गान' का अन्तर स्वनिम के भेद के कारण ही प्रतीत होता है। 'स्वनिम' कोई नई चीज नहीं है। यह एक प्रकार से वर्णमाला ही है। इसके दो भेद किये गए हैं–(1) खण्ड स्वनिम और (2) खण्डेतर स्वनिम। खण्ड स्वनिमों का विश्लेषण पृथक् इकाई के रूप में किया जा सकता है। इनके दो वर्ग हैं–(क) स्वर और (ख) व्यंजन। भाषा विशेष के स्वर–व्यंजन इसमें आते हैं। खण्डेतर स्वनिम में स्वराघात, अनुतान, सुर, विराम आदि आते हैं। उक्त के आधार पर भाषा विशेष का विश्लेषण इस पद्धति के अन्तर्गत आता है।

8.2.2.3.2 रूपिम (रूपग्राम)

जेलिग हेरिस ने रूपिम को परिभाषित करते हुए कहा है–"रूपिम उच्चारण के वे अंश है जो एक दूसरे से पूर्ण रूप से स्वाधीन होते हैं, किन्तु जो अनुरूप वितरण के रूप में

आते हैं।" 'शब्द' और 'रूपिम' में अन्तर होता है। जैसे–'कठोरता' एक शब्द है पर इसमें दो रूपिम हैं, 'कटोर' + 'ता'। अर्थात् भाषा या वाक्य की लघुतम सार्थक इकाई स्वनिम है। रूपिम के दो भेद होते हैं–(क) मुक्त रूपिम (Free Morpheme) और (ख) आबद्ध रूपिम (Bonnd Morpheme)।

(क) मुक्त रूपिम (Free Morpheme)

ऐसे रूपिम जो अकेले और अलग से भी प्रयोग में आ सकते हैं उन्हें मुक्त रूपिम कहते हैं। जैसे–रसोई, घर, कठोर, सुन्दर आदि।

(ख) आबद्ध रूपिम (Bonnd Morpheme)

ऐसे रूपिम अकेले, स्वतंत्र या अलग से नहीं आ सकते हैं, उन्हें आबद्ध रूपिम कहते हैं। जैसे 'ता' (सुन्दरता, एकता), ई (लड़की, घोड़ी आदि) ये रूपिम किसी के साथ मिलकर ही प्रयोग में आ सकते हैं।

रूपिम के अध्ययन पर ध्यान देते समय सम्बन्धित भाषा के व्याकरण को भी दृष्टि में रखना होगा। उच्चार को खण्डों में विभक्त करने का काम तभी संभव होता है, जब भाषा की प्रकृति और गृहीत अर्थ का ज्ञान हो। भुलक्कड़ को भुल (भूल) + अक्कड़ दो उपरूपों में वही बाँट सकता है जो भाषा को जानता हो। चूँकि रूपिम के विश्लेषण में अर्थतत्त्व और सम्बन्ध तत्त्व को अलग किया जाता है, इसलिए अर्थ और भाषा की प्रकृति जानना आवश्यक होता है।

8.2.2.3.3 वाक्य संरचना

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने वाक्य को परिभाषित करते हुए लिखा है, "वह अर्थवान ध्वनि समुदाय जो पूरी बात या भाव की तुलना में अपूर्ण होते हुए भी व्याकरणिक दृष्टि से अपने आप में पूर्ण हो तथा जिसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से क्रिया का भाव हो, वाक्य है।"

संरचना की दृष्टि से वाक्य तीन प्रकार के होते हैं–सरल वाक्य, मिश्र वाक्य और संयुक्त वाक्य।

(क) सरल वाक्य–इसमें एक उद्देश्य और एक विधेय अर्थात् एक कर्ता और एक क्रिया होती है; जैसे–'राम पढ़ता है।'

(ख) मिश्र वाक्य–इसमें एक मुख्य उपवाक्य रहता है, किन्तु आश्रित उपवाक्य एक या अनेक हो सकते हैं, जैसे–'जो विद्वान होता है, उसका सर्वत्र आदर होता है।'

(ग) संयुक्त वाक्य–इसमें अनेक मुख्य उपवाक्य होते हैं, जिनके साथ एक या अनेक आश्रित उपवाक्य भी रहते हैं। जैसे–'जिस दिन ईश्वर ने मनुष्य का निर्माण किया उसे यह भान नहीं होगा कि यह मनुष्य इतने रूपों में आचरण कर सकता है।'

अर्थ की दृष्टि से वाक्य के आठ भेद माने जाते हैं–

- विधि वाक्य – मोहन जाता है।
- निषेध वाक्य – मोहन नहीं जाता है।
- प्रश्न वाक्य – क्या मोहन जाता है?
- आदेश वाक्य – तुम जाओ।
- इच्छार्थक वाक्य – ईश्वर मंगल करे।
- सन्देहार्थक वाक्य – मोहन जाता होगा।
- संकेतार्थक वाक्य – यदि मोहन जाता तो अच्छा होता।
- विस्मयादिबोधक वाक्य – अरे मोहन जा रहा है!

वाक्य संरचना में दो पद विन्यास निर्धारित हैं–पदक्रम और पदान्विति

(क) **पदक्रम** – वाक्य संरचना में दो प्रकार के पदक्रम होते हैं–निश्चित और अनिश्चित। संश्लिष्ट भाषाओं में पदक्रम निश्चित नहीं रहता। अर्थतत्त्व में विभक्तियाँ जुड़ी रहती हैं, इसीलिए पदों को किसी भी क्रम से रखा जाए तो भी अर्थ वही मिलता है। जैसे, संस्कृत में–रामेण रावणं हतः या रावणं रामेण हतः या हतः रामेण रावणम्। किन्तु हिन्दी में पदक्रम निश्चित रहता है। यहाँ कर्ता+कर्म और अंत में क्रिया रखने का विधान हैं। लेकिन रचनाकार सदैव इसी क्रम का अनुपालन नहीं करता। वह भाषा के रचनात्मक प्रयोग के लिए इसमें परिवर्तन भी कर देता है। इस प्रकार रचनात्मक भाषा में पदक्रम के निम्नांकित रूप दिखाई देते हैं–

(क) **यथाक्रम** – भाषा के निर्धारित विन्यास को स्वीकार करना ही यथाक्रम है; अर्थात् कर्ता+कर्म+क्रिया।

(ख) **व्यतिक्रम** – जब भाषा को रचनात्मक बनाने के लिए या छन्द की माँग पर निर्धारित विन्यास को बदल दिया जाता है, तो उसे व्यतिक्रम कहते हैं। ये अनेक प्रकार के होते हैं–

(i) **कर्ता सम्बन्धी व्यतिक्रम** – वाक्य में कर्ता को पहले न रखकर मध्य या अन्त में रखना।

(ii) **कर्म सम्बन्धी व्यतिक्रम** – कर्म का स्थान बदल देना।

(iii) **क्रिया सम्बन्धी व्यतिक्रम** – वाक्य में क्रिया का स्थान अन्त में रहता है, उसे प्रारम्भ या मध्य में कर देना।

(iv) **विशेषण सम्बन्धी व्यतिक्रम** – सामान्यतः विशेषण का प्रयोग विशेष्य के पहले होता है; पर इसके स्थान में भी व्यतिक्रम कर दिया जाता है।

(अ) **सम्बन्धकरणीय पदों में व्यतिक्रम** – भाषा में अधिकृत पद अधिकारी पद के बाद

प्रयुक्त होता है; पर इस क्रम को भी बदल दिया जाता है।

(ख) **पदान्विति** – सामान्य भाषा में वाक्यों के लिंग, वचन, पुरुष आदि में एक प्रकार की व्याकरणिक अन्विति रहती है। रचनाकार भी प्रायः इसी अन्विति को स्वीकार करता है; लेकिन कहीं–कहीं वह इस अन्विति को अस्वीकार भी करता है। लिंग, वचन और पुरुष की ये अन्विति तीन रूपों में है।

(i) **कर्ता क्रिया अन्विति** – कर्ता के लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार क्रिया पद की अन्विति।

(ii) **कर्म क्रिया अन्विति** – सकर्मक वाक्यों में कर्म के वचन और लिंग के अनुसार क्रिया की अन्विति।

(iii) **विशेषण विशेष्य अन्विति** – विशेष्य के अनुसार ही विशेषण का वचन और लिंग निर्धारण रहता है। भाषा में इस अन्विति का भी अनुपालन होता है।

लोक व्यवहार में प्रयुक्त मौखिक भाषा या साहित्य में प्रयुक्त लिखित भाषा सम्बन्धी शोध में उपर्युक्त तथ्यों को आधार बनाया जाता है।

8.2.2.4 संरचनात्मक भाषाविज्ञान

संरचनात्मक भाषाविज्ञान वर्णनात्मक भाषाविज्ञान का ही विकसित रूप है। वर्णनात्मक भाषाविज्ञान में जहाँ अर्थविज्ञान को महत्त्व नहीं दिया जाता, वहीं संरचनात्मक भाषाविज्ञान में स्वनिम, रूपिम और वाक्य संरचना के साथ–साथ अर्थतत्त्व को भी समाहित करते हुए भाषा की पूर्ण व्यवस्था का विश्लेषण किया जाता है। संरचनात्मक भाषाविज्ञान यह मानता है कि भाषा के सभी घटक–ध्वनि, शब्द, वाक्य और अर्थ अलग–अलग न होकर एक समन्वित पूर्ण संरचना के रूप में अपना प्रभाव डालते हैं। इन घटकों का समन्वित रूप ही भाषा व्यवस्था है। भाषा का विषय न ध्वनि में रहता है, न शब्द, वाक्य या अर्थ में, वह इन सबमें मिला हुआ रहता है। अभिव्यक्ति और अर्थ एक दूसरे से पृथक् नहीं किये जा सकते। जब अभिव्यक्ति करेंगे तब अर्थ की प्रतीति होगी ही। इसे ही अपने यहाँ 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ' (कालिदास) या 'गिरा अरथ जलवीचि सम' (तुलसीदास) कहा गया है।

द सस्यूर ने भाषा को एक पद्धति विशेष कहा है, जो गठन अथवा रचना की विशेष क्रिया द्वारा अपना अस्तित्व प्राप्त करती है। इस संरचनात्मक प्रक्रिया और उससे बनी पूर्ण भाषा व्यवस्था का विश्लेषण ही संरचनात्मक भाषा विज्ञान के अन्तर्गत आता है। वर्णनात्मक भाषा विज्ञान में जहाँ अर्थप्रक्रिया को अलग रखते हुए केवल घटकों के विश्लेषण के माध्यम से तथ्यों का अंकन किया जाता है, वहीं संरचनात्मक प्रणाली में अर्थ प्रक्रिया को भी शामिल किया जाता है। इसीलिए आज भाषा विश्लेषण की विभिन्न पद्धतियों में यह पद्धति बहुत उपयोगी है।

भाव या विचार को प्रकट करने के लिए मानसिक क्रिया के बाद ध्वनियों की व्यवस्था प्रारम्भ होती है और इन उच्चरित ध्वनियों को सुगठित करते हुए शब्द, वाक्य, प्रोक्ति आदि की यात्रा पूरी कर हम अर्थ की प्रतीति तक जाते हैं। अर्थ प्रतीति में भी संरचना

का महत्त्व है। कोई अर्थ यों ही ग्रहण नहीं कर लिया जाता, बल्कि भाषा की संरचनात्मक इकाई को उसी प्रकार ग्रहण कर एक व्यवस्थित विश्लेषण होता है अर्थात् संरचना का कार्य वहाँ भी चलता है। भाषा विश्लेषण की इस पद्धति में वर्णनात्मक के साथ–साथ ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक पद्धतियों का भी सहयोग लिया जाता है। इसमें अर्थतत्त्व को शामिल करने से यह पद्धति पूर्ण बन जाती है। निश्चय ही अर्थतत्त्व इसका प्रमुख अंग है, क्योंकि यदि वक्ता तक सीमित अंश 'अभिव्यक्ति' है तो श्रोता का पक्ष 'आशय' है। यद्यपि 'आशय' से प्रेरित होकर ही अभिव्यक्ति होती है। वक्ता के 'आशय' (संदेश) को अभिव्यक्ति के माध्यम से श्रोता तक पहुँचाना ही भाषा का कार्य है। पाश्चात्य विद्वानों में 'फर्थ' और 'याकोब्सन' ने भी भाषा के अर्थतत्त्व पर विशेष जोर दिया है। इनकी स्पष्ट मान्यता है कि काफी समय तक 'स्वनिम' और 'रूपिम' की प्रधानता रही और 'अर्थ' को दूर रखा गया पर अब भाषा विज्ञान में 'अर्थ' को भी उसका स्थान देना होगा। संरचनात्मक भाषाविज्ञान इस कार्य को मूर्त रूप देता है, क्योंकि ध्वनि और अर्थ का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित होने से ही भाषा की विश्लेषण पद्धति तथ्यों के निकट हो सकती है।

8.2.3 अन्य शाखाएँ

8.2.3.1 भाषाभूगोल

भाषाभूगोल को क्षेत्रीय भाषा विज्ञान भी कहा जाता है। इस पद्धति से किसी भाषा क्षेत्र में प्रचलित भाषा/बोलियों के ध्वनि, शब्द वाक्य और अर्थ आदि का विश्लेषण किया जाता है। यहाँ आवश्यकतानुसार भाषाविज्ञान की सभी पद्धतियों–तुलनात्मक, ऐतिहासिक, वर्णनात्मक, संरचनात्मक–का उपयोग किया जा सकता है। भौगोलिक विशेषताओं के आधार पर उस क्षेत्र विशेष की भाषा/बोली का मूल्यांकन किया जाता है।

भाषा–भूगोल के अन्तर्गत भाषा सर्वेक्षण का भी कार्य आता है। इस दिशा में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य ग्रियर्सन का 'भारत का भाषा सर्वेक्षण' है। इस क्षेत्र में शोध कार्य की असीम सम्भावनाएँ है। डॉ. विश्वनाथ प्रसाद की देखरेख में बिहार की कतिपय बोलियों का सर्वेक्षण किया गया। पंजाब के भाषा–विभाग की ओर से भी इस दिशा में कुछ कार्य हुए हैं।

8.2.3.2 समाजभाषाविज्ञान

भाषा एक सामाजिक वस्तु है। मनुष्य समाज से ही उसे अर्जित करता है और समाज में ही उसका प्रयोग करता है। इस प्रकार समाज और भाषा का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। भाषा का विकास सामाजिक विकास के समानान्तर चलता है। सामाजिक व्यवस्था और उसके परिवर्तनों का भाषा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। भाषा और समाज के घनिष्ठ सम्बन्धों पर ध्यान जाने के कारण ही भाषाविज्ञान की इस नई शाखा–समाज भाषाविज्ञान का विकास हुआ है। इसमें भाषा के पूर्ण और व्यवस्थित अध्ययन के लिए ध्वनिविज्ञान, रूपविज्ञान, वाक्यविज्ञान, और अर्थविज्ञान के साथ–साथ समाज विशेष में प्रचलित मुहावरे और लोकोक्तियों का भी उपयोग किया जाता हैं।

सामाजिक भेद–शिक्षित–अशिक्षित, उच्च–मध्य–निम्न वर्ग, विभिन्न पीढ़ियों–जातियों–धर्मों–लिंग के आधार पर उनमें प्रचलित ध्वनि, शब्द / रूप, वाक्य मुहावरे–लोकोक्तियाँ आदि का विश्लेषण और मूल्यांकन किया जाता है। जैसे–दो व्यक्तियों की भाषा / बोली सुनकर उनकी सामाजिक स्थिति का ज्ञान हो जाता है।

सामाजिक परिवर्तनों के साथ भाषा में भी परिवर्तन आता है। इस प्रकार सामाजिक स्तरों और परिवर्तनों के संदर्भ में भाषा का सूक्ष्मता से अध्ययन कर अनेक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

8.2.3.3 मनोभाषाविज्ञान

इस पद्धति के अन्तर्गत भाषा के मनोवैज्ञानिक पक्ष का अध्ययन किया जाता है। भाषा के प्रयोग में हम जहाँ उच्चारण अवयवों की सहायता लेते हैं, वहीं इसमें 'मन' का भी योगदान होता है। अतः भाषा के दो आधार माने जाते हैं–(क) भौतिक, तथा (ख) मनोवैज्ञानिक। बोलने के पूर्व वक्ता में मनोवैज्ञानिक क्रिया होती है, तो सुनने के बाद श्रोता में। अर्थात् भाषा का आरम्भ भी मनोविज्ञान से होता है और अन्त भी मनोविज्ञान में ही होता है। यदि ध्यान से देखा जाए तो सीखना और उसका प्रयोग करना भी मनोविज्ञान के क्षेत्र में आते हैं। वक्ता के वाक् व्यवहार से हम उसके भाषाबोध, मानसिक अवस्था आदि का अन्दाज लगा सकते हैं।

सामान्यतः हम यह अनुभव करते हैं कि मनुष्य जब भाषा का प्रयोग करता है तो उसके पीछे कोई एक प्रेरणा रहती है। यह प्रेरणा कहाँ से आती है? उसका स्त्रोत क्या है? जैसे–जब हम किसी पर प्रसन्न होते हैं या प्रेम से बोलना चाहते हैं, तो उसके लिए 'शब्द चयन' या 'वाक्य विन्यास' कहाँ से निर्धारित होते हैं?–मन से। अर्थात् हमारा वाक् व्यवहार मन से संचालित होता है। 'मन' का अध्ययन मनोविज्ञान का क्षेत्र है, इसलिए मन द्वारा नियंत्रित भाषा के अध्ययन के लिए मनोभाषाविज्ञान का विकास हुआ। मनोभाषावैज्ञानिकों का मानना है कि भाषा का निर्माण मनुष्य की वृत्तियों के आधार पर होता है; अतः भाषा के माध्यम से उसके बोलने वालों की चिन्तनशैली और उनकी विचारधारा का भी पता लगाया जा सकता है।

8.3 शैलीवैज्ञानिक शोध

8.3.1 अर्थ एवं परिभाषा

सर्वप्रथम जर्मन भाषा में शैलीविज्ञान के मूल शब्द ैजपसपेजपाश का प्रयोग आरम्भ हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में फ्रांसीसी (1872) में ैजपसपेजपुनमश तथा अंग्रेजी (1882) में ैजलसपेजपबेश शब्द व्यवहृत होने लगे। भाषाविज्ञान और समीक्षा के इस नवीनतम ज्ञानानुशासन के इतिहास का प्रारम्भ 'सस्यूर' के शिष्य 'चार्ल्स बॉली' से माना जाता है। बाद में 'रोमन याकोब्सन' ने शैलीविज्ञान को एक व्यवस्थित रूप दिया। उसकी मान्यता है, "भाषा के काव्यात्मक प्रकार्य के प्रति वधिर भाषावैज्ञानिक और भाषाविज्ञान से

उदासीन तथा भाषिकीय पद्धतियों से सम्पर्कहीन साहित्यवेत्ता–दोनों ही समान रूप से घोर पुरातनवादी हैं।" पाश्चात्य शैलीवैज्ञानिकों में बॉली, स्तिलफॉरजंग, ट्रेगर, याकोब्सन, सी.डब्ल्यू. हेस, हॉक्स, स्पेंसर और फाउलर आदि के नाम लिये जा सकते हैं। जैसाकि प्रस्तावना में कहा जा चुका है हिन्दी में 'शैलीविज्ञान' को एक आलोचना सिद्धान्त के रूप में स्थापित करने का श्रेय डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. सुरेश कुमार, डॉ. पाण्डेय शशिभूषण शर्मा 'शीतांशु' आदि को है।

भाषा और साहित्य के क्षेत्र में आन्तरशास्त्र (इण्टरडिसिप्लिन) के रूप में शैलीविज्ञान का उद्‌भव और विकास एक महत्त्वपूर्ण घटना है। पहले तो यही देखना होगा कि भाषाविज्ञान से इसका सम्बन्ध क्या है? क्या यह भाषाविज्ञान का एक अंग है या एक स्वतंत्र अनुशासन? रोमन याकोब्सन इसे भाषाविज्ञान का ही एक अंग मानता है। यद्यपि वह समस्त साहित्यालोचन को भाषाविज्ञान की सीमा में ही समेट लेता है। डॉ0 रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव का कहना है कि शैलीविज्ञान साहित्यिक आलोचना का सिद्धान्त भी है और प्रणाली भी। भाषावादी सिद्धान्त के रूप में उसकी मान्यता है कि साहित्य 'शाब्दिक कला' (Verbal Art) है और कृति के रूप में साहित्यिक रचना भाषा की अपनी सीमा में बँधी एक स्वनिष्ठ (Autonomous) इकाई है। साहित्यिक कृति भाषा को न केवल अभिव्यक्ति का माध्यम बनाती है अपितु स्वयं भाषा के भीतर ही अपना रूपाकार ग्रहण करती है।

शैलीवैज्ञानिकों का कहना है कि इसके द्वारा साहित्य के पाठ का रूपान्वेषण ही मात्र नहीं होता बल्कि उसकी अर्थवत्ता की विवेचना भी होती है। डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव कहते हैं, "(वह) एक ओर साहित्यिक कृति की संरचना (Structure) और गठन (Texture) पर प्रकाश डालती है और दूसरी ओर कृति का विश्लेषण करते हुए उसमें अन्तर्निहित साहित्यिकता का उद्‌घाटन करती है।" शैलीविज्ञान भाषा और साहित्य को जोड़ने का काम करता है। यह एक पराश्रयी शास्त्र–भाषाशास्त्र और सौन्दर्यशास्त्र पर आश्रित है। इसकी स्पष्ट मान्यता है कि सामान्य भाषा एक 'स्वतःचालित' (Autometised) भाषा है जबकि कविता अ–स्वतःचालित (DeAutometised) भाषा में लिखी जाती है। स्वतःचालित भाषा दैनंदिन भावों और विचारों के विनिमय की भाषा है किन्तु अ–स्वतःचलित भाषा अपनी ताजगी, नवीनता और वक्रता के कारण पाठकों या श्रोताओं को अपनी ओर आकृष्ट करती है। डॉ. बच्चन सिंह ने इसे ही कालिदास की शब्दावली में 'भाषा का अन्यथाकरण; या कुन्तक का 'भणितभंगी' कहा है। भारतीय काव्यशास्त्र के आचार्य इसे ही वक्रोक्ति या उक्तिविशेष कहते हैं तो रूसी रूपवादी भाषा का 'डिफेमेलियराइजेशन'। 'शैलीविज्ञान इसी अन्यथाकृत भाषा का अध्ययन' करता है।

8.3.2 विश्लेषण प्रक्रिया

शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण प्रक्रिया के संदर्भ में डॉ. सुरेश कुमार ने लिखा है, "जिस प्रकार कुछ विशेष स्थानों पर वाहन गति को रुककर आगे बढ़ना होता है, यद्यपि आगे बढ़ना उसकी विगत गति से कुछ विच्छिन्न होते हुए भी पूरी तरह पृथक् नहीं हो जाता, उसी प्रकार हम पाठ को उसकी समग्रता में लेते हुए पूरे पाठ की भाषा का विश्लेषण कर फिर

क्षण भर रुककर भाषा विश्लेषण को साथ लेते हुए पाठ के साहित्यिक वर्णन में प्रवृत्त होते हैं।" (शैलीविज्ञान, पृ0 91) शैलीविज्ञान विश्लेषण प्रक्रिया के तीन स्तर स्वीकार करता है–(1) सर्वप्रथम हम रचना को उसकी पूर्णता में स्वीकार करते हैं। वह एक सम्पूर्ण, सजीव और स्वनिष्ठ वस्तु है। इसके प्रत्येक अवयव अन्योन्याश्रित और संश्लिष्ट होते हैं। रचना के अवयवों के संश्लिष्ट प्रभाव से पाठक या श्रोता आस्वाद ग्रहण करता है। (2) इसके बाद हम रचना के भाषागत तत्त्वों पर ध्यान देते हैं। एक कृति के विशिष्ट भाषा–प्रयोग ही उसे अन्य कृतियों से अलग करते हैं। यहाँ हम भाषापरक विश्लेषण करते हुए मूल्यांकन करते हैं, और (3) अन्त में एक बार फिर रचना को उसकी समग्रता में देखते हुए उसका मूल्यांकन करते हैं। यहाँ प्रक्रिया के दूसरे स्तर पर निर्धारित प्रकल्पना की पुष्टि या संशोधन भी करते हैं।

यह वृत्ताकार गति ही शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण का आधार है। वस्तुतः शैलीविज्ञान का लक्ष्य केवल विश्लेषण न होकर व्याख्या और मूल्यांकन भी है। यह प्रक्रिया कृति से प्रारम्भ होकर कृति पर ही समाप्त होती है। क्योंकि कृति सम्पूर्ण और अखण्ड वस्तु है।

8.3.3 विश्लेषण प्रणाली

शैलीविज्ञान साहित्य को 'भाषिक कला' के रूप में स्वीकार करता है। यह भाषिक कला 'कलात्मक संवेदना' को अपना केन्द्र मानती है। यह न केवल भाषा में व्यक्त होती है बल्कि भाषा में ही अपना रूपाकार ग्रहण करती हैं। इस 'कलात्मक संवेदना' का उद्‌घाटन भाषा की संरचना और बुनावट के विश्लेषण द्वारा संभव है। शैलीविज्ञान अपने विश्लेषण– अध्ययन के लिए जिस प्रणाली को अपनाता है वह भाषाविज्ञान और उसके प्रारूपों पर अवलम्बित है। इसमें संरचना, बुनावट, साभिप्राय विचलन, समानान्तरता, विन्यासक्रमी और सहचारक्रमी सम्बन्ध और विरलता प्रमुख हैं।

8.3.3.1 संरचना

संरचना कृति के विभिन्न अवयवों (संघटकों) के अन्तर्सम्बन्धों के आधार पर अपना रूप ग्रहण करती है। संरचना की प्रकृति अमूर्त होती है। संरचना की चर्चा मूलतः रूसी रूपवादी आलोचना से प्रारम्भ हुई। संरचना की तीन विशेषताएँ हैं–पूर्णता (Wholeness)] सजीवता (Transformation) और स्वनिष्ठता (Self Regulation)। यह एक पूर्ण व्यवस्था है, लेकिन कृति के अंगों का समग्र योग नहीं है। यह अपने से भिन्न किसी अन्य वस्तु पर आधारित नहीं होती। संरचना के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि किसी रचना में पाये जाने वाले अलंकार, शब्द रूप, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि की स्वतंत्र सत्ता नहीं है, अपितु कृति की पूर्णता में विलीन हो जाने में ही उनकी सार्थकता है।

8.3.3.2 गठन (बुनावट) (Texture)

शैलीविज्ञान कृति की बुनावट का भी विश्लेषण करता है, जिससे यह ज्ञात हो सके कि

कथानक, पात्र, वातावरण आदि तत्त्व सम्प्रेष्ण में कितने सहायक हैं। संरचना अमूर्त होने के कारण बौद्धिक और संकल्पनात्मक होती है। वह अपनी प्रकृति में रूप निरपेक्ष होती है। परन्तु बुनावट का पूरा क्षेत्र ऐंद्रिक होने के कारण रूपगत होता है। संरचना अगर प्रकार्य की अवधारणा पर आधारित है, जैसे–नायक, नायिका आदि तो बुनावट एक नायक से दूसरे नायक को भिन्न कर देती है। भाषा और साहित्य के संदर्भ में बुनावट का सम्बन्ध उसके ऐंद्रिक पक्ष से रहता है।

8.3.3.3 साभिप्राय विचलन

भाषा के प्रयोग के कुछ निश्चित नियम होते हैं। सामान्य भाषा इन्हीं पूर्व निर्धारित नियमों के आधार पर चलती है, परन्तु काव्यभाषा इन नियमों को ज्यों का त्यों नहीं स्वीकारती। वह अनुभूति की विशिष्टता के आधार पर अभिव्यक्ति की राह चुनती है। सामान्य भाषा के इन नियमों की अवहेलना ही विचलन है। पर यह विचलन एक खास उद्देश्य के तहत होता है अतः 'साभिप्राय विचलन' है। यह भाषा की सर्जनात्मक क्षमता का प्रमाण भी बन जाता है। कम से कम विचलन से अधिक से अधिक अर्थगर्भता लाने की शक्ति समर्थ काव्यभाषा की पहचान है। यह विचलन कई स्तरों पर होता है–ध्वनि, शब्द/रूप, वाक्य, अर्थ, प्रोक्ति और लेखन। यथा, यहाँ सुमित्रानन्दन पन्त की एक प्रसिद्ध कविता में साभिप्राय विचलन का उदाहरण द्रष्टव्य है–

'वह बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।' (उच्छ्वास) व्याकरण की दृष्टि से पुल्लिंग शब्द–'मित्र' का स्त्रीलिंग के रूप में प्रयोग साभिप्राय विचलन का उत्कृष्ट उदाहरण है।

8.3.3.4 समानान्तरता

साभिप्राय विचलन अगर भाषिक नियमों का अतिक्रमण करता है तो समानान्तरता में भाषा–प्रयोग की साभिप्राय पुनरावृत्ति होती है। समानान्तर का अर्थ है, 'किसी भाषिक लक्षण या विधान की पुनरावृत्ति की नियमितता।' इस नियमितता को हम भाषा के प्रत्येक स्तर–ध्वनि, शब्द/रूप, वाक्य, प्रोक्ति, अर्थ आदि पर देख सकते हैं। ध्वनि स्तर पर इसे अनुप्रास अलंकार में देखा जा सकता है, जहाँ एक ही वर्ण की एक या एक से अधिक आवृत्तियाँ होती हैं। जैसे–'चारुचन्द्र की चंचल किरणें।' इसी तरह शब्द स्तर पर समानान्तरता वहाँ होती है जहाँ किसी कृति में शब्द विशेष को बार–बार दुहराया जाता है।

8.3.3.5 विन्यासक्रमी और सहचारक्रमी सम्बन्ध

वाक्य में पदों के आपसी सम्बन्ध विन्यासक्रमी तथा दो शब्दों के आपसी सम्बन्ध सहचारक्रमी होते हैं। जैसे–'राम ने पुस्तक पढ़ी' वाक्य में 'राम', 'पुस्तक' और 'पढ़ना' पद के सम्बन्ध विन्यासक्रमी हैं। इसी प्रकार 'सुरा–सुन्दरी' या 'कंचन–कामिनी' में 'सुन्दरी' या 'कामिनी' का अबला, नारी, वामा, स्त्री आदि पर्याय है, किन्तु 'सुरा' या 'कंचन' के साथ इन पर्याय गुच्छों में से उपर्युक्त पद ही विरोधी परिवेश में अर्थ वैशिष्ट्य पाते हैं। दोनों का आधार क्रमशः संयोजन और चयन पर निर्भर है।

8.3.3.6 विरलता

रचनाकार कहीं–कहीं ऐसे विरल (Rare) पदों का प्रयोग करता है जिन्हें अलग से रेखांकित किया जा सकता है। ये विरल प्रयोग काव्यभाषा के सौन्दर्य की अभिवृद्धि में सहायक होते हैं। न इन्हें विचलन के अन्तर्गत रखा जा सकता है और न अकेला होने के कारण समानान्तरता के अन्तर्गत ही। विचलन और समानान्तर से भिन्न विरल पद रचना की गहन संरचना में घुल कर उसकी अर्थवत्ता को विलक्षण बना देता है। जैसे–निराला की 'राम की शक्तिपूजा' में 'मशाल' शब्द एक ऐसा विरल पद है।

8.4 सारांश

भाषा की तीन आन्तरिक व्यवस्थाओं–ध्वनि संकेत, अर्थ और सम्प्रेषण का वैज्ञानिक अध्ययन ही भाषाविज्ञान के क्षेत्र में आता है। ऐतिहासिक, तुलनात्मक, वर्णनात्मक और संरचनात्मक पद्धति से भाषा का विश्लेषण और मूल्यांकन किया जाता है।

भाषा और साहित्य के क्षेत्र में एक आन्तरशास्त्र के रूप में शैलीविज्ञान का विकास हुआ। शैलीविज्ञान साहित्य को 'शाब्दिक कला' मानता है। इस पद्धति के अन्तर्गत भाषा के विश्लेषण के लिए संरचना, बुनावट, साभिप्राय विचलन, समानान्तरता, विन्यासक्रमी और सहचारक्रमी सम्बन्ध तथा विरलता को आधार बनाया जाता है।

8.5 संदर्भ ग्रन्थ

- तिवारी डॉ. भोलानाथ, भाषाविज्ञान, किताब महल, इलाहाबाद
- शर्मा डॉ. देवेन्द्रनाथ, भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
- गुप्त डॉ. मोतीलाल एवं भटनागर रघुवीर प्रसाद : आधुनिक भाषाविज्ञान की भूमिका, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर
- श्रीवास्तव डॉ. रवीन्द्रनाथ : संरचनात्मक शैलीविज्ञान, आलेख प्रकाशन, दिल्ली
- मिश्र डॉ. विद्यानिवास : रीतिविज्ञान, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
- दुबे डॉ. सुरेन्द्र : काव्यादर्श और काव्यभाषा, भवदीय प्रकाशन, अयोध्या (उ.प्र.)

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) शैलीविज्ञान का प्रारम्भ करने वाले पाश्चात्य विद्वान का नाम बताइए?

(2) हिन्दी में शैलीविज्ञान के क्षेत्र में काम करने वाले दो विद्वानों के नाम बताइये?

(3) शैलीविज्ञान साहित्य को क्या मानता है?

(4) संरचना की विशेषताएँ बताइए?

(5) 'साभिप्राय विचलन' किसे कहते हैं?

(6) 'समानान्तरता' किसे कहते हैं?

(7) 'विरलता किसे कहते हैं?

(8) विन्यासक्रमी सम्बन्ध का कोई उदाहरण बताइए।

(9) शैलीवैज्ञानिक शोध की विश्लेषण प्रणाली की विवेचना कीजिए।

□

इकाई– 9 समाज शास्त्रीय शोध प्रविधि

इकाई की रूपरेखा

9.1 उद्धेश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 क्षेत्र, प्रक्रिया व समाजशास्त्र और साहित्य का सम्बन्ध

9.3.1 क्षेत्र

9.3.2 प्रक्रिया

9.3.3 समाजशास्त्र और साहित्य

9.4 साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन का अवधारणात्मक विकास

9.5 साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की ऐतिहासिक पृष्ठभमि

9.6 मध्यकालीन समाज तथा साहित्य का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

9.7 मध्यकालीन संस्कृति के विविध रूप

9.8 मध्यकालीन काव्य तथा साहित्य का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

9.8.1 कबीर

9.8.2 जायसी

9.8.3 सूर

9.8.4 तुलसी

9.9 निष्कर्ष

9.10 सारांश

9.11 संदर्भ ग्रंथ

9.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.1 उद्धेश्य

साहित्य में अन्तर्भूत सामाजिक तत्वों का वैज्ञानिक अनुशीलन समाजशास्त्रीय शोध का उद्‌देश्य होता है। साहित्य में समाज का किस प्रकार का रूप चित्रित हुआ है, इसी रूप का तार्किक तथा क्रमबद्ध उपस्थापन समाजशास्त्रीय शोध है। साहित्य समाज की धारा से सम्पृक्त है। साहित्य का प्रासाद समाज की भित्ति पर अवलंबित है। प्रत्येक युग का साहित्य उस युग के सामाजिक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है। साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन द्वारा समाज के विविध रूपों तथा सामाजिक विकास के बहुविध सोपानों के स्वरूप को उजागर किया जाता हैं।

9.2 प्रस्तावना

समाजशास्त्र पदबन्ध से एक ऐसे शास्त्र का अर्थ ध्वनित होता है जिसके आधार पर समाज के स्वरूप का अध्ययन किया जाता है। शास्त्रीय मानकों के आधार पर किया गया अध्ययन सदैव वैज्ञानिक होता है। अतः समाजशास्त्रीय अध्ययन भी समाज का वैज्ञानिक अध्ययन ही होगा।

हिन्दी का समाजशास्त्र पदबन्ध अंग्रेजी के सोशियॉलॉजी शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। सोशियॉलॉजी शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन के 'सोशियस' और ग्रीक भाषा के लॉगस शब्दों से मिलकर हुई है जिनका अर्थ है समाज और अध्ययन अथवा विज्ञान। अतः समाजशास्त्र सोशियॉलॉजी के पर्याय के रूप में अत्यन्त संगत शब्द है। वस्तुतः समाजशास्त्र को विभिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न रूपों में परिभाषित और व्याख्यायित किया है, किन्तु सभी परिभाषाओं में कुछ सामान्य तत्त्व भी मिलते हैं। निष्कर्ष रूप में समाजशास्त्र वह शास्त्र है जिसमें समाज की मूल संरचना तथा समाज को दुर्बल या संगठित करने वाले सभी तत्त्वों का अध्ययन किया जाता है। वस्तुतः सामाजिक संबंधों अथवा समाज को प्रभावित करने वाले तत्त्वों का थोड़ा–बहुत अध्ययन तो अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान अथवा अन्य समाज–विज्ञानों में भी होता है, तो क्या समाजशास्त्र उनकी शाखा मात्र है? वस्तुस्थिति इससे भिन्न है। समाजशास्त्र एक सर्वथा स्वतंत्र विज्ञान अथवा शास्त्र है। यही नहीं, समाज से संबंध सभी शास्त्र किसी न किसी रूप में इस शास्त्र के ऋणी रहते हैं।

9.3 क्षेत्र, प्रक्रिया व समाजशास्त्र और साहित्य का सम्बन्ध

9.3.1 क्षेत्र

संसार की सभी भौतिक–अभौतिक वस्तुओं का एक स्वरूप होता है और इस स्वरूप के निर्माण में अनेक अन्तर्वस्तुओं का योगदान रहता है। समाज के सन्दर्भ में जहाँ प्रतिस्पर्द्धा, सहयोग, अधीनता, श्रम–विभाजन आदि सामाजिक संबंधों के कुछ स्वरूप हैं, वहीं राजनीति, धर्म, अर्थ, दर्शन आदि अन्तर्वस्तुएँ इन स्वरूपों के निर्माण में अमूर्त रूप से सक्रिय रहती हैं। अन्य समाज–विज्ञानों का सम्बन्ध इन अन्तर्वस्तुओं तक सीमित रहता है, जबकि समाजशास्त्र में सामाजिक संबंधों के स्वरूप का न केवल अध्ययन किया जाता है, प्रत्युत यही अध्ययन प्रमुख होता है। समाज शास्त्र की इस अध्ययन प्रणाली को इसके 'यथारूप सम्प्रदाय' (फार्मल स्कूल) के अन्तर्गत ग्रहण किया जाता है।

'समाज शास्त्र' का दूसरा स्कूल समन्वयात्मक है। इसके अन्तर्गत अन्य समाज–विज्ञानों में अध्ययन की जाने वाली अन्तर्वस्तुओं के अतिरिक्त ऐसी परिस्थितियों का भी अध्ययन किया जाता है जिनका अध्ययन अन्य समाज – विज्ञान नहीं करते। समाजशास्त्रीय परिधि में आने वाले अध्ययनों को सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है –

1.	समाजशास्त्रीय विश्लेषण	–	मानव संस्कृति और समाज के सन्दर्भ में।
2.	सामाजिक जीवन	–	सामाजिक संबंध, व्यक्तित्व, समूह, इकाईयाँ समुदाय, समितियाँ आदि।
3.	आधारभूत सामाजिक संस्थाएँ	–	परिवार तथा आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, शैक्षणिक संस्थाएँ।

4. मौलिक सामाजिक प्रक्रियाएँ — विभेदीकरण, सहयोग, समायोजन, सामाजिक संघर्ष, समाजीकरण, संचार,सामाजिक परिवर्तन आदि

9.3.2 प्रक्रिया

समाज शास्त्र के स्वरूप और अध्ययन क्षेत्र को समझ लेने के उपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य का समाजशास्त्रीय शोध एक अनिवार्यता है। साहित्य व्यक्ति, समुदाय, परिसर, संस्थाओं और मूल्यों के द्वारा विघटन तथा सांस्कृतिक प्रभावों को लेकर चलता है। सामाजिक परिवर्तन जहाँ सामाजिक संरचना में परिवर्तन और उसका नवगठन करते हैं, वहीं पर साहित्य अपने दायित्व रूप में इस वस्तु–स्थिति का भावात्मक चित्रण करता है। वस्तुतः समाजशास्त्रीय शोध की प्रक्रिया अन्तरअनुशासनीय शोध के अन्तर्गत आने वाली किसी भी शोध दृष्टि के समान ही व्यवहार्य होती है। यह शोध भी तथ्याश्रित होता है। शोधार्थी को पहले शोध रचनाओं में संभाव्य तथ्यों के प्रकाश में समाजशास्त्र का अध्ययन करते हुए अपने शोध के सिद्धान्त पक्ष को तैयार करना होता है। इसके लिए उसकी अध्ययन दृष्टि सूक्ष्म और पैनी होनी चाहिए, क्योंकि इसी के आधार पर आगे चलकर उसे अपनी शोध स्थापना प्रस्तुत करनी होती है।

9.3.3 समाज शास्त्र और साहित्य

साहित्य सृजन के सन्दर्भ में समाज की भूमिका को किसी न किसी रूप में आरंभ से ही स्वीकार किया जाता रहा है, किन्तु साहित्य का विधिवत समाजशास्त्रीय अध्ययन काफी बाद की घटना है। रचना में समाज की उपस्थिति का प्रश्न सत्रहवीं सदी में भी उठा था, उदाहणार्थ, जैम्स राइट ने नाटकों के सम्बन्ध में इसकी चर्चा की थी। किन्तु 18वीं सदी में साहित्य और समाज के अन्तःसम्बन्धों पर विचार की प्रक्रिया को नई गति मिली। यह आग्रह किया गया कि साहित्य और कलाओं के मूल आशयों तक पहुँचने के लिए सामाजिक परिवेश का ज्ञान भी अपेक्षित है। ऐलन स्विंगवुड ने 'सोशियोलॉजी ऑफ लिटरेचर' में साहित्य के समाजशास्त्र के विकास की चर्चा की है। विको की 'न्यू साइंस' (1725 ई.) में वे इसका पूर्वाभास देखते हैं और जे. सी. हर्डर (1744–1803) तथा मदाम द स्ताल (1766–1817) से इसका विधिवत आरंभ मानते हैं। उन्होंने इसको एक तार्किक आधार प्रदान किया था।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि साहित्य का समाजशास्त्र एक आधुनिक विषय है। कहना न होगा कि आजकल साहित्य के समाजशास्त्र की चर्चा व्यापक स्तर पर हो रही है। हर्डर तथा मदाम द स्ताल में देश विशेष की जलवायु, भौगोलिक स्थिति, सामाजिक संस्थाओं की समानताएँ मिलती हैं जिनसे साहित्य प्रभावित होता है। साहित्य के समाजशास्त्र के संदर्भ में 'मदाम त स्ताल' के कुछ विचार इस दृष्टि से भी उल्लेखनीय हैं कि उनसे आगामी चिन्तन का विकास हुआ है। उन्होंने मध्य–वर्ग के उदय को साहित्य में महत्त्व दिया जो औद्योगिक समाज के साथ नई भूमिकाओं में सक्रिय हुआ। 1789 की फ्रांसीसी क्रांति से निरंकुश सामंती शासन का पतन हुआ, मानवाधिकारों की घोषणा हुई। स्वाधीनता, समानता, बंधुत्व और स्ताल के चिन्तन पर उसका प्रभाव स्वाभाविक है। मध्य–वर्ग की विशेष स्थिति को स्वीकार करते हुए उन्होंने उपन्यास को प्रभावी रचना माध्यम माना। एक लम्बे अरसे तक कविता और नाटक साहित्य की केन्द्रीय विधाएँ रही हैं, उन्हीं को साहित्य चिन्तन में प्रमुखता मिली है।

मदाम द स्ताल ने मध्य–वर्ग और उपन्यास को जो महत्त्व दिया, उसे साहित्य के आगामी समाजशास्त्रीय चिन्तन में प्रमुखता मिली जैसे जॉर्ज लुकाच आदि ने इस प्रकार सामाजिक संस्थाओं से साहित्य के संबंध पर विचार से साहित्य के समाज–शास्त्र का आरंभ हुआ।

9.4 साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन का अवधारणात्मक विकास

यद्यपि 'साहित्य का समाजशास्त्र' पदबन्ध को गढ़ने का श्रेय आंग्युस्त कोंत (1798–1857) को दिया जाता है, किन्तु उसे वैचारिक रूप से विकसित करने में ईमा लीन अल्डोफ तेन (1828–93) ने विशेष भूमिका अदा की। तेन का चिन्तन बहुआयामी था। ''अंग्रेजी साहित्य का इतिहास'' उनका प्रसिद्ध ग्रंथ है। 'साहित्य के समाजशास्त्र' का उनका सिद्धान्त प्रजाति, परिवेश तथा युग चेतना से निर्मित है जिससे रचना का समग्र रूप उभरता है। हालाँकि उन्होंने लेखक के व्यक्तित्व को भी यथोचित महत्त्व दिया, क्योंकि रचनाकार का व्यक्तित्व भी रचना में सक्रिय होता है। विद्वानों ने 'साहित्य के समाज शास्त्र' के संदर्भ में तेन के योगदान को महत्त्वपूर्ण माना है।

साहित्य के समाजशास्त्र विषयक दृष्टिकोण को मोटे तौर पर दो रूपों में समझा जा सकता है। उनमें से अधिक लोकप्रिय और परंपरागत सिद्धान्त साहित्य को समाज का दर्पण मानता है। साहित्य का दर्पण बिम्ब वाला सिद्धान्त साहित्य को दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में ग्रहण करता है। इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत साहित्य सामाजिक संरचना के विभिन्न पक्षों, संबंधों, प्रवृत्तियों, संघर्षों अर्थात् समाज की समूची संरचना का प्रत्यक्ष प्रतिबिम्ब है। इस प्रतिबिम्बधर्मी दृष्टि के विरुद्ध प्रायः यह तर्क दिया जाता है कि इसमें साहित्य को सूचनाओं के संग्रह के रूप में इस्तेमाल करने का खतरा पैदा होता है, जबकि वास्तविक स्थिति यह है कि महान लेखक सामाजिक जगत् का सीधे सीधे वर्णनात्मक भाषा में चित्रण नहीं करता। लेखक का दायित्व कहीं अधिक जटिल होता है। प्रायः कल्पित स्थितियों में उसके गतिशील पात्र, अपनी व्यक्तिगत नियति का संधान करते हैं अर्थात् साहित्य समाज का सतही प्रतिबिम्ब प्रस्तुत न करके लेखकीय आशय के रूप में मूल्यों को भी प्रतिबिम्बित करता है। वस्तुतः मूल्यों के स्तर पर ही साहित्य समाजशास्त्रीय सामग्री को प्रमाणित और प्रकाशित करता है। समाजशास्त्री का दायित्व साहित्यिक रचनाओं में केवल ऐतिहासिक और सामाजिक प्रतिबिम्ब की खोज मात्र करना नहीं है, बल्कि साहित्यिक रचनाओं में अन्तर्निहित उन मूल्यों की प्रकृति को स्पष्ट करना है जिन्हें 'रेमण्ड विलियम्स' ने 'भाव की संरचना' कहा है। अतः स्पष्ट है कि सामाजिक गठन और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया जैसे जैसे जटिल से जटिलतर होती जायेगी वैसे–वैसे मात्र प्रतिबिम्ब के रूप में साहित्य का विश्लेषण अधिकाधिक कठिन होता जायेगा।

'साहित्य के समाजशास्त्र' के प्रति दूसरा दृष्टिकोण सामाजिक स्थिति पर, रचना के बजाय उत्पादन पक्ष पर अधिक बल देता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार विचार का केन्द्र सहित्यिक पाठ के स्थान पर संरक्षण और उत्पादन की लागत हो जाती है। अतः मध्ययुगीन दरबारों और परवर्ती अभिजात वर्ग तक आश्रय–दाता के साथ लेखकों के सम्बन्धों की प्रकृति की खोज आलोचनात्मक निष्कर्षों को प्रभावित करती है। यही सरक्षण तंत्र सस्ते प्रकाशन और व्यावसायिक खपत वाले बाजारों के उदय के कारण प्रकाशकों और पुस्तक विक्रेताओं के हाथ आ जाता है। दूसरी ओर, पूँजीवादी समाज–व्यवस्था में एक विशिष्ट मध्यवर्गीय पाठक समुदाय का उदय लेखकीय निर्भरता की स्थिति को व्यावसायिकता में

बदलता दिखाई पड़ता है। इस दृष्टि से देखा जाय तो स्पष्ट होगा कि आधुनिक काल में कथा–साहित्य और उसमें भी कहानी की बहुतायत – एकदम आकस्मिक घटना नहीं है।

इस दृष्टि की मुख्य समस्या होती है कि वह साहित्यिक उत्पादन और खपत के नियामक तत्त्वों के पारस्परिक संबंधों के बीच किन्हीं विशिष्ट साहित्य रचनाओं के रूप और कथ्य को किस रूप में व्याख्यायित करे। निश्चय ही साहित्य के आकलन और मूल्यांकन के सन्दर्भ में उक्त दृष्टिकोण एक सीमा तक ही सहायक हो सकता है, किन्तु इसमें साथ ही यह खतरा भी बराबर बना रहता है कि साहित्य के आकलन–मूल्यांकन का यह प्रयास अन्ततः किन्हीं अन्तर्निहित तत्त्वों को सूत्रों में घटाने की स्थूल प्रक्रिया भर होकर न रह जाय। ऐसी स्थिति में आशंका इस बात की हो सकती है कि साहित्यिक रचना अपने चारों ओर के वातावरण का ही एक घटक बनकर न रह जाय।

साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की उपर्युक्त दो प्रमुख स्थापनाएँ एक दूसरे की पूरक हैं, किन्तु व्यवहार में प्रायः कभी एक दृष्टि का आश्रय लिया जाता है, कभी दूसरी का। ल्यूसिएँ गोल्डमान के अनुसार महान लेखकों के सन्दर्भ में विशुद्ध सामाजिक स्थितियों पर काबू पाकर उनका अतिक्रमण इस रूप में किया जाता है कि पाठ्य सामग्री में निहित अर्थ का संबंध बाजार में लेखक की स्थिति से नहीं रह जाता। इसके विपरीत जो लेखक सामाजिक – आर्थिक संदर्भ के दबाव से अपने आपको मुक्त करने में सफल नहीं होते, वे निश्चित रूप से दूसरे दर्जे के लेखक होते हैं। ऐसी रचनाओं का महत्त्व केवल सामाजिक और तात्कालिक होता है, क्योंकि सामाजिक स्थितियाँ उनकी विषय–वस्तु और संरचना पर हावी हो जाती हैं। यह अलग बात है कि गोल्डमान की उपर्युक्त स्थापना पर्याप्त विवादास्पद रही है।

उक्त दोनों दृष्टियों के अतिरिक्त साहित्य के समाजशास्त्र की एक अन्य दृष्टि भी रही है जो उन विधियों की खोज करती है जिनके माध्यम से किसी विशेष ऐतिहासिक क्षण में विशेष समाज द्वारा किसी साहित्यिक रचना को वास्तविक रूप में स्वीकार किया जाता है। यह दृष्टि पाठक और उसके समाज पर केन्द्रित होती है।

लॉवेन्थेल ने कहा है कि किसी भी व्यावहारिक समाज शास्त्र का मुख्य उद्देश्य अनिवार्यतः उस अर्थ के मर्म की पहचान होनी चाहिए जो विभिन्न साहित्यिक रचनाओं के केन्द्र में विद्यमान रहता है। उन्हीं के शब्दों मे "यह साहित्य के समाजशास्त्र की जिम्मेदारी है कि वह लेखक के काल्पनिक पात्रों की स्थितियों का सम्बन्ध उस ऐतिहासिक वातावरण से जोड़े जिससे वे लिये गये है। उसे विषयों और शैलीगत साधनों के वैयक्तिक समीकरणों को सामजिक समीकरण में रूपान्तरित करना पड़ता है।

जैसा कि कहा जा चुका है कि समाजशास्त्र अनिवार्य रूप से समाज में स्थित मनुष्य का वैज्ञानिक और वस्तुगत अध्ययन करता है। वह इस प्रश्न का उत्तर खोजता है कि समाज का अस्तित्व कैसे संभव है, उसकी कार्यपद्धति क्या है, वह क्यों बना रहता है? सामाजिक संस्थाएँ जिनमें धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक और पारिवारिक–सभी संस्थाएँ सम्मिलित हैं, संघटित होकर समाज के ढाँचे का निर्माण करती हैं। समाजशास्त्र की भांति साहित्य का मुख्य सरोकार होता है – मनुष्य का सामाजिक जगत, उस जगत के प्रति उसकी अनुकूलता और उसे बदलने की उसकी इच्छा। उदाहरणार्थ उपन्यास औद्योगिक समाज की प्रमुख साहित्यिक विधा है। अतः उसमें परिवार, राजनीति तथा शासन के साथ मनुष्य

के संबंधों के सामाजिक जगत के पुनः सृजन का ईमानदार प्रयास दिखाई पड़ता है। उसमें परिवार एवं अन्य संस्थाओं के भीतर उसकी भूमिका के साथ विभिन्न समुदायों और सामाजिक वर्गों के बीच संघर्ष और तनाव का चित्रण भी किया जाता है। विशुद्ध दस्तावेज के अर्थ में उपन्यास का वास्ता काफी हद तक उन्हीं सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचनाओं से पड़ता है जिनसे समाजशास्त्र का वास्ता रहता है, किन्तु उपन्यास की उपलब्धि इतने भर से अधिक होती है। कलाकृत्ति के रूप में साहित्य वर्णन या वस्तुगत–वैज्ञानिक विश्लेषण का अतिक्रमण करता है। वह सामाजिक जीवन की सतह में गहरे प्रवेश करके उन स्थितियों का उद्घाटन करता है जिनमें स्त्री–पुरूष समाज का अनुभव भाव के स्तर पर करते हैं।

9.5 साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वस्तुतः साहित्य के समाज शास्त्र की दिशा में कार्य करने वाले विद्वानों मे अनेक नाम उल्लेखनीय हैं – जैसे तने, लियो लावेंथल, जॉर्ज लूकाच, गोल्ड मान, रेमंड विलियम्स, ऐलन स्विंगवुड, टेरी ईगलटन, जॉन रदरफोर्ड आदि। साहित्य के समाज शास्त्र के सन्दर्भ में उल्लेखनीय यह है कि इसका विवेचन प्रमुखतः उपन्यास साहित्य को केन्द्र में रखकर किया गया। गोल्डमान की प्रसिद्ध पुस्तक 'दि हिडन गॉड' सत्रहवी सदी के फ्रांसीसी नाटककार रेसिन और दार्शनिक 'पास्कता' को केन्द्र में रखकर लिखी गई थी, पर उनकी पुस्तक 'उपन्यास के समाज शास्त्र की एक दिशा' पूँजीवाद के साथ उपन्यास के विकास को संबंद्ध करके देखती है जिसके वे कुछ प्रमुख चरण मानते हैं। इस संबंध में जॉर्ज लुकाच (1885–1971) और ल्यूसिएँ गोल्डमान में वैचारिक समानताओं की तलाश का प्रयत्न भी विद्वानों ने किया है, विशेषतया विश्व–दृष्टिकोण को लेकर लुकाच की पुस्तक 'उपन्यास के सिद्धान्त' उनकी आरंभिक कृतियों में है जहाँ वे समग्रता के लिए 'दांते' का स्मरण करते हैं। वे उपन्यास को प्राचीन महाकाव्य का स्थानापन्न मानते हैं और बाल्जाक तथा ताल्सतॉय को प्रस्तुत करते हैं। ल्यूसिएँ गोल्डमान की पुस्तक' टुवर्ड्स दि सोशियॉलॉजी ऑफ नॉवल' का अंग्रेजी संस्करण 1975 ई. में आया । उपन्यास का समाजशास्त्र विवेचित करते हुए उन्होंने उसे महाकाव्यात्मक विधा माना और कहा कि एक अधःपतित संसार में यह प्रामाणिक मूल्यों की खोज का प्रयत्न भी है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपन्यास को केन्द्र में रखकर साहित्य का समाजशास्त्र गढते हुए लेखक कविता के दबाव से पूर्ण रूप से मुक्त नहीं हैं। हेगेल, मार्क्स आदि में भी इसे देखा जा सकता है। हिन्दी में भी टिप्पणी की गई थी कि कविता के सिद्धान्त नये कथा साहित्य पर आरोपित किये गये थे।

प्रश्न उठाया गया है कि क्या साहित्य का समाजशास्त्र केवल गद्य, विशेषतया उपन्यास तक सीमित किया जा सकता है? संभवतः नहीं। डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने गोल्डमान की स्थापनाओं पर विचार करते हुए 'गोदान' के साथ 'कामायनी' और 'राम की शक्ति पूजा' को भी सम्मिलित किया है। उनकी मान्यता है कि विषय और अन्तर्वस्तु के स्तर पर तीनों अलग–अलग हैं, लेकिन तीनों मे विश्व दृष्टि के स्तर पर चेतना की संरचना में समानता दिखाई पड़ती है। तीनों में पराजय और निराशा की प्रधानता है। यद्यपि 'राम की शक्ति पूजा' के अन्त में आशा की एक किरण है, लेकिन पूरी रचना में व्याप्त अंधकार और निराशा के समक्ष वह पर्याप्त–महत्त्वपूर्ण नहीं लगती। तीनों में संघर्ष, पराजय और निराशा के माध्यम से जो विश्व–दृष्टि उभरती है, वही पाठकों को प्रभावित करती है। वस्तुतः साहित्य के समाजशास्त्र के मूल में कथा–साहित्य ही है। कविता के समाजशास्त्रीय अध्ययन

अपेक्षाकृत कम ही हुए हैं क्योंकि कविता की संश्लिष्ट और सूक्ष्म प्रक्रिया में समाजशास्त्र की पहचान और भी कठिन हो जाती है।

9.6 मध्यकालीन समाज तथा साहित्य का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

यह सही है कि समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रणाली आधुनिक है और आधुनिक साहित्यिक के निर्माण की प्रक्रिया के साथ ही वह अस्तित्व में भी आयी, किन्तु अब इस अध्ययन प्रणाली का उपयोग मध्यकालीन साहित्य, समाज और संस्कृति के लिए भी किया जाने लगा है। अनेक इतिहासकारों और साहित्यकारों ने मध्यकालीन समाज का अपने–अपने दृष्टिकोणों के तहत अध्ययन किया है। मध्यकाल में इस्लाम का आगमन और भारतीय समाज पर उसके प्रभावों की व्यापक समीक्षा की गयी है। जिसे हिन्दू समाज कहा जाने लगा था, वह प्रायः एक से अधिक देवताओं का पूजक था, बहुदेववादी था। जैन–बौद्ध दर्शन में ईश्वर–आत्मा में संशय के बावजूद हिन्दू आस्तिकता प्रबल थी। कई जातियों – उपजातियों में बँटकर भी वह बहुदेववाद के सहारे जुड़ा था। इस्लाम पैगम्बर को ईश्वर के दूत के रूप में स्वीकार करता है और 'एक ही खुदा के बन्दे' कहकर अपने अनुयायियों को एकजुट रखने का प्रयास करता है। यद्यपि विद्वानों ने इसे रेखांकित किया है कि प्राचीन भारतीय जाति–उपजातिवादी – ढाँचे ने इस्लाम को भी बिरादरियों में बाँटने का प्रयत्न किया। सबसे अधिक टकराहट मूर्तिपूजा को लेकर थी। इस्लाम में इसकी स्वीकृति नहीं थी। इस प्रकार दो विपरीत दृष्टियों की टकराहट आरंभिक मध्यकाल में देखने को मिलती है, किन्तु उल्लेखनीय है कि भारतीय इस्लाम ने अपना मौलिक स्वरूप ग्रहण किया। आरंभिक अलगाव धीरे–धीरे टूटता है और अकबर जैसे उदार शासन के समय में सांस्कृतिक संवाद पूर्णता तक पहुँचता है।

लम्बे अरसे तक भारत को गाँवों का देश कहा गया है। मध्यकाल में ग्राम देश की मुख्यधारा से अछूते थे और स्वयं संपूर्ण इकाई होने से नगर से उनका सम्पर्क कम था। कृषि व्यवस्था पर आधारित ग्राम–समाज के खाली समय में कुटीर उद्योग हस्तशिल्प का विकास संभव था, बशर्ते गाँव की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ उन्हें बाहर का नगर – समाज भी उपभोक्ता के रूप में प्राप्त हो। ग्राम समाज की दैनिक आवश्यकतओं की पूर्ति के लिए कई सहायक व्यवसाय थे : लुहार, बढई, बुनकर, चर्मकार, कुम्हार, नाई, धोबी, पुरोहित आदि। मुगल काल में जब नगर समाज के उपभोक्ता समाज में वृद्धि हुई तो बिचौलियों का व्यापारी वर्ग भी बढ़ा। ग्राम समाज अपनी सामग्री बेचने के लिये विवश या और अनाज इस सन्दर्भ में विनियम मुद्रा का कार्य करता था। बिचौलिया वर्ग सस्ते मूल्य पर सामग्री खरीदकर, कहीं अधिक दाम पर उसे नगरों मे बेचता था। मध्यकाल के इस आर्थिक पक्ष का अध्ययन करने वालों में मोर लैण्ड और इरफान हबीब जैसे इतिहासकारों के नाम अग्रणी है।

9.7 मध्यकालीन संस्कृति के विविध रूप

मध्यकालीन समाज में आरंभिक टकराव के बाद सांस्कृतिक संवाद की जो प्रक्रिया आरंभ हुई, इतिहाकारों ने उसका भी अध्ययन किया है। डॉ. ताराचन्द के अतिरिक्त अन्य हिन्दी के विद्वानों ने भी इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी के आरंभिक प्रयत्नों के अतिरिक्त इस दिशा में डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. नामवरसिंह तथा डॉ. प्रेमशंकर जैसे विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया है।

भारत में संस्कृत, अरबी तथा फारसी राजभाषाओं के रूप में समृद्ध रही हैं और दरबार तथा विद्वत समाज में इन्हें स्वीकृति भी मिली, किन्तु भक्ति आन्दोलन ने जन– भाषाओं को प्रतिष्ठा दिलायी – इस तथ्य को विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रतिपादित किया है। विद्वानों ने यह लक्षित किया है कि भक्ति काव्य में सृजनशीलता के नये क्षितिज खुले। अभिजात वर्ग का वर्चस्व टूटा और सामान्यजन की संवेदना को रचना में अभिव्यक्ति प्राप्त हुई। अवधी, ब्रज भाषाओं में विपुल हिन्दी रचनाएँ प्रस्तुत हुई। इस संपूर्ण महादेश में भारतीय भाषाओं की सक्रियता मध्यकाल का उल्लेखनीय तथ्य है।

स्थापत्य तथा वास्तुकला में विभिन्न संस्कृतियों का संयोजन प्रमाणित करता है कि प्रमुख जातियों के संवाद की प्रक्रिया को गति मिल रही थी। संगीत, चित्रकला को कट्टरपंथी स्वीकार करने के लिए तैयार न थे और इन्हें इस्लाम के विरोध में मानते थे। हुमायूँ फारसी चित्रकला का प्रशंसक था, जिसे अकबर–जहाँगीर के समय में विकास मिला। अबुल फजल ने 'आइने अकबरी' में चित्रकला को 'तस्वीर की कला' कहकर संबोधित करते हुए कई चित्रकारों, गायकों का उल्लेख किया हे। जहाँगीर के समय में मुगल चित्रकला अपनी पूर्णता पर पहुँची और वह स्वयं भी उसका पारखी था। संगीत की नई राग– रागिनियाँ विकसित की गईं और अकबर के समय में तानसेन जैसे सिद्ध गायक हुए। इस प्रकार भारतीय मध्यकाल के कला जगत में कई संस्कृतियों का मिलन देखा जा सकता है। मुगल चित्रकला का स्वतंत्र व्यक्तित्व निर्मित हुआ जिसे मुगल अथवा शाही कलम कहा गया। मध्यकालीन भारतीय समाज के निर्माण में शासकों की रुचि और सौन्दर्यबोध की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। किले, मस्जिदें और भव्य महल – जिन्हें 'ग्रेन्ड स्टाइल' से अभिहित किया गया प्रजा पर अपने रुतबे को व्यक्त करते है। शाहजहाँ तक आते–आते कला सौन्दर्याभिरुचि से अत्यन्त सम्पन्न हुई, जिसका एक उदाहरण "ताजमहल" है जिसे 'संगमरमरी काव्य' कहा गया। अनेक कलाओं के मिश्रण से कला में वैविध्य आया और उत्कर्ष हुआ। अकबर ने फतेहपुर सीकरी नाम से नई नगरी बनाने का प्रयत्न किया जिसे वह अपने उदारपंथ सुलहकुल अथवा दीन–ए–इलाही के केन्द्र के रूप में विकसित करना चाहता था। कला में विभिन्न प्रकार के सम्मिश्रण, संवाद और संयोजन का बोध कराते हैं जिससे मध्यकाल की विकसित होती सामाजिक संस्कृति का परिचय मिलता है।

बदलते समय–संदर्भ में मध्यकाल की धार्मिक दृष्टि में आंशिक परिवर्तन स्वाभाविक था। आरंभ में विजेताओं का गर्व था, जिसे अनुदारता, धर्म परिवर्तन आदि में देखा जा सकता है। दूसरी ओर विजित जाति का पराजय भाव था, जिससे वह भीतर –भीतर और सिमटती – सिकुडती चली गई। पर सह–अस्तित्व के लिए संवाद एक अनिवार्य प्रक्रिया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की मान्यता है कि यदि भारत में इस्लाम न भी आया होता तो भी भक्ति आन्दोलन का उदय होता, जिसे वे भारतीय चिन्तन का स्वाभाविक विकास मानते हैं, किन्तु इसे स्वीकार करना ही होगा कि कई जातियों के पारस्परिक संवाद और विचार–विनियम से एक संयोजित चिन्तन भूमि तैयार हुई जिसे विद्वानों ने हिन्दुस्तानी संस्कृति कहकर पुकारा है। कुछ लोगों ने इसे राष्ट्रीय संस्कृति भी कहा है। इस मेल जोल का प्रभाव भारतीय चिन्तन और समग्र रचनाशीलता पर देखा जा सकता है। वस्तुतः यह एक नये समाज के निर्माण की प्रक्रिया है जहाँ दूरियों और दीवारों को टूटते देखा जा सकता है और संवाद की शुरुआत देखी जा सकती है। दोनों जातियों के संवाद से मध्यकालीन चिन्तन को एक नई दिशा प्राप्त होती है, इसमें सन्देह नहीं।

सूफी इसका एक पक्ष प्रस्तुत करते है। धार्मिक सहिष्णुता और उदारता सांस्कृतिक संवाद की उपज हैं और सूफी संत इसका साक्ष्य हैं जिन्होंने हिन्दू–मुस्लिम ऐक्य को अग्रसर किया। अकबर इस दिशा में सबसे सजग इस्लामी शासक है। उसने साम्राज्य विस्तार के अनन्तर उसके सांस्कृतिक एकीकरण का स्वप्न देखा। होली–दीवाली, ईद–मुहर्रम, शबे–रात आदि पर लोगों का मिलना–जुलना जातियों की दूरी का कम होना व्यक्त करता है। इस दिशा में मुख्य रूप से अकबर के दीन–ए–इलाही का उल्लेख किया जाता है, जिस पर सूफी उदारता की छाया भी है। अकबर ने अपने साम्राज्य को चारों दिशाओं में फैलाने के साथ, धार्मिक उदारता की दिशा में भी सोचा। संक्षेप में यह कि मध्यकालीन भारतीय समाज में उदारता की जो धारा प्रवाहित हुई, वह रेखांकित करने योग्य है और इससे चिन्तन, साहित्य और संपूर्ण कला जगत में नई संभावनाओं का उदय हुआ।

9.8 मध्यकालीन काव्य तथा साहित्य का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

भक्तिकाव्य में मध्यकालीन चिन्तन और यथार्थ जगत के चित्र जगह–जगह मिलेंगे। हालाँकि काव्य को किसी दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में देखना युक्तिसंगत नहीं होगा, लेकिन वह अपने युग और समाज का एक प्रामाणिक साक्ष्य तो होता ही है। तुलसी में अकबर कालीन दुर्भिक्षों का साक्ष्य मिलता है 'कलिबारदि बार दुकाल परै, बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै'। जातिव्यवस्था तथा धार्मिक संकीर्णता के बारे में भी समाज के एक वर्ग की सोच का पता कबीर जैसे संत कवि के वक्तव्यों से उजागर हो जाता है। जैसे –

''हिन्दू कहत हैं राम हमारा मुस्लमान रहमाना/आपस में दौउ लड़े मरत हैं मरम न कोउ जाना।''

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते है कि कबीर दास ने बाह्याचारमूलक धर्म की जो आलोचना की है, उसकी एक सुदीर्घ परंपरा थी इसी परंपरा से उन्होंने अपने विचार स्थिर किये थे।

9.8.1 कबीर

हालाँकि कबीर की कविता अनेक दृष्टियों से कठिनाई उपस्थित करती रही है। जीवन के अतिरिक्त उनकी रचनाओं की प्रामणिकता को लेकर भी विद्वान एकमत नहीं हैं। ''कबीर बीजक'' को मूल ग्रंथ के रूप में स्वीकार किया जाता है, किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि कबीर अपने दो टूक व्यक्तित्व से इतने लोकप्रिय हुए कि मौखिक परंपरा बढ़ती रही और भक्तजन उसमें अपनी ओर से भी जोड़ते–घटाते रहे। गुरू नानक के 'श्री गुरू ग्रंथ साहिब' में भी कबीर के दोहे संकलित हैं। श्याम सुन्दर दास, हजारी प्रसाद द्विवेदी रामकुमार वर्मा, पारसनाथ तिवारी, शुकदेव सिंह से लेकर जयदेव सिंह, वासुदेव सिंह तक पाठ निर्धारण के प्रयत्न होते रहे हैं। इस आधार पर कबीर के व्यक्तित्व के कई आयाम उभरते हैं। कबीर के अंधभक्तों ने उन्हें अरसे तक केवल धार्मिक सम्प्रदायगत दृष्टि से देखा, दूसरे वर्ग ने उन्हें समाज–सुधारक के रूप में स्थापित किया। इसमें दो राय नहीं कि कबीर सामाजिक विसंगतियों पर तीखा व्यंग करते हैं–

'संतो, राह दुनो हम दीठा, हिन्दू–तुरुक छटा नहीं मानै, स्वाद सबन्हि को मीठा।'

अथवा–

हिन्दू तुरूक कहाँ ते आए। किन यह राह चलाई?

काहे को कीजै पांडे छोति विचारा, छोतहि ते उपजा संसारा।'

उल्लेखनीय है कि कबीर के समाज–चिन्तन में कोई राजनीतिक समाधान नहीं है कि ध र्म निरपेक्षता का कोई नारा लगाया जाय। वे एक सजग समाजशास्त्री की तरह प्रश्न की गहराई में उतरते हैं और स्थिति का विवेचन करते हैं। ध्यान देना होगा कि कबीर का आक्रोश उन कर्मकाण्डी पुरोहिती शक्तियों पर है, जो धर्म का नियमन करना चाहती हैं। मुल्ला–पंडित दोनों समान दोषी हैं और जब तक समाज पर इनका नियंत्रण है, स्थिति में बदलाव कठिन है, क्योंकि वे सांस्कृतिक सौमनस्य में बाधा हैं। इसलिए वे समाज में व्याप्त कुरीतियों पर आक्रमण करते हैं, क्योंकि समाज में वर्ग भेद के साथ वर्ण भेद भी है। कबीर के अनेक रूपकों के विखंडन से तत्कालीन समाज की बहुविध छवि की पुनर्रचना की जा सकती है उनका एक पद है–

'अब न बसूं इहि गाऊँ गुसाई, तेरे ने वगी खरे सयाने हो राम'।

मुखिया, पटवारी, बलाही (लगान वसूलने वाला) दीवान सबकी भूमिका इस पद में दी गई है और किसान की दुरावस्था का प्रामाणिक चित्र खींचा गया है। हालाँकि यहाँ यह भी बलपूर्वक रेखांकित किया जाना चाहिए कि कबीर अपने समय का केवल तटस्थ चित्रण ही नहीं करते, बल्कि उससे टकराते भी हैं। वे श्रेष्ठतर मानव मूल्यों के लिए व्यापक रूप से प्रतिबद्ध हैं । मध्यकाल में समाज पर राजतंत्र तथा उसे पोषित करते हुए पण्डित–पुरोहित वर्ग का प्राधान्य है और सबने समान्य जन को गुमराह किया है।

वस्तुतः कबीर विकल्प के स्वप्न दृष्टा हैं और इसी बिन्दु पर उनकी सामाजिक दृष्टि की सजगता दिखाई पड़ती है। समय का विकल्प है– जागरण और निरन्तर जागरण, जिसकी कई ध्वनियाँ है। कबीर जानते हैं कि यह मार्ग सरल न होकर अत्यन्त कठिन है, क्योंकि साधना पंथ है कथनी करनी के द्वैत को पाटना होगा। कबीर के अनेक ऐसे वक्तव्यों को विद्वानों ने नोट किया है जिसमें कबीर की यह समाज चिन्ता व्यक्त हुई है।

कबीर सामाजिक रूप से एक चिन्ताकुल कवि है। उन्हें विसंगतियाँ उद्वेलित करती हैं। समाज के दो दृश्य है – एक सम्पन्न और निश्चिन्त तथा दूसरा विषाद में डूबा हुआ। उनका एक बहुप्रसिद्ध दोहा इस विसंगति को बड़ी मार्मिक दृष्टि से व्यक्त करता है –

''सुखिया सब संसार है, खावै औ सोवै, दुखिया दास कबीर है जागै औ रोवै।''

विद्वानों का विचार है कि कबीर की यौगिक शब्दावली से भी उनकी समाजिक दृष्टि को समझा जा सकता है। उनका यौगिक शब्द भण्डार विशाल है जिसमें पारिभाषिक शब्द हैं – कुंडलिनी, मूलाधार, पदम, ब्रह्मरध्रं, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना आदि जो सिद्ध नाथ साहित्य में भी प्रयुक्त हुए हैं। कबीर ने अपने मूल आशय को स्पष्ट करने के लिए शून्य निरंजन, अनहद नाद अवधूत, ब्रह्मज्योति, सुरति–निरति, ब्रह्मांड आदि कई शब्दों का प्रयोग किया है। इन्हें सार्थक अभिव्यक्ति देने के लिए वे पूरा प्रतीक–संसार गढ़ते हैं– धरती, आकाश, नदी, अमृत समुद्र, सूर्य, चन्द्रमा आदि। विद्वानों के लिए यह आज भी एक बौद्धिक समस्या बनी हुई है कि कबीर के व्यक्तित्व की विभिन्न दिशाओं और आयामों के बीच, विशेष रूप से सामाजिक चेतना और अध्यात्मिक चेतना के बीच सामंजस्य कैसे स्थापित किया जाय।

9.8.2 जायसी

जायसी के काव्य में मध्यकालीन समाज उस रूप में चित्रित नहीं हुआ है जिस रूप में कबीर और तुलसी के काव्य में, किन्तु फिर भी जायसी अपने को लोकजीवन से जोड़ते हैं और उसकी अनेक प्रामाणिक छवियाँ प्रस्तुत करते हैं। जायसी की संवेदना अपने आस–पास के लोक जीवन में रमती है और वहाँ वे वर्णनात्मक से आगे जाकर रागात्मक होते हैं। वे अवध जनपद के कवि हैं और ग्राम जीवन में रचे बसे हैं। 'पद्मावत' में वे इसका बड़ा प्रामाणिक ढंग से उपयोग करते हैं। अनेक शोधार्थियों ने उनमें अवध के लोक जीवन का संधान किया है। जाति, व्यवसाय, कृषि, उद्योग, संस्कार, लोकप्रचलित विश्वास, आचार–विचार, उत्सव आदि के विषय में जायसी के काव्य में प्रभूत सामग्री मिलती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि काव्य में समाज यथातथ्य रूप में चित्रित नहीं होता, तथापि उसके विषय में विभिन्न शोध प्रविधियों के माध्यम से सूचनाएँ एकत्र की जा सकती हैं और की भी गयी हैं। जायसी ग्रामीण जीवन को भली–भांति जानते हैं। पट्ऋतु वर्णन खंड केवल काव्य परंपरा अथवा काव्य रूढ़ि का निर्वाह मात्र नहीं है, वस्तुतः जायसी वहाँ ग्राम्य जीवन के परिदृश्य को उभारते हैं। पार्वती–महेश खण्ड को लोकप्रचलित विश्वास के रूप में देखना उचित होगा। परिवार भारतीय समाज का केन्द्रीय घटक रहा है और "पद्मावत" की कथा में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मध यकाल में इसके रूप बदले, बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन हुआ, किन्तु जायसी नारी का पक्ष लेते हैं। इस संदर्भ में विचार करने पर कवि के सामाजिक दृष्टिकोण के विभिन्न पहलू उभरते हैं। नारियाँ कई रूपों में आती हैं – पद्मावती की सखियों से लेकर राजा की दासियों तक। पद्मावती और नागमती दोनों की उपस्थिति के बावजूद जायसी दाम्पत्य जीवन पर बहुत बल देते हैं, किन्तु इसके पूर्व की स्थिति का वर्णन करते हुए वे नारी की विवशता का संकेत भी करते हैं और कवि की सहानुभूति नारी के साथ है। जायसी भारतीय समाज में नारी की परवश स्थिति का बोध कराते हैं– विवाह के पूर्व का चिंता रहित आजाद जीवन और उसके बाद की परवशता।

9.8.3 सूर

विद्वानों ने सूर के विभिन्न प्रसंगों जैसे माखन–प्रसंग, गो–दोहन, गो–चारण आदि में कृषक–चरवाहा संस्कृति की छवि देखी है। वे मानते हैं कि सूर के काव्य में ब्रजमण्डल अपनी प्राकृतिक सुषमा और संस्कारों के साथ उपस्थित है जिससे इस आरोप का खंडन होता है कि सूर में जीवन यथार्थ के चित्र नहीं मिलते । वस्तुतः यथार्थ के अनेक परिदृश्य होते हैं – एक यदि कबीर और तुलसी में उद्घाटित हुआ है तो दूसरा जायसी और सूर में। वस्तुतः सूर में ब्रज की कृषक–चरवाहा संस्कृति अपनी लोक चेतना के साथ उजागर होती है। इसी बिन्दु पर सूर की कविता का समाजशास्त्र निर्मित होता है। सूर ने कटु जीवन–यथार्थ के स्थान पर उस लोकोत्सव का राग–रंग चुना जो अभावों में भी जीवित रहता है और जहाँ अमिश्रित संवदेन व्यक्त होते हैं। वृन्दावन की सूरकाव्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका है और सूरदास यहाँ समाजीकृत होते कृष्ण के व्यक्तित्व के माध्यम से ग्वालजन के चरवाहा जीवन के विविध चित्र बनाते हैं जिससे लोक संस्कृति के दृश्य उभरते हैं। कई प्रकार की गायों – धौरी, धूमरी, राती, रौंही, पियरी, भोरी, गौरी गैनी, खैरी, कजरी, दुलही, भौंरी, भूरी आदि का वर्णन सूरदास ने अपनी रचनाओं में किया है। प्रख्यात विद्वान डॉ. रमेश कुन्तल मेध का मत है कि सूर ने अनेक प्रसंगों में सामंतों का विलासी संसार भी कृष्णमय करके चित्रित किया है तथापि मथुरा के पवित्र सेक्टर में कीर्तन करने वाले

सूरदास का असली संसार ग्रामीणों का सहज दैनिक संसार था।''

9.8.4 तुलसी

विद्वानों के मत में मध्यकालीन समाज की जितनी व्यापक और वास्तविक पहचान तुलसी के काव्य में मिलती है, उतनी अन्य किसी के काव्य में नहीं । वे वर्णनात्मकता और विवरणात्मकता का सहारा तो नहीं लेते, किन्तु उन्होंने इस संदर्भ में कलिकाल के बिम्ब का सार्थक उपयोग किया है। कवि के रूप में वे अपने गहरे संवेदन के साथ उपस्थित होते हैं और व्यापक चिन्ताओं से परिचालित हैं। यहाँ सामंत समाज है, जहाँ शासक वर्ग कर्त्तव्यच्युत है, अपने सामाजिक दायित्व का पालन नहीं करता। तुलसी राज काज को कुपथ्य के रूप में देखते हैं और कहते हैं कि सब भोग विलास में डूबे हैं। तुलसी ने अपने समय के समाज की आर्थिक दुरावस्था, गरीबी और भुखमरी का मार्मिक चित्रण किया है। मध्यकाल की जो सामाजिक–आर्थिक स्थितियाँ थी, वे सामान्यजन के लिये विषम थी और तुलसी ने एक सजग दृष्टा के रूप में उन्हें निकट से जाना ही नहीं, भोगा भी था। अनेक विद्वानों ने इसे रेखांकित किया है। ''कवितावली'' में तुलसी कहते हैं– 'पेट की आग के कारण मैंने जाति, सुजाति, कुजाति के टुकडे माँगकर खाये हैं।' 'बारे तै ललात – बिललात द्वार–द्वार दीन' (कवितावली) 'असन–बसन हीन, विषम विषादलीन' (हनुमान बाहुक) आदि में सामाजिक पीड़ा भी सन्निहित है। इसे ध्यान में रखकर ही तुलसी के सामाजिक बोध को समझा जा सकता है।

9.9 निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भक्ति काव्य सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टि से परिचालित था। वह व्यापक सामाजिक अनुभवों पर आधारित था। उसमें मध्यकालीन समाज के बड़े विश्वसनीय चित्र उभरते हैं।

सामंती समाज के दबाव को झेलती रचनाशीलता उसे गहरे स्तर पर महसूस करती है और विवरण वृत्तान्तों से आगे जाकर नैतिक चिन्ताओं से जूझती है। भक्तिकालीन कवि महज कवि नहीं थे, वे सामाजिक–सांस्कृतिक सदाशयता से परिचालित थे। उनकी रचनाशीलता के ऐतिहासिक–सामाजिक संदर्भ को उद्‌धाटित करने के लिए समाजशास्त्रीय शोध–प्रविधि की उपादेयता स्वतः प्रमाणित है।

9.10 सारांश

प्रस्तुत इकाई में साहित्य और समाज के अंतःसंबंधों को स्पष्ट करते हुए सामाजिक शोध–प्रविधि की उपादेयता और सार्थकता को प्रामाणिक ढंग से स्थापित किया गया है। साहित्य वस्तुतः सामाजिक मूल्यों, विश्वासों और विचारों को प्रतिबिम्बित करता है। साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन के क्रम प्रस्तुत इकाई में यह भी निर्देशित किया गया है कि साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन से सम्बद्ध आधुनिक साहित्य के अध्ययन के संदर्भ में ही उपादेय नहीं है, वह मध्यकालीन साहित्य के संदर्भ में भी उतना ही उपयोगी है।

9.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. सिंह बच्चन : साहित्य का समाज शास्त्र और रूपवाद, वाराणसी, 1984
2. मेहरोत्रा श्रीराम : साहित्य का समाजशास्त्र : मान्यता और स्थापना, वाराणसी, प्रकाशन वर्ष – 1970

3. गुप्ता विश्वंभर दयाल : साहित्य का समाज सिद्धान्त : अवधारणा सिद्धान्त एवं पद्धति, हाथरस, 1982

4. सिंह बच्चन : आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, दिल्ली, 1983

5. मिश्र शिवकुमार : साहित्य और सामाजिक सन्दर्भ, दिल्ली, 1977

6. गोविन्द रजनीश : साहित्य का सामाजिक यथार्थ, जयपुर, 1992

7. कश्मीरी लाल : साहित्य का समाज शास्त्रीय अध्ययन : कथा सन्दर्भ, दिल्ली, 1993

8. सिंह भगवती प्रसाद : साहित्य और संस्कृति : कुछ अन्तर्यात्राएँ, दिल्ली, 1980

9. उपेन्द्रनाथ अश्क : साहित्य और समाज, लखनऊ, 1973

10. गुप्त गणपति चन्द्र : साहित्य का वैज्ञानिक विवेचन, दिल्ली 1971

11. जैन निर्मला (सं.) : साहित्य का समाज शास्त्रीय चिन्तन, दिल्लीः 1986

12. प्रेमशंकर : भक्तिकाव्य का समाज दर्शन, दिल्ली, 2000

13. मुक्तिबोध रचनावली भाग–5 'सामाजिक विकास और साहित्य' तथा 'समाज और साहित्य' निबन्ध

9.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'समाजशास्त्र' पदबन्ध का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसके क्षेत्र–विस्तार को परिभाषित कीजिए।

2. साहित्य के सन्दर्भ में समाज शास्त्रीय अध्ययन के ऐतिहासिक विकास को स्पष्ट कीजिए ।

3. साहित्य के संदर्भ में समाजशास्त्रीय शोध–प्रविधि की उपयोगिता को प्रतिपादित कीजिए ।

4. हिन्दी में समाज शास्त्रीय अध्ययन की दशा और दिशा को स्पष्ट कीजिए ।

5. साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की सीमाओं का उल्लेख कीजिए।

6. भक्तिकाव्य के सन्दर्भ में समाजशास्त्रीय शोध प्रविधि की उपादेयता को स्थापित कीजिए।

7. छायावादी काव्य के सन्दर्भ में समाजशास्त्रीय अध्ययन की संभावनाओं को स्पष्ट कीजिए।

8. प्रेमचन्द के उपन्यासों के सन्दर्भ में समाजशास्त्रीय अध्ययन की सार्थकता को प्रमाणित कीजिए।

□

इकाई– 10 सांस्कृतिक शोध–प्रविधि

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 सांस्कृतिक शोध प्रविधि : परिभाषा, अवधारणा, भेद और प्रवृत्तियाँ

10.2.1 पृष्ठभूमि

10.2.2 सांस्कृतिक शोध–प्रविधि क्या है?

10.2.3 अर्थ, परिभाषा और स्वरूप

10.2.4 अवधारणा

10.2.5 भेद

10.3 सारांश

10.4 शब्दावली

10.5 संदर्भ ग्रन्थ

10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप सांस्कृतिक शोध प्रविधि का अध्ययन करेंगे। इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- सांस्कृतिक शोध प्रविधि की पृष्ठभूमि के बारे में जान सकेंगे।
- सांस्कृतिक शोध प्रविधि की दृष्टि से किसी काल, कृति और युग का विश्लेषण कर सकेंगे।
- सांस्कृतिक शोध प्रविधि के महत्व को जान सकेंगे।
- इस दृष्टि से सांस्कृतिक महत्व और अवदान को रेखांकित कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

"शोध स्वरूप प्रविधि" के अन्तर्गत आप 'सांस्कृतिक शोध प्रविधि' का अध्ययन कर रहे है जिसके माध्यम से आप शोध की नई दिशा में प्रवेश कर रहे हैं। सांस्कृतिक शोध प्रविधि का सम्बन्ध शोध प्रविधि के क्षेत्र से है। सांस्कृतिक का क्षेत्र बहुत ही गहन और व्यापक है। हिन्दी शोध प्रविधि के क्षेत्र में सांस्कृतिक शोध प्रविधि या तो उपेक्षित रही है या इस दृष्टि को महत्व ही नहीं दिया गया है। इस कारण यह शोध प्रविधि काफी प्रभावित रही है। किसी भी विषय में शोध प्रविधि तभी समृद्ध और अग्रगामी होती है जब शोध में नई दृष्टियों, प्रविधियों का समावेश हो अन्यथा शोध अपने सीमित दायरे के कारण विकास नहीं कर सकता। इस इकाई में हम संस्कृति का अर्थ, स्वरूप और परिभाषा, अवधारणा, भेद तत्व, प्रवृत्तियों, चेतना, दृष्टि, विचारधारा आदि के माध्यम

से संस्कृति को व्याख्यायित करेंगे। एक तरफ किसी आंदोलन का कृति के माध्यम से किसी काल, युग चेतना में निहित सांस्कृतिक मूल्य, दृष्टि या चेतना का अध्ययन किया जा सकता, दूसरी तरफ सांस्कृतिक मूल्य, दृष्टि या चेतना के माध्यम से युग, काल, कृति या आंदोलन का अध्ययन किया जा सकता है।

सांस्कृतिक शोध प्रविधि को तभी विकसित और समृद्ध किया जा सकता है जब समाज के सन्दर्भ में संस्कृति के प्रश्नों पर गंभीरता से विचार करें। सांस्कृतिक शोध प्रविधि के माध्यम से शोध, अध्ययन, मूल्यांकन और विश्लेषण के कई सम्भावना पूर्ण क्षेत्रों की तलाश सम्भव है। इस तरह आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के साहित्य का सांस्कृतिक शोधपरक मूल्यांकन किया जा सकता है। प्रश्न यह उठता है कि शोध प्रविधि क्या है? शोध की एक तकनीक, एक तरीका है, वह सम्यता और संस्कृति की वाहक भाषा होती है। भाषा एक तरह की सांकेतिक व्यवस्था है। वह संकेत और संकेतित दोनों है। इसी तरह संस्कृति की भी अपना व्यवस्था है, उसके भाषिक संकेत और भेद होते हैं जिसके माध्यम से हम शोध या अध्ययन का एक स्वरूप निर्मित करते है और यह संस्कृति पूरी तरह हमारे सम्बन्ध, परिभाषा, व्याख्या और उसकी अवधारणात्मक समझ पर निर्भर करती है। यदि संस्कृति के सन्दर्भ में हमारी समझ स्पष्ट और विकसित है तो हम किसी कृति, साहित्यिक, कलात्मक, किसी समाजिक दृष्टि में अभिव्यक्त राजनीतिक व्यवस्था की सास्कृतिक परम्पराओं, व्यवस्थाओं की निरंतरता के सांस्कृतिक विकास और पिछड़ेपन का अध्ययन कर सकते हैं।

10.2 सांस्कृतिक शोध प्रविधि : परिभाषा, अवधारणा, भेद और प्रवृत्तियाँ

10.2.1 पृष्ठभूमि

सांस्कृतिक शोध प्रविधि संस्कृति सम्बन्धी ज्ञान या समझ पर आधारित है। यह जानना अत्यंत आवश्यक है कि संस्कृति की परिकल्पना आधुनिक है। आधुनिक युग से पहले हमारे जो आदर्श थे और साझा उपलब्धियाँ थीं, उन्हें न तो हम सांस्कृतिक आदर्श और न ही सांस्कृतिक उपलब्धि कहते थे। मनुष्य और समाज का विकास एक ओर जहाँ भौतिक परिस्थितियों से था, वहीं दूसरी ओर उसका सम्बन्ध धर्म और अध्यात्म से भी था। धर्म की एक व्यापक परिकल्पना थी जिससे अच्छाई, बुराई, आदर्श, नैतिकता, शिक्षा, और संस्कार सभी परिभाषित होते थे। धर्म की इस व्यापक परिकल्पना में व्यक्ति,समाज, इतिहास सभी व्याख्यायित होते थे। यह व्याख्या धर्म सापेक्ष और धर्म निरपेक्ष दोनों थी, पर धर्म की मूल भावना से ही ये सब अनुप्रणित होते थे। आधुनिक युग में संस्कृति के मुहावरे के पहले जिस सभ्यता की चर्चा अधिक होती थी उसकी जगह संस्कृति ने ले ली। पर संस्कृति का सम्बंध भी धर्म से था। बिना धार्मिक आध्यात्मिक चेतना और भावना के संस्कृति परिभाषित भी नहीं की जा सकती थी, पर समय, समाज और सांस्कृतिक सोच बदलता रहा। पर जैसा कि अज्ञेय का मानना है कि "संस्कृति मूलतः एक मूल्य–दृष्टि और उससे निर्दिष्ट होने वाले निर्माता प्रभावों का नाम है – उन सभी निर्माता प्रभावों का, जो समाज को, व्यक्ति को, परिवार को, सबके आपसी सम्बन्धों को, श्रम और सम्पत्ति के विभाजन और उपयोग को, प्राणिमात्र से ही नहीं, वस्तुमात्र से हमारे सम्बंधों को निरुपित और निर्धारित करते हैं। संस्कृतियाँ लगातार बदलती हैं, लेकिन संस्कृति और भौतिक परिस्थितियाँ भी लगातार बदलती हैं, लेकिन संस्कृति भौतिक परिस्थिति का परिणाम नहीं है क्योंकि वह अनिवार्यतः भौतिक जगत और जीव–जगत के साथ मानव जाति के सम्बन्ध पर आधारित है और वह सम्बन्ध ज्ञान के विकास और

संवेदना के विस्तार के साथ–साथ बदलता रहता है। संस्कृति उन सम्बन्धों का निरूपण करती है, निर्धारण भी करती है, मूल्यांकन भी करती है – उन्हीं सम्बन्धों की अभिव्यक्ति भी है अर्थात् वह एक साथ ही उनका परिणाम भी है और उनका आधार भी और इस कथन में कहीं कोई अंतर्विरोध नहीं है।'' संस्कृति की इस व्यापक व्याख्या से शोधार्थी यदि परिचित नहीं है, यदि इसका यह ज्ञान उसे नहीं है, तो सांस्कृतिक शोध के क्षेत्र में वह संस्कृति सम्बन्धी अध्ययन मूल्य–दृष्टियों, आधारों, प्रभावों, आयामों की सांस्कृतिक शोध प्रविधि के रूप में रूप उपयोगिता नहीं कर सकता।

10.2.2 सांस्कृतिक शोध प्रविधि क्या है

सांस्कृतिक शोध प्रविधि, शोध की एक कार्य पद्धति या प्रविधि है। जब हम सांस्कृतिक शोध प्रविधि के बारे में विचार करते है तो पाते हैं कि समाज में स्थायीत्व व्यक्ति या प्राणिमात्र के बीच विकसित संबंधों की व्यवस्था से ही नहीं होता, बल्कि मानव–सामाजिक व्यवस्था सांस्कृतिक आधारों और मूल्य–व्यवस्था से भी है। जिस तरह प्रत्येक समाज में मिथकीय कोड होते है, उसी तरह से हम सांस्कृतिक कोडों की व्याख्या और विश्लेषण करते हैं। इस तरह सांस्कृतिक शोध साहित्य के सन्दर्भ अनेक प्रकार के सांस्कृतिक प्रश्न पूछने के लिए विवश कर देते हैं। इस क्रम में ये प्रश्न हमें मनुष्य और समाज की आवृत्ति संरचना, भाषिक संवेदना, साहित्य और समाज का सांस्कृतिक आभारों की इस द्वन्द्वात्मक खोज और समझ तक पहुँचा देते हैं कि एक लेखक ने समाज में निहित संस्कृति को सांस्कृतिक कोड के माध्यम से किस तरह अभिव्यक्त किया है या लेखक ने किसी भी समाज के आदर्श के इस सांस्कृतिक कोड को कथात्मक–गैर कथात्मक आख्यानों, चरित्रों, परिस्थितियों, वस्तुओं एवं कार्यों चित्रण द्वारा अभिव्यक्त किया है। सांस्कृतिक शोध सांस्कृतिक कोड के यथार्थ का अध्ययन करता है और संस्कृति के देशज फ्रेमवर्क में उसका समाधान भी तलाशता है और संस्कृति से दन्तविहीन मानव समाज, राजनीति, इतिहास, दशा और दिशा भी तय करता है। इसलिए शोध के क्षेत्र में सांस्कृतिक शोध की महत्वपूर्ण भूमिका है।

10.2.3 अर्थ, परिभाषा और स्वरूप

जैसा कि बताया चुका है कि सांस्कृतिक शोध प्रविधि का संबंध संस्कृति सम्बन्धी अध्ययन से है, इस अध्ययन में संस्कृति संबंधी अवधारणा स्पष्ट रहनी चाहिए इसलिए यहाँ हम संस्कृति संबंधी अर्थ, परिभाषा और स्वरूप से आपको अवगत करा रहे हैं ताकि आप संस्कृति के रचनात्मक अर्थ, परिभाषा, स्वरूप और उसकी अवधारणा से परिचित हो सकें।

संस्कृति शब्द की उत्पत्ति 'संस्कृत' शब्द से हुई। 'संस्कृत' का अर्थ होता है 'परिष्कृत' इसलिए संस्कृति का संबंध ऐसे तत्वों से है जो व्यक्ति को परिष्कृत कर सकें। एक अन्य व्याख्या के अनुसार 'संस्कृति' शब्द 'संस्कार' से बना है और संस्कार का अर्थ है 'शुद्धि की क्रिया'। 'शुद्धि' का अर्थ पवित्रता से नहीं, सामाजिकता से है। इसका अर्थ है यह है कि व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी बनाने में जितने भी तत्वों का योगदान होता है, उन सभी तत्वों की व्यवस्था का नाम ही संस्कृति है। जन्म के समय से ही बच्चा न सामाजिक होता है और न समाज विरोधी, परन्तु उसमें सामाजिक बनने के कुछ गुण होते हैं। वह संस्कृति ही है जो उस प्राणी को सामाजिक प्राणी में बदलने का कार्य करती है। ('संस्कृति दर्शन' : डॉ. हिम्मत सिंह सिन्हा, पृष्ठ 3)

इसी तरह 'संस्कृति' शब्द का प्रयोग अनेक और भिन्न अर्थों में होता आया है जिनमें तीन मुख्य हैं। आमतौर पर शिक्षित समाज में 'संस्कृति' शब्द के प्रयोग से साहित्य, संगीत, नाटक, नृत्य,चित्र, स्थापत्य आदि कलाओं का सामूहिक रूप से बोध होता है। इस कला–समूह में मनुष्य समाज की वे गतिविधियाँ और क्रियाकलाप फलीभूत होते हैं जिनकी सार्थकता और महत्व उनकी उपयोगिता में ही नहीं, वह इस बात में भी है कि वे साथ– ही–साथ आनन्द के स्त्रोत भी है।'' (परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम, पूरनचन्द्र जोशी पृ.11) यह 'संस्कृति' शब्द की व्यापकता ही कही जाएगी कि आज वह अनेक व्याख्याओं से परिभाषित हो रही है। एक ओर नृविज्ञानी, समाजशास्त्री, पुरातत्व शास्त्री द्वारा प्रयुक्त व्याख्याएँ देखी जा सकती है, तो दूसरी ओर नैतिकतावादी, आदर्शवादी इतिहासकारों और भौतिकवादियों द्वारा दी गई व्याख्याएँ हैं। नैतिक, दृष्टिकोण से 'संस्कृति' की व्याख्या करते हुए लावेल ने लिखा है कि ''यह उस ज्ञान की रुचि से संबंधित है जिसको मानवता मूल्यवान समझती है, यह उन सिद्धांतों का निरूपण करती है जिनको समूह ने सत्य मान लिया है।

नृविज्ञान के क्षेत्र में 'संस्कृति' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है। प्रसिद्ध नृवैज्ञानिक मौलिनॉस्की के अनुसार ''मानव जाति की समस्त 'सामाजिक विरासत'' या मानव की समस्त संचित सृष्टि का ही नाम संस्कृति है। इस अर्थ में संस्कृति में शामिल है एक ओर वह स्थूल भौतिक जगत, जिसकी सृष्टि मानव ने अपने श्रम और उद्यम, कल्याण और कौशल, ज्ञान और विज्ञान द्वारा प्राकृतिक जगत में परिर्वतन लाकर और उसके ऊपर एक अनन्य विश्वास, भावना, रिवाज, भाषा, ज्ञान, कला, धर्म, जाटू–टोना आदि के वे सभी मूर्त –अमूर्त स्वरूप संस्कृति में शामिल हैं जिनसे मानव–सृजित भौतिक जगत महत्ता और सार्थकता पाता है, जिनके कारण ही मनुष्य पशु–योनि से ऊपर उठकर वास्तव में मानव कहलाने का अधिकारी बनता है और जिनके द्वारा मानव के प्रकृति के साथ और मानव मानव के बीच भिन्न–भिन्न प्रकार के सम्बन्धों की रचना और फलस्वरूप मानव समाज का संगठन और संचालन होता है।'' संस्कृति के सम्बन्ध में मौलिनॉस्की की इस व्याख्या से समाज वैज्ञानिक और सांस्कृतिक शोध विशेषज्ञ डॉ. पूरनचन्द्र जोशी असहमत है। उनका मानना है कि यह व्याख्या आदिम समाज के सन्दर्भ में ठीक है जहाँ उपयोगिता और सुन्दरता एक दूसरे से अभिन्न और एक दूसरे के पूरक हैं क्योंकि ऐसे मानव समाज का आन्तरिक विभेदीकरण, वर्गीकरण तथा मानव के क्रिया–कलापों का विशिष्टीकरण अभी तीव्र नहीं हुआ है। इसके विपरीत 'आदिम समाज' की तुलना में 'विकसित समाज' में उपयोगिता और सुन्दरता, (यूटीलीटी तथा ब्यूटी) श्रम (लेबर) तथा अवकाश (लेज़र) श्रमिक और सम्पत्तिशाली वर्ग में समाज का विभाजन तथा समाज के आर्थिक आधार और गैर–आर्थिक यानी सांस्कृतिक अधिरचना (सुपर स्ट्रक्चर) में विभेदीकरण तीव्र होता जाता है।

इस तरह किसी कृति में वर्णित समाज के अन्तरिम विभेदीकरण और वर्गीकरण का अध्ययन हम सांस्कृतिक शोध प्रविधि के माध्यम से कर सकते हैं। इस बिन्दु को हमेशा ध्यान में रखा जाना चाहिए कि सांस्कृतिक व्यवस्था आर्थिक व्यवस्था की तुलना में संस्कृति और संस्कृतकर्मी भी बाजारू माल की तरह खरीद–फरोख्त की वस्तु बनते चले जाते है, काफी महत्वपूर्ण है। इसीलिए एर्डोनो ने इसे संस्कृति उद्योग की संज्ञा दी। संस्कृति की इस व्याख्या परिभाषा को यदि उन्नीसवीं सदी के औद्योगिकीकरण और पूँजीवादी अर्थव्यस्था के संदर्भ में देखें तो इसने संस्कृति और अर्थव्यस्था के सन्दर्भ में

बुनियादी अंतर पैदा किया जिससे अर्थव्यवस्था को आधार और संस्कृति को अधिरचना में रूपांतरित होना पड़ा जिसे बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के युगान्तकारी बर्तनों ने उलट –पुलट दिया। इन्ही परिर्वतनों ने विज्ञान, तकनीक और सम्प्रेषण के माध्यमों द्वारा समाज के साथ संस्कृति के सम्बन्धों को पुनः व्याख्यायित किया।

समाजशास्त्रियों ने संस्कृति को भिन्न दृष्टि से देखते हुए यह माना कि यदि समाजशास्त्र के माध्यम से संस्कृति और सांस्कृतिक अध्ययन को समझना और जानना है तो इसके लिए आवश्यक है कि उसकी आधारभूत कोटियाँ सार्वभौमिक हो, एक जैसी हों तो सहयोग की संभावना साकार हो पाएगी। टाइलर का मानना है कि 'संस्कृति' वह इकाई है जिसमें ज्ञान, विज्ञान, कला, नैतिकता, कानून, रीति–रिवाज एवं समाज के रूप में मनुष्य द्वारा अर्जित अन्य सभी योग्यताएँ सम्मिलित हैं, पर इस व्याख्ख्या के माध्यम से संस्कृति का अध्ययन वैज्ञानिक और वस्तुपरक ढंग से करने में विश्वास करते हैं। क्रोवर के अनुसार 'जिस प्रकार वैज्ञानिक शिलाओं का अध्ययन करते हैं ऐसे ही नृतत्ववेत्ता मानवीय संस्कृति का। उनके लिए मनुष्य प्रकृतिगत में आत्मा अभिन्न है और संस्कृति की प्रेरणामात्र प्राकृतिक है।'' इस तरह क्रोवर के लिए मूल्य निर्मित है, पर उसका आधार प्राकृतिक मानवता है। इस मत से असहमत गोविन्दपाण्डे ने लिखा है कि 'यहाँ प्रकृति उपादान है। संस्कृति उसका एक निर्माण। संस्कृति इस निर्माण में आदर्श या मूल्य बोध से प्रारम्भ होती है जो प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्त होती है। जहाँ प्रकृति का जगत प्रत्यक्ष से निर्धारित अपरिवर्तनीय कार्य–कारण मात्र से संभावित जड़ वस्तुओं का विश्व है, वहीं सांस्कृतिक जगत अर्थ गवेषणा या आत्मबोध की गवेषणा के सनातन इतिहास की सांकेतिक अभिव्यक्तियों का विश्व है।' उनका मानना है कि जो संस्कृति एक विशिष्ट सामाजिक परिपेक्ष्य में प्रतीकों, अर्थों मूल्यों के रूप में कार्यशील हो और उसकी अभिव्यक्ति हो, उसे वैज्ञानिक नियमों में कैसे समझा जा सकता है। इसी तरह पुरातत्ववादी भी संस्कृति की वस्तुवैज्ञानिक व्याख्या करता है और भौतिक आधार पर इतिहासज्ञों के अनुसार संस्कृति का सम्बन्ध किसी समूह के जीवन की उन्नत उपलब्धियों से जोड़ता है। भूतकाल में मनुष्य ने भौतिक और अभौतिक क्षेत्र में जो उपलब्धियाँ अर्जित की थीं, वहीं उसकी संस्कृति है। दर्शन, धर्म, विज्ञान, कला, साहित्य, संगीत की उपलब्धियों के इतिहास को ही हम संस्कृति का इतिहास कहते हैं।' (संस्कृति दर्शन – प्रो. हिम्मत सिंह, पृ. 3) इस तरह हम देखते है कि संस्कृति संबंधी विभिन्न व्याख्याओं परिभाषाओं से जो सांस्कृतिक शोध का परिप्रेक्ष्य और उसका स्वरूप निर्मित होता दिखाई देता है, वह मनुष्य समाज, प्रकृति, इतिहास व कला का क्षेत्र है।

10.2.4 अवधारणा

सांस्कृतिक शोध प्रविधि अवधारणात्मक शोध प्रविधि है। इसलिए सांस्कृतिक शोध को पहले अवधारणात्मक स्तर पर समझना चाहिए। सांस्कृतिक शोध या अध्ययन की भूमिका और महत्व पर इसलिए ध्यान दिया जा रहा है कि विभिन्न अनुशासकों में सांस्कृतिक शोध या अध्ययन के क्षेत्र का विकास हुआ है जिसे साहित्य के साथ–साथ दर्शन, इतिहास, मानवशास्त्र, समाज शास्त्र, आदि अनुशासकों में देखा जा सकता है। इनमें इसका अध्ययन ही नहीं हुआ है, बल्कि इसके शास्त्र और सिद्धांत भी वहाँ निर्मित हो चुके है यानि सांस्कृतिक अध्ययन या शोध का अवधारणा के रूप में विकास हो चुका है। जैसे मानवशास्त्र के क्षेत्र में **क्रोबर का सिद्धांत, प्रकार्मवादी सिद्धांत, संविन्यासी (कंफिगगुरेनेशनल) सिद्धांत लयात्मक (थीमेटिक) सिद्धांत या सांस्कृतिकलय (थीम)**

समाजशास्त्र में सोरोकन का सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन का सिद्धांत, संवेदित (सेंसेट) संस्कृति, सांस्कृतिक पश्चता का सिद्धांत, आदि को देखा जा सकता है। हिन्दी में सांस्कृतिक शोध की दृष्टि से कार्य करने वाले शोधार्थियों को इन सांस्कृतिक सिद्धांतों से परिचित होना चाहिए, तभी वे हिन्दी में हो रहे शोध को समृद्ध कर सकेंगे। हिन्दी में अक्सर यह देखा जाता है कि हिन्दी के शोधार्थी और उनके शोध–निर्देशक बिना इन सिद्धांतों और अवधारणाओं से परिचित हुए ही सांस्कृतिक शोध सम्बंधी विषय का चुनाव कर डालते है। फिर ऐसे संशोधधों के बारे में क्या कहा जाए। इसलिए सांस्कृतिक शोध के क्षेत्र में उसकी अवधारणात्मक स्वरूप से परिचित होना अत्यन्त आवश्यक है। तभी हम उसे शोध प्रविधि के रूप में उपयोग कर सकते हैं। लेकिन कभी–कभी सारा ज्ञान, अनुभव और संवेदन इन अवधारणाओं के विरूद्ध विद्रोह भी करता है और सांस्कृतिक परिदृश्य बदल जाता है। इसलिए सांस्कृतिक शोध के सन्दर्भ में वैचारिक सन्दर्भ निहित होंगे, यही उसका सैद्धांतिक आधार है।

10.2.5 भेद

सांस्कृतिक शोध प्रविधि के अर्न्तगत किसी कृति के माध्यम से किसी जाति, समुदाय, समाज, देशकाल की संस्कृति का अध्ययन करते समय इस तथ्य को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि सभी संस्कृतियाँ एक जैसी नहीं होतीं या किसी एक समाज या समुदाय की केवल एक संस्कृति नहीं होती, बल्कि उसकी कई संस्कृतियाँ उपसंस्कृति भी हो सकती है। मसलन यदि हम भारतीय संस्कृति की बात करें, तो भारत की कोई एक संस्कृति नहीं है और न ही किसी क्षेत्र प्रदेश अंचल की ही कोई संस्कृति है। यदि एक ही क्षेत्र या अंचल विशेष की संस्कृति का यदि हम वर्ग, वर्ण, जाति, सत्ता, शासन और वर्चस्व की दृष्टि से अध्ययन करें, तो उसमें भी अनेक संस्कृतियाँ, उपसंस्कृतियाँ मिलेंगी। इसी तरह शासक वर्ग, श्रमिक वर्ग और मध्यवर्ग की संस्कृतियों में भी भेद होता है। यहाँ तक कि भाषा, आचार, विचार, मनोरंजन के साधनों तक में भेद दिखाई देगा। इसके साथ ही एक ही गाँव में रह रही अनेक जातियों की संस्कृतियाँ एक जैसी नहीं होती। इनकी सांस्कृतिक परम्पराएँ एक जैसी नहीं होतीं। यदि उनमें भेद है तो उनके सांस्कृतिक तत्व भी हैं। तात्विक दृष्टि से देखा जाए तो इन जातियों की भाषा, संगीत और मनोरंजन के साधन तक में भेद दिखाई देगा। सवर्ण, पिछड़ों और दलितों की संस्कृति एक जैसी नहीं होगी। इसे हम सांस्कृतिक शोध की प्रविधि के माध्यम से ही समझ सकते हैं। भौतिक संस्कृति, अभौतिक संस्कृति और इसके अंतर्गत यदि संस्कृतियों में निरंतरता होती है तो उसमें परिवर्तन भी होता है, पर संस्कृतियों की मूल्य दृष्टि में परिवर्तन थोड़ा मुश्किल है। इस बात को स्पष्ट रूप से ध्यान में रखा जाना चाहिए कि संस्कृति के प्रश्नों पर हमें अर्थव्यवस्था और समाजिक सम्बंधों के ढाँचे में परिवर्तनों के सन्दर्भ में ही विचार करना चाहिए। सांस्कृतिक परिपेक्ष्य को बिना आर्थिक और समाजिक समीक्षा के नहीं समझा जा सकता। वैसे भी आज के तेजी से बदलते समाज में संस्कृति के क्षेत्र में जो भी समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं, उनकी प्रेरक शक्तियाँ अधिकाधिक संस्कृति के क्षेत्र के बाहर आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में विशिष्ट वर्ग और जनसाधारण के बीच तीव्र होते हुए अन्तविरोधों में हैं।" (परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम, पूरनचन्द्र जोशी, पृ. 16) और इस अंतर्विरोध और तनाव से उत्पन्न कोई सामायिक तत्व ही परिवर्तन को नई दिशा प्रदान कर सकता है।

वैज्ञानिक सत्य, धार्मिक विश्वास, पौराणिक कथाएँ, उपाख्यान, साहित्य, अंधविश्वास, सूत्र और लोकगाथाओं के रूप में देखा जा सकता है और सांस्कृतिक शोध की दिशा में यदि

हम अपनी संस्कृति के अलावा दूसरी संस्कृतियों के मूल्यों एवं मान्यताओं को पहचान और समझ की अपने संवेदना का विस्तार कर सकें तो, इसमें सांस्कृतिक शोध प्रविधि की परिकल्पना और भी सम्पन्न होगी, क्योंकि संस्कृति की इन्ही मूल्यों और मानदंडों का आधार हमारा आचरण, हमारी संस्थाएँ, हमारी सामाजिक व्यवस्था है। हमारी सांस्कृतिक स्वतंत्रता ही हमारी पहली स्वतंत्रता है और राजनैतिक स्वतंत्रता भी इसी से ही निःसृत होती है इसलिए समाज, सभ्यता, धर्म, अध्यात्म, दर्शन और संस्कृति के भेदों की समझ विकसित होनी चाहिए। इसी भेद से हम जान सकेंगे कि पूरब में धर्म और संस्कृति की जैसी अवधारणाएँ है वैसी पश्चिम में नहीं है। निर्मल वर्मा ने लिखा है कि अक्सर कहा जाता है, हम अपनी भाषा में स्वप्न देखते हैं, कुछ संस्कृतियों के साथ भी शायद ऐसा ही होता प्रतीत होता है कि वे अपनी कहानी अपनी स्वप्न भाषा में ही कहती हैं।'' संस्कृतियों की कहानी और कविता की स्वप्नभाषा को हम संस्कृति को आँखों, औजारों से देख और सुन सकते हैं, किसी और तरह से नहीं।

विशेषताएँ:–जब हम किसी कृति का सांस्कृतिक शोध प्रविधि के अर्न्तगत अध्ययन करते हैं तो हमें यह ज्ञात रहता है कि 'संस्कृति के द्वारा निर्धारित, संस्कारों के माध्यम से ही मानव का समाजीकरण और मानवीकरण होता है।' इसलिए संस्कृति की धारणा में सुसंस्कृत होने का भाव झलकता है और हम सांस्कृतिक अध्ययन में इन्हीं को आधार बनाते हैं पर इसके साथ ही सांस्कृतिक परिर्वतनों के मध्य निर्मित आचारों, व्यवहारों, प्रतिरोधी मूल्यों को भी नजरन्दाज नहीं करना चाहिए।

इसलिए हमारी सांस्कृतिक शोध प्रविधि की विशेषता है कि –

- यह सीखे हुए सांस्कृतिक व्यवहारों का अध्ययन करती है।
- यह शोध प्रविधि संस्कृति के संगठित स्वरूप को प्रतिमान मानती है।
- यह हस्तांतरित भौतिक संस्कृति का मनुष्य की भाषा, बिम्बों और मिथकों, प्रतीकों की व्याख्या के माध्यम से अध्ययन करती है।
- यह समूह या समुदाय के आदर्श के रूप में संस्कृति का अध्ययन भी करती है।
- यह अध्ययन यह मानता है कि संस्कृति में सामाजिकता का गुण होता है इसलिए संस्कृति के विकास का अध्ययन मानवीय अन्तः क्रिया के परिणाम के रूप में कार्य करता है।
- यह अध्ययन संस्कृति को सतत् परिर्वतनशील मानकर भी उसका अध्ययन करता है, क्योंकि प्रत्येक समाज की सांस्कृतिक मनोवृत्तियाँ, सांस्कृतिक मूल्य, सांस्कृतिक परम्पराएँ एक जैसी नहीं होती है।
- यह अध्ययन साहित्य, समाज और इतिहास के कथात्मक–गैर कथात्मक और काव्यात्मक कृतियों का ही अध्ययन करता है।

10.3 सारांश

इस शोध प्रविधि के अंर्तगत किए गए शोध या अध्ययन को सारांश या निष्कर्ष के रूप में प्रस्तुत करना होता है। जैसे इस प्रविधि के अर्न्तगत यदि आप मैथिलीशरण गुप्त की कविता या छायावादी कवि निराला की कविताओं का सांस्कृतिक अध्ययन करते हैं तो आप को सार रूप में यह स्पष्ट करना है कि आप के अध्ययन या शोध के स्वरूप का

सारांश या निष्कर्ष क्या है। तभी शोध का कोई अर्थ होता है और किया गया शोध सार्थक होता है।

10.4 शब्दावली

सांस्कृतिक शोध प्रविधि के संदर्भ में निम्नलिखित शब्दों के निहितार्थों पर ध्यान दिया जाना चाहिए। जैसे : सांस्कृतिक विकास, सांस्कृतिक दृष्टिकोण, सांस्कृतिक परिदृश्य, सांस्कृतिक योजना, सांस्कृतिक पुनर्योजना, सांस्कृतिक पुनर्गठन, सांस्कृतिक दृष्टि, सांस्कृतिक आधार, सांस्कृतिक आयाम, सांस्कृतिक एकरूपता, सांस्कृतिक विशिष्टता, सांस्कृतिक एकता, सांस्कृतिक सम्भावना, सांस्कृतिक परिर्वतन, सांस्कृतिक विविधता, सांस्कृतिक एकरसता, सांस्कृतिक विरासत, सांस्कृतिक व्यवस्था, सांस्कृतिक समीक्षा, सांस्कृतिक परिपेक्ष्य, सांस्कृतिक समभावना, सांस्कृतिक पुर्नजागरण, सांस्कृतिक मूल्य, सांस्कृतिक परम्परा, सांस्कृतिक संकट, सांस्कृतिक जागरण, सांस्कृतिक क्रांति, सांस्कृतिक अस्मिता, सांस्कृतिक अवनति, सांस्कृतिक गतिविधियाँ, सांस्कृतिक शूल्यवाद, सांस्कृतिक संवाद, सांस्कृतिक क्रांति, सांस्कृतिक व्यक्ति, सांस्कृतिक चरित्र, सांस्कृतिक पुनर्जीवन, सांस्कृतिक स्वापन्तता, सांस्कृतिक छायाकल्प।

10.5 संदर्भ ग्रंथ

- सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय': खुले में खड़ा पेड़ (सम्पादक : नंदकिशोर आचार्य), वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर।
- वर्मा निर्मल : पत्थर और बहता पानी (सं. नंदकिशोर आचार्य), वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर।
- मेहता डॉ. छगन : संक्रान्ति और सनातनता (सं. नदकिशोर आचार्य) वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर।
- राय एस. एन.: हमारा सांस्कृतिक धर्म, (अनुवाद आर. के. भट्ट) वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर।
- नंद किशोर आचार्यः संस्कृति का व्याकरण, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर।
- उपाध्याय भगवतशरण : भारतीय संस्कृति की कहानी, राजपाल एंड संस, दिल्ली।
- सिन्हा सच्चिदानंद : संस्कृति–विमर्श, वाग्देवी प्रकाशन, प्रा. लि. दिल्ली।
- सिन्हा सच्चिदानंद : संस्कृति और समाजवाद, वाग्देवी प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली।
- ज्ञानी शिवदत्त : भारतीय संस्कृति, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली।
- भारद्वाज नंद : संस्कृति, जनसंचार और बाज़ार, सामयिक प्रकाशन दिल्ली।
- सिन्हा डॉ. हिम्मत सिंह : संस्कृति दर्शन, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ।
- यशदेव शल्य : संस्कृति मानव–कर्तव्य की व्याख्या, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
- पाण्डे गोविन्दचन्द्र, पाण्डे सुस्मिता : भारतीय संस्कृति, मध्य प्रदेश ग्रंथ, अकादमी।

- डॉ. ठाकुर जयदेव सिंह, 'भारतीय संस्कृति में ललित कला का महत्व,' हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद।
- रामस्वरूप चतुर्वेदी, 'भारत और पश्चिमः संस्कृति के अस्थिर संदर्भ,' लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद।
- पुरूषोत्तम अग्रवाल, 'संस्कृति : वर्चस्व और प्रतिरोध,' राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।
- पूरनचन्द जोशी, 'परिर्वतन और विकास के सांस्कृतिक आयाम,' राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- योगेन्द्र सिंह, 'भारतीय परम्परा का आधुनिकीकरण,' रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
- सी. डब्लयू एडोर्नो, 'संस्कृति उद्योग,' ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली।
- श्यामचरण दुबे 'परम्परा और परिर्वतन,' ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।
- श्यामचरण दुबे 'मानव और संस्कृति' राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- बद्रीनारायण, 'संस्कृति का गद्य,' नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
- दुर्गा प्रसाद गुप्त, 'संस्कृति का अकेलापन,' संजय प्रकाशन, नई दिल्ली।

लेख

- हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'भारतीय संस्कृति' भाषा, साहित्य और देश,' भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली।
- नामवर सिंह, 'संस्कृति और सौन्दर्य' दूसरी परम्परा की खोज, राजकमल प्रकाशन।
- मैनेजर पाण्डेय, 'संस्कृति का समाजशास्त्र' (जनमत, वर्जीय, अंक – 2)।
- रेमण्ड विलियम्स, संस्कृति के मार्क्सीय सिद्धांत में आधार और ऊपरी ढाँचे की सार्थकता, (अनुवाद मैनेजर पाण्डेय) संकट के बावजूद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
- ज्योतिस्वरूप सक्सेना, 'एक सांस्कृतिक नीति के आयाम' अनुवाद मैनेजर पाण्डेय, संकट के बावजूद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
- प्रभा खेतान, 'सांस्कृतिक भूमंडलीकरण के द्वन्द्व और राष्ट्र–राज्य,' सामयिक प्रकाशन, न. दिल्ली।

अंग्रेजी पुस्तकें

- Raymond Wilioms, Culture, Fontana 1981
- Raymond Willioms, Culture and Society, Pelicon Book, 1961
- Lucian Goldman, Culture Creation in Modern Society, Teloas Press
- Lowenthal, Literature, Popular Culture and society, New Jersey 1961

10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. साहित्य के अर्न्तगत सांस्कृतिक शोध प्रविधि की आवश्यकता क्यों महसूस की गई ? स्पष्ट कीजिए।
2. किसी कृति के सांस्कृतिक अध्ययन से क्या तात्पर्य है ? तर्कसंगत उत्तर अपेक्षित है।
3. सांस्कृतिक शोध प्रविधि का उद्देश्य क्या है ? स्पष्ट विवेचित कीजिए।
4. क्या आप संस्कृति सम्बन्धी व्याख्या और परिभाषाओं से सहमत है ? तर्कपुष्ट उत्तर दीजिए।
5. विभिन्न अनुशासनों में सांस्कृतिक शोध के अध्यापन की आवश्यकता क्यों महसूस की गई ? विवेचित कीजिए।
6. सांस्कृतिक शोध की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
7. किसी कृति का सांस्कृतिक शोध संबंधी अध्ययन का सार प्रस्तुत कीजिए।

□

इकाई– 11 मनोविश्लेषणात्मक शोध प्रविधि

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 मनोविज्ञान का स्वरूप

11.2.1 मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषा

11.2.2 मनोविज्ञान का क्षेत्र

11.2.3 मनोविज्ञान और साहित्य का सम्बन्ध

11.3 मनोविश्लेषण के प्रमुख सिद्धांत

11.3.1 फ्रायड का मनोविश्लेषण सम्बन्धी सिद्धांत

11.3.2 एडलर का मनोविश्लेषण सम्बन्धी सिद्धांत

11.3.3 युंग का मनोविश्लेषण सम्बन्धी सिद्धांत

11.4 हिन्दी साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन (उपन्यास के विशेष सन्दर्भ में)

11.4.1 प्रेमचन्द के उपन्यास

11.4.2 जैनेन्द्र के उपन्यास

11.4.3 अज्ञेय के उपन्यास

11.4.4 इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास

11.5 सारांश

11.6 शब्दावली

11.7 संदर्भ ग्रन्थ

11.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप मनोविश्लेषणात्मक शोध प्रविधि का अध्ययन करेंगे। इस इकाई में हम आपको मनोविज्ञान, उसके सिद्धांत तथा उसके साहित्य में अध्ययन से परिचित करायेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- मनोविज्ञान से परिचित हो सकेंगे ।
- मनोविज्ञान एवं साहित्य के सम्बन्ध को समझ सकेंगे ।
- मनोविश्लेषण एवं उसके प्रमुख सिद्धांतों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।
- हिन्दी साहित्य के मनोवैज्ञानिक अध्ययन को समझ सकेंगे ।

11.1 प्रस्तावना

मनोविज्ञान मन, मन की संरचना, क्रिया और व्यवहार का अध्येता विज्ञान है। इसके अध्ययन के अन्तर्गत मनुष्य के व्यवहार को समझना, उसके भावी रूप का पता लगाना और उस पर नियंत्रण करना ही प्रमुख ध्येय है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में मनोवैज्ञानिक तत्त्वों एवं मानसिक वृत्तियों का अंकन किया जाता है। रचनाकार अपनी जिस रचना में व्यक्ति जीवन को सामने रखकर उसकी मनोवृत्तियों को चित्रित करता है। प्रायः वह मनोवैज्ञानिक रचना कहलाती है। इस प्रकार की कृतियों का मूल्यांकन या अध ययन मनोविश्लेषणात्मक पद्धति से किया जाता है।

मनोवैज्ञानिक शोध के क्षेत्र में प्रवेश करने वाले शोधार्थी को सामान्य मनोविज्ञान से परिचित होना चाहिए, क्योंकि असामान्य अथवा विकारयुक्त मनोभावों का चित्रण लेखकों द्वारा किया जाता रहा है। यह प्रवृत्ति कथा साहित्य में विशेष रूप से देखने को मिली है। इक्कीसवीं सदी संघर्षों एवं चुनौतियों से भरी हुई है। ऐसे समय में असामान्य चरित्रों एवं व्यवहारों से युक्त रचनाओं की संख्या में बढ़ोतरी हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। मानवीय व्यवहार के यथार्थ स्वरूप की पहचान के लिए साहित्य का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से शोध आवश्यक ही नहीं बल्कि महत्त्वपूर्ण है।

इस इकाई में मनोविज्ञान के स्वरूप एवं विकास पर प्रकाश डाला गया है और साहित्य से उसके सम्बन्ध को रेखांकित किया है। हिन्दी उपन्यास में मनोवैज्ञानिक तत्त्व बहुतायत से मिलते हैं। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द एवं शीर्ष मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों,– जैनेन्द्र, अज्ञेय एवं इलाचन्द जोशी के उपन्यास साहित्य से इस पद्धति को समझने में सहायता मिलेगी।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर हमने इस इकाई **में तीन बा**तों पर अपनी पाठ्य सामग्री को केन्द्रित किया है : 1. मनोविज्ञान का स्वरूप एवं विकास 2. मनोविश्लेषण एवं उसके प्रमुख सिद्धांत 3. हिन्दी साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन (हिन्दी उपन्यास के विशेष सन्दर्भ में)। इन तीनों के अध्ययन से हम मनोविश्लेषणात्मक शोध प्रविधि को समझ सकेंगे।

11.2 मनोविज्ञान का स्वरूप

11.2.1 मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषा

मनोविज्ञान का अंग्रेजी पर्याय है –'साइकोलॉजी'। 'साइकोलॉजी' शब्द 'साइके' और 'लोगस' दो ग्रीक शब्दों से मिलकर निर्मित है। 'साइके' का अर्थ है – आत्मा और 'लोगस' का अर्थ है – विज्ञान। अतएव, साइकोलॉजी का शाब्दिक अर्थ हुआ – आत्मा का विज्ञान। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि मनोविज्ञान 'मन' सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञान को प्रस्तुत करता है। मनस्थिति मनुष्य का व्यवहार दर्शाती है अतः मनोविज्ञान मनुष्य के व्यवहार का विश्लेषक है। वार्ड ने मनोविज्ञान की परिभाषा देते हुए कहा है कि मनोविज्ञान व्यक्तिगत अनुभूति और व्यवहार का विज्ञान है जो अनुभूति के माध्यम से अभिव्यक्त होता हैं। पिल्सबरी और मैक्डूगल ने भी मनोविज्ञान को व्यवहार की संज्ञा दी। वुडवर्थ कहते हैं – ''मनोविज्ञान मनुष्य की क्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।''

अगर इतिहास पर दृष्टिपात किया जाये तो पाते हैं कि सभ्यता के युग में प्रवेश करते ही 'मनोविज्ञान' के जन्म के संकेत मिल जाते हैं। 'मन' का चिन्तन भारत में 'ऋग्वेद'

तथा यूरोप में प्लेटो से ही प्रारम्भ हो गया। उन्नीसवीं शताब्दी तक इसका अध्ययन दर्शनपरक ही रहा। बीसवीं सदी में इसने विज्ञान का रूप ग्रहण किया।

11.2.2 मनोविज्ञान का क्षेत्र

मनोविज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। यह मानव जीवन के उन तमाम पहलुओं एवं परिस्थितियों तक फैला हुआ है जिनसे वह साक्षात्कार करता है। इनमें से कुछ निम्न हैं–

- **समाज मनोविज्ञान** – इसके अन्तर्गत सामाजिक क्षेत्र की समस्याओं एवं जटिलताओं, विसंगतियों, अपराधों आदि के मनोवैज्ञानिक पहलुओं की पड़ताल की जाती है और समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव दिये जाते हैं।
- **विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान** – इस क्षेत्र में अन्तर्दर्शन निरीक्षण और प्रयोगात्मक विधियों के माध्यम से मानव मस्तिष्क की जटिल क्रियाओं का विश्लेषण करके अध्ययन किया जाता है।
- **बाल मनोविज्ञान** – इसमें बालमन को समझने का प्रयास किया जाता है। बाल्यावस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है क्योंकि यह मनुष्य के भावी जीवन की आधारशिला होती है।
- **किशोर मनोविज्ञान** – इस अवस्था में मनुष्य में अनेक शारीरिक परिवर्तन होते हैं जो उसके मन पर व्यापक प्रभाव डालते हैं। इन परिवर्तनों को समझने एवं उत्पन्न होने वाली समस्याओं के समाधान के लिए मनोविज्ञान का प्रयोग करते हैं।
- **मनोविश्लेषण विज्ञान** – इसके अन्तर्गत स्वप्न, दिवास्वप्न, कला, साहित्य आदि का विश्लेषण करके घटनाओं, त्रुटियों के कारणों का पता लगाया जाता है।
- **असामान्य मनोविज्ञान** – इसके अन्तर्गत आतंक, क्रांति, स्मृतिभ्रंश आदि असामान्य व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है।
- **व्यावहारिक मनोविज्ञान** – मनुष्य की विभिन्न समस्याओं को सुलझाने में मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रयोग करना व्यावहारिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत आता है।
- **वैयक्तिक मनोविज्ञान** – इस क्षेत्र के अन्तर्गत व्यक्ति के व्यक्तिगत लक्षणों, समानताओं तथा विभिन्नताओं का अध्ययन किया जाता है।

11.2.3 मनोविज्ञान और साहित्य का सम्बन्ध

मानव–मन को समझना मनोविज्ञान का मुख्य लक्ष्य है। वास्तव में यही मन भावों का आश्रय, मनोविकारों का स्त्रोत एवं अनुभूतियों का कोष है। साहित्य इन्हीं मनोविकारों एवं अनुभूतियों की अभिव्यक्ति।

मनोविज्ञान और साहित्यकार दोनों ही व्यक्ति को समझने का प्रयास करते हैं। अन्तर केवल यही है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण से प्राप्त तथ्यों में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता; उन्हें ज्यों का त्यों रखकर निष्कर्ष निकाल सकता है और साहित्यकार वास्तविकता को कलात्मक ढ़ंग से प्रस्तुत करता हैं। मनोविज्ञान की प्रवृत्ति विश्लेषणात्मक है जबकि साहित्य की संश्लेषणात्मक।

साहित्य और मनोविज्ञान के सम्बन्धों पर हम इस तरह भी विचार कर सकते हैं कि

साहित्य ने जीवन से प्रेरण ग्रहण की है। जीवन का विकास मनोविकारों पर आधारित है और मनोविकार का आधार मनोविज्ञान है। मनोविज्ञान की स्थिति जीवन की अनेकानेक अभिव्यक्तियों में लक्षित होती है। अतएव मनोविज्ञान और साहित्य में साधन और साध्य का सम्बन्ध है। अगर हम गहनता से विचार करें तो पाते हैं कि मनोविज्ञान और साहित्य दोनों मानसी सृष्टि हैं। दृष्ट रूप में साहित्य मनोविज्ञान से पुराना लगता है, लेकिन अपने जीवन्त रूप में मनोविज्ञान विश्वसाहित्य में सदा से स्वीकृत रहा है। वैदिक साहित्य, वाल्मीकि, कालिदास, तुलसीदास, शेक्सपीयर, दांते तथा गेटे आदि महान् रचनाकारों की कृतियॉ इसका उदाहरण है। सच तो यह है कि जिन सत्यों का उद्घाटन मनोविज्ञान करता है, साहित्यकार की दूरान्वेषी आँख उसे पहले ही देख लेती है।

साहित्यकार अपनी कृति में भावों की सृष्टि द्वारा भावी मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों की ओर संकेत कर देता है जिनके आधार पर मनोवैज्ञानिक विस्तृत मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का निर्माण करता है। इस तरह साहित्यकार उन स्थलों तक पहले पहुँच जाता है जहाँ मनोवैज्ञानिक बाद में पहुँचता है। फ्रायड ने भी स्वीकार किया है कि ''कवियों और दार्शनिकों ने अचेतन मन का आविष्कार मुझ से पहले कर दिया था। मैंने तो उस वैज्ञानिक पद्धति को प्रस्तुत किया है जिससे अवचेतन मन का अध्ययन सुगमता से किया जा सके।''

साहित्य का विषय है – मनुष्य, मनुष्य का मन और उसकी संवेदनाएँ, उसके निरोध, उसकी तृप्ति, उसकी इच्छाऐं – कुल मिलाकर उसके चरित्र का सब कुछ। मनुष्य में क्या समाया हुआ है? इसके भीतर–बाहर क्या है? इसी सबको जानने का प्रयास मनोविज्ञान का मुख्य ध्येय है।

11.3 मनोविश्लेषण के प्रमुख सिद्धांत

मनोविश्लेषण मनोविज्ञान की एक पद्धति है; इसके जनक सिग्मण्ड फ्रायड थे। उनके पश्चात् अनेक विद्वानों ने इस पर अपने विचार व्यक्त किये। साहित्य को समझने एवं उसके मूल्यांकन में इनकी उपयोगी भूमिका रही है।

11.3.1 सिग्मण्ड फ्रायड (1856–1939)

फ्रायड ने मनोविश्लेषण सिद्धांत के आधार पर साहित्य निर्माण प्रकिया पर भी विचार व्यक्त किए हैं। उन्होंने मनोविष्लेषण सिद्धांत का प्रतिपादन सन् 1895 और सन् 1900 के बीच लिखी गई अपनी पुस्तकों में किया है। इस सन्दर्भ में उनकी 'एन आउट लाइन ऑफ साइको एनालेसिस' विशेष उल्लेखनीय है जो 1938 में प्रकाशित हुई।

फ्रायड ने समस्त रचनात्मक साहित्य को दमित वासनाओ का परिष्कृत रूप माना है। उनका मानना है कि मनुष्य के मन में कुछ ऐसी जन्मजात प्रवृत्तियाँ एवं वासनाएँ रहती हैं जो न तो समाज के भतीर रहकर पूर्ण हो सकती है और न ही उनका पूर्णरूपेण दमन कर सकता है क्योंकि मनुष्य सामजिक प्राणी है, समाज के नियमों की अनदेखी नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि समाज का उस पर बंधन रहता है। ऐसी अवस्था में मनुष्य अपनी उन इच्छाओं की पूर्ति कल्पना के माध्यम से करता है क्योंकि कल्पना में मनुष्य समाज के बंधनों से मुक्त रहता है। फ्रायड के अनुसार मनुष्य के 'दिवा स्वप्न' एवं 'निशा स्वप्न' इसी कल्पना के दो रूप हैं जिनमें मनुष्य अपनी इन इच्छाओं

की परिपुष्टि की अनुभूति करता है जो कभी सामाजिक बंधनों के कारण क्रियान्वित न हुई थीं अर्थात् पूरी नहीं हुई थीं। फ्रायड के अनुसार रचनाकार भी इसका अपवाद नहीं है बल्कि मान–मर्यादा, धन–ऐश्वर्य, शक्ति, प्रसिद्धि, नारी–प्रेम आदि के लिए उत्सुक रहता हैं किन्तु इन्हें प्राप्त करने में असमर्थ रहता है। इसके परिणामस्वरूप वह कल्पना के संसार में विचरण करता है और रचनात्मक साहित्य का सृजन करता है। फ्रायड की मान्यता है कि रचनाकार व्यक्ति की कल्पना जनसाधारण से भिन्न होती है क्योंकि कलाविहीन व्यक्ति की कल्पना में ऐसे विचार और बिम्बों का समावेश होता है जो वैयक्तिक होने के कारण मात्र उसे ही बोधगम्य होते हैं किन्तु कलाकार अपने सपनों को इस ढ़ंग से व्यक्त करता है कि वे दूसरों तक न केवल संप्रेषित होते हैं बल्कि दूसरों के द्वारा आस्वादित भी होते हैं।

11.3.2 अल्फ्रेड एडलर (1870–1937)

एडलर फ्रायड के शिष्य थे किन्तु बाद में उनका फ्रायड से मतभेद हो गया था। एडलर के अनुसार फ्रायड का कामवृत्ति संबंधी सिद्धांत भ्रामक है क्योंकि कामवृत्ति को एकमात्र मूल प्रेरक शक्ति एवं प्रत्येक तरह की चारित्रिक विचित्रताओं एवं मानसिक व्याधियों का कारण स्वीकार नहीं किया जा सकता। यद्यपि फ्रायड की तरह एडलर भी मानव व्यक्तित्व के निर्माण एवं विकास में बाल्यावस्था के दिनों को ही नियामक ठहराता है परन्तु फ्रायड जहाँ इस निर्माण के लिए जैवीय शक्तियों (विशेष रूप से लिबिडो) को जिम्मेदार मानते हैं वहीं एडलर सामाजिक शक्तियों को। एडलर के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में एक विशेष प्रकार की रचनात्मक शक्ति पाई जाती है। आनुवांशिकता तथा पर्यावरण के अतिरिक्त व्यक्ति की रचनात्मक शक्ति भी व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होती है। रचनात्मक शक्ति के कारण व्यक्तियों में अन्तर होता है। यह रचनात्मक शक्ति गतिशील होती है। किसी व्यक्ति के सम्मुख जब कोई समस्या उत्पन्न होती है तब वह उसे सुलझाने का प्रयत्न करता है। अपनी रचनात्मक शक्ति की अभिव्यक्ति के लिए प्रत्येक व्यक्ति अलग–अलग शैली अपनाता है। व्यक्ति की जीवन शैली पर परिवार में उसकी स्थिति, माता–पिता के व्यक्तित्व, आर्थिक स्थिति तथा समाज के दबाव का प्रभाव पड़ता है। एडलर के अनुसार व्यक्ति के समस्त कार्य या व्यवहार किसी लक्ष्य या उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किये जाते हैं। एडलर की दृष्टि में समाज का प्रतिनिधित्व करने वाला 'चेतन–मन' ही मनुष्य के अधिकांश क्रियाकलापों के लिए उत्तरदायी होता है। चूँकि अहम् चेतन मन का ही प्रतिरूप है, इसलिए एडलर के मनोविज्ञान में 'लिबिडो' को उतना महत्त्व प्रदान नहीं है जितना कि 'अहं' अथवा श्रेष्ठत्व ग्रंथि को। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में किसी न किसी प्रकार की मानसिक कमी पाई जाती है जिसे पूरी करने की निरन्तर चेष्टा करने पर भी व्यक्ति में एक प्रकार की हीन भावना बनी रहती है। उसी भावना को एडलर ने 'हीनता ग्रंथि' के नाम से सम्बोधित किया है। हीनता और श्रेष्ठता ग्रन्थि की तुलना करते हुए एडलर ने स्पष्ट किया है कि देखने में ये दोनों ग्रन्थियाँ एक दूसरे के विपरीत मालूम होती है लेकिन वास्तव में ये दोनों एक दूसरे की पूरक हैं। उनके अनुसार वही व्यक्ति श्रेष्ठता ग्रन्थि विकसित करता है जिसमें हीनता ग्रन्थि होती है। जो लोग दम्भी और असभ्य ढंग का व्यवहार करते हैं वे मूलतः हीनता ग्रन्थि से ग्रसित होते हैं। और इसको छिपाने के लिए श्रेष्ठता का भाव व्यक्त करते हैं। उनकी दृष्टि में मानव सभ्यता का संपूर्ण इतिहास ही इस भाव के प्रयास की कहानी है। कला–साहित्य भी कलाकार के जीवनगत अभावों की क्षतिपूर्ति, श्रेष्ठता प्राप्ति हेतु किए गये प्रयत्नों का लेखा–जोखा है।

11.3.3 कार्ल गुस्ताव युंग (1875–1961)

फ्रायड के दूसरे सहयोगी और शिष्य स्विटरलैण्ड निवासी कार्ल गुस्ताव युंग के अनुसार मानव व्यवहार न फ्रायड की काम वासना से प्रभावित होता है और न एडलर की उत्कृष्ट चालना से। युंग 'जीवन शक्ति' को ही मनुष्य जीवन की प्रेरक शक्ति स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में मनुष्य में जनन, विकास एवं क्रियाशक्ति उत्तरदायी है। इसे हम इस तरह भी समझ सकते हैं कि इसकी अभिव्यक्ति किसी समय लैंगिक सुख का अनुसरण करने में होती है, कभी उत्कर्ष की खोज में और कभी कलात्मक सृजन एवं अन्य क्रियाओं में होती है। मानसिक शक्ति अथवा काम वासना का उपयोग मूलतः आत्म परीक्षण के लिए तथा आत्म–परीक्षण के लिए होता है। जब इन जैव आवश्यकताओं की तुष्टि हो जाती है तब वह शक्ति अन्य लक्ष्यों की उपलब्धि के लिए प्राप्त होती है जैसे–व्यक्ति की सामाजिक, सामाजिक एवं सृजनात्मक आवश्यकताएँ। मन के लिए युंग ने 'साइकी' शब्द का प्रयोग किया है। उन्होंने 'साइकी' के तीन स्तर माने हैं –

1. चेतन
2. व्यक्तिगत अचेतन
3. सामूहिक अचेतन

व्यक्तिगत अचेतन अतृप्त इच्छाओं, स्मृतियों और दमित वासनाओं का कोष है। वस्तुतः यहाँ वे इच्छाएँ अथवा वासनाएँ संचित होती है जो कभी चेतन मन के स्तर पर थी और जो दमित होकर मन के नीचे के स्तर पर अर्थात् व्यक्तिगत अचेतन के स्तर पर उतर आती है। युंग के अनुसार व्यक्तिगत अचेतन से मुनष्य चेतन मन के स्तर पर बहुत सी घटनाओं को स्मृति के सहारे प्रतिष्ठित कर सकता है; अर्थात् व्यक्तिगत अचेतन स्मृति के सहारे चेतन मन के पटल पर अवतरित हो सकता है। व्यक्तिगत अचेतन मन से नीचे 'साइकी' की जो पर्त है, युंग उसे सामूहिक अचेतन अथवा समष्टि – अचेतन कहते हैं। युंग के अनुसार मन के इस स्तर से चेतन मन के पटल पर कुछ भी अवतरित नहीं होता। मनुष्य के सामूहिक अचेतन मन में विगत पीढ़ियों तथा आदिकालीन पूर्वजों के संचित अनुभव होते हैं। युंग ने कला एवं साहित्य का उद्‌गम स्रोत इसी सामूहिक अचेतन को स्वीकार किया है। उनके अनुसार सामूहिक अचेतन में अनंत समय से संचित अनुभव एवं संस्कार मनुष्य की अन्तर्वृत्तियों और बहिर्वृत्तियों के सामंजस्य से काव्य–कला के रूप में प्रस्फुटित होते हैं।

11.2.4 हिन्दी साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन (उपन्यास के विशेष सन्दर्भ में)

अभी तक हमने मनोविश्लेषण के प्रमुख सिद्धांतों का परिचय प्राप्त किया। हिन्दी साहित्य को समझने में इनसे सुविधा मिलती है। हिन्दी कथा साहित्य के अध्ययन में तो इनकी महती भूमिका हो सकती है। प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचन्द ने स्वयं स्वीकार किया है कि मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। उपन्यास में प्रयुक्त चरित्रों की जटिलताओं को समझने में मनोविश्लेषण शोध प्रविधि प्रभावशाली है। हम यहाँ इस शोध प्रविधि का उपयोग कुछ प्रमुख उपन्यासकारों तथा उनकी कृतियों को समझने में करेंगे ताकि आप इसके व्यवहारिक पक्ष से परिचित हो सकें।

11.4.1 प्रेमचन्द के उपन्यास

जनता ने प्रेमचन्द को 'उपन्यास सम्राट' के रूप में स्वीकार किया है। उनके उपन्यास

उनकी मृत्यु के 81 वर्ष पश्चात् भी लोगों में चाव से पढ़े जाते हैं। इसी का परिणाम है कि वे हिन्दी में बीसवीं सदी के सर्वश्रेष्ठ कथाकार माने जाते हैं। उनकी रचनाएँ मानव जीवन एवं चरित्रों का यथार्थ अंकन करती हैं। मानव चरित्र को समझने में मनोविज्ञान का ज्ञान का होना आवश्यक है।

प्रेमचन्द का 'सेवासदन' हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में एक नई दिशा का सूचक है। 'सेवासदन' में नारी जीवन से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर रोशनी पड़ती है। हिन्दी साहित्य में पहली बार वेश्या जीवन को मानवीय संवेदना के धरातल पर समझने की कोशिश की गई है। 'सेवासदन' की नायिका सुमन का विवाह निर्धन एवं प्रौढ़ गजाधर से हो जाता है और उसकी कोई इच्छा पूर्ण नहीं हो पाती। भोली नामक वेश्या के बनाव–श्रृंगार को देखकर वह सोचती है कि "मैं भी यदि वैसा बनाव–चुनाव करूँ, वैसे गहने–कपड़े पहनूँ तो मेरा रंग–रूप और निखर जायेगा, मेरा यौवन और न चमक जायेगा।" उसका पति गजाधर घर देर से लौटकर आने पर उसे घर से निकाल देता है और वह वेश्यावृत्ति अपना लेती है। उसके इस कृत्य के मूल में एक कारण अतृप्त काम–वासना भी है। इसी तरह से प्रेमचन्द के नारी जीवन पर केन्द्रित एक अन्य उपन्यास 'निर्मला' की नायिका निर्मला के चरित्र को लिया जा सकता है। निर्मला का विवाह अपने पिता की उम्र के व्यक्ति तोताराम से होता है। तोताराम निर्मला की काम–वासना को तृप्त करने में असमर्थ रहता है। अतृप्त काम भावना के वशीभूत होकर निर्मला तोताराम की पहली पत्नी के पुत्र और हमवयस्क मंसाराम की ओर आकर्षित होती है। इसी तरह हम 'कायाकल्प' में मनोरमा और चक्रधर के सम्बन्धों को देख सकते हैं। मनोरमा का विवाह विशालसिंह नामक वृद्ध से होता है। चक्रधर विशालसिंह का दामाद है। चक्रधर विशालसिंह के घर पर रहने आता है तो मनोरमा उसकी ओर आकर्षित हो जाती है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में हम इड, ईगो तथा सुपरईगो के अन्तर्द्वन्द्व को भलीभांति देख सकते हैं। 'सेवासदन' में सुमन के विवाह के लिए उसके पिता दरोगा कृष्णचन्द्र को रूपयों की आवश्यकता थी। दरोगाजी का इड उन्हें रिश्वत लेने के लिए प्रेरित करता है। ईगो को परिणाम का भय था और सुपर–ईगो को आदर्श से च्युत होने का दुःख था। "एक ओर रूपयों का ढेर था और चिन्ता–व्याधि से मुक्त होने की आशा, दूसरी ओर आत्मा का सर्वनाश और परिणाम का भय। न हाँ करते बनता था न नहीं।" इसी तरह 'गबन' के रमानाथ को देख सकते हैं जो अपनी पत्नी पर अपनी धाक जमाने के लिए बड़ी–बड़ी डींगे हाँकता है, अपनी वास्तविक आर्थिक स्थिति को छिपाता है। जब कभी भी उसने पत्नी को यथार्थ स्थिति से अवगत कराने का प्रयास किया, तभी उसके मन में इड–ईगो का संघर्ष छिड़ गया और इसमें सदैव इड की ही विजय हुई। "प्रणय के उस निर्मल प्रकाश में उसका मनोविकार उसे किसी भयंकर जन्तु की भांति घूरता हुआ जान पड़ता था। उसे अपने ऊपर इतनी घृणा हुई कि एक बार जी आया, सारा कपट व्यवहार खोल दूँ लेकिन संभल गया। कितना भयंकर परिणाम होगा।" जालपा की नजरों में गिर जाने की कल्पना ही उसके लिए असहाय थी। इसी तरह हम देखते हैं कि 'निर्मला' उपन्यास की नायिका किसी तरह अपनी इच्छाओं का दमन करके जीवन व्यतीत कर लेती है। आदर्शवादी संस्कारों के चलते इड की इच्छाओं को दबाती रहती है लेकिन मृत्यु के समय उसके मन की पीड़ा अपनी ननद के हाथों अपनी बच्ची को सौंपते हुए इन शब्दों में व्यक्त होती है–"दीदी जी, अब मुझे किसी वैद्य–हकीम की दवा फायदा न करेगी। आप मेरी चिन्ता न करें। बच्ची को आपकी गोद में छोड़े जाती हूँ। अगर जीती–जागती रही तो किसी अच्छे कुल में विवाह कर दीजिएगा। मैं तो इसके

लिए अपने जीवन में कुछ न कर सकी केवल जन्म भर देने की अपराधिनी हूँ।''

प्रसिद्ध मनोविश्लेषणशास्त्री एडलर ने व्यक्तित्व निर्माण में हीनताग्रंथि को महत्त्व दिया है। प्रेमचन्द के 'सेवासदन' में सुमन का पति हर प्रकार से उसके अयोग्य है। इसके परिणामस्वरूप उसमें हीनता की भावना पैदा होती है। अपनी इस हीन भावना से मुक्त होने के लिए वह सुमन पर दुराचार का आरोप लगाकर उसे घर से निकाल देता है। इससे उसका अहं तुष्ट होता है कि वह सुमन से भले ही अन्य मामलों में निम्न श्रेणी का है लेकिन घर से निकालने का अधिकार उसमें श्रेष्ठता की भावना का संचार करता है। इसी तरह 'निर्मला' उपन्यास में प्रौढ़ तोताराम में युवा निर्मला के कारण हीनता की भावना थी। हीनता की भावना की पराकाष्ठा के परिणामस्वरूप उसमें निर्मला तथा मंसाराम के बीच अनुचित सम्बन्ध की शंका उत्पन्न हो जाती है। इसी तरह 'गबन' के रमानाथ में आर्थिक विपन्नता हीनता उत्पन्न कर देती हैं जिसे वह अपनी पत्नी के सामने झूठे प्रदर्शन के द्वारा दूर करने की कोशिश करता है।

वातावरण का भी मनुष्य के किया–कलापों पर व्यापक प्रभाव होता है। 'सेवासदन' की सुमन के वेश्या बनने में अतृप्त काम–वासना के साथ इस परिवेश का भी योगदान है जिसमें वह रह रही है। जहाँ वह रहती है वहाँ आस–पास वेश्याओं के मकान हैं और पास–पड़ोस की स्त्रियाँ निम्नवर्गीय है। वेश्या भोली का समाज में मान–सम्मान एवं ऐश्वर्य देखकर सुमन सोचने लगती है कि उससे भाग्यशाली तो वेश्या भोली है और इस भावना का शिकार होने के कारण पति द्वारा घर से निकाले जाने पर वह वेश्या बन जाती है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रेमचन्द के उपन्यासों का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि उन्होंने अपने पात्रों का चित्रण यथार्थ के धरातल पर किया है। उनके मानवोचित गुणों–अवगुणों का तटस्थता से वर्णन दिया है। उनके पात्रों का अहं तो जाग्रत हो जाता है लेकिन सामाजिक नैतिकता का उल्लंघन नहीं कर सके हैं क्योंकि प्रेमचन्द संघर्ष के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन के पक्षधर हैं।

11.4.2 जैनेन्द्र के उपन्यास

जैनेन्द्र को प्रथम मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार होने का गौरव प्राप्त है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि उपन्यास साहित्य के इतिहास में जैनेन्द्र प्रथम व्यक्तिवादी उपन्यासकार हैं जिन्होंने चरित्रों का उद्‌घाटन मनोवैज्ञानिक धरातल पर किया।

'सुखदा' उपन्यास की सुखदा पति का स्नेह पाकर भी असन्तुष्ट रहती है। इसका कारण उसकी अतृप्त काम भावना है। पुरूषत्वविहीन पति विवाह के कुछ समय बाद तक अपने पूर्ण समर्पण एवं सद्‌भावना से पत्नी को प्रसन्न रखता है। प्रारम्भ में सुखदा अतृप्त काम भावना को दबाने का प्रयास करती है लेकिन धीरे–धीरे उसमें खिन्नता, खीझ और नैराश्य बढ़ता जाता है। लाल के सम्पर्क में आने पर उसकी अचेतन में दबी काम–भावना जाग्रत हो जाती है और अपना घर त्यागकर उसके साथ रहने लगती है।

जैनेन्द्र के उपन्यासों के पात्रों में इड, ईगो तथा सुपर ईगो का संघर्ष बखूबी देखने को मिलता है। उनके पहले उपन्यास 'परख' के नायक सत्यधन के मन में कट्‌टो को लेकर अन्तर्द्वन्द्व पैदा होता है। एक तरफ कट्‌टो और उसकी माँ की रक्षा का प्रश्न है तो दूसरी ओर अपने भविष्य तथा मॉ की इच्छा का ख्याल है। इसी तरह 'सुनीता' उपन्यास की सुनीता के मन में फिल्म देखकर मीरा के चरित्र को लेकर द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न होती

है। उसका चेतन मन मीरा को लांछित करना चाहता है अर्थात् उसके कृत्य को उचित नहीं मानता, वहीं अचेतन में मीरा के प्रति सहानुभूति उभरती है। ''वह अपने से झगड़कर चाहती है मीरा को खण्डिता और लांछित ठहरा दे, किन्तु मीरा के प्रति उसके भीतर का स्नेह और वेदना उमड़ ही आती है, भर ही आती है। वह मीरा को समझ लेना चाहती है, मीरा को जो राणा की रानी थी पर राणा को भूलकर और रानीपन को बिसार कर जाने किस साँवलिया के पीछे कैसी न मदमाती बन गई थी।''

जैनेन्द्र के उपन्यासों में एडलर के हीनता ग्रन्थि के सिद्धांत का स्पष्ट प्रतिफलन देखा जा सकता है। 'विवर्त' उपन्यास के जितेन में भुवन मोहिनी से विवाह न हो पाने की स्थिति के परिणामस्वरूप हीनता ग्रन्थि का निर्माण होता है जो उसे हिंसा के मार्ग पर ले जाती है। जितेन का विवाह भुवनमोहिनी के साथ इसलिए नहीं हो पाता चूँकि वह अमीर थी। जितेन के मन में समस्त उच्च वर्ग के प्रति हिंसा की भावना उत्पन्न हो जाती है। इसी तरह 'कल्याणी' उपन्यास के डॉ. असनानी हीनता ग्रन्थि का शिकार होकर अपनी पत्नी कल्याणी पर तरह–तरह के अत्याचार करते हैं। पति के रूप में प्रभुत्व जमा कर डॉ. असनानी अपनी हीनता की भावना से मुक्ति पाना चाहते हैं। 'व्यतीत' का जयन्त अनीता से प्रेम करता है। उसके साथ भावी जीवन के सपने सँजोता है लेकिन प्रेम में असफल होने पर हीनता की भावना का शिकार हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप योग्यता तथा प्रतिभा होने पर भी हर क्षेत्र में असफल होता है।

युंग के अनुसार मूलतः व्यक्ति दो प्रकार के होते हैं – अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी। अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों की रूचि बाह्य जीवन में नहीं होती। वे अधिकतर अपने ही बारे में सोचा करते हैं। बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति सामाजिक जीवन में अत्यन्त क्रियाशील रहते हैं। जैनेन्द्र के पात्रों में दोनों प्रवृत्तियों के व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं। 'सुनीता' उपन्यास का श्रीकान्त अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का है। ''उसकी वृत्ति में सार्वजनिकता को तो अवकाश न था। अपने परिमित परिचय क्षेत्र में ही वह पैसे का, स्नेह का, चिन्ता–भावनाओं का इतना व्यय करता चलता है कि सार्वजनिकता के योग्य प्राणों की पूंजी उसके पास न बचती थी।'' दूसरी तरफ इसी उपन्यास का एक अन्य चरित्र हरिप्रसन्न बहिर्मुखी प्रवृत्ति का है। वह समाज में क्रांति लाना चाहता है। उसने विद्रोह और क्रांति का पथ चुना। वह विवाह भी इसलिए करना चाहता है कि उसकी पत्नी क्रांति के मार्ग में प्रेरणास्पद हो – ''उस पत्नी से क्या होगा जो खाली पतिव्रता हैं? मुझे चाहिए एक प्रतिभा जो पतिव्रता चाहे न हो, पर अटूट हो। जो विपत्तियों में ऐसे चमके जैसे घोर घन में बिजली। मुझे माता भी चाहिए, मुझे दासी भी चाहिए। लेकिन सबसे अधिक मुझे चाहिए वह, जो स्फूर्ति की मंत्र हो, जिसमें प्रेम इतना हो जो हिंसा से डरे नहीं। जो लाल लहू बहता देखे, बहने दे पर शान्ति का स्वप्न जिसका अखण्ड रहे।'' 'त्यागपत्र' की मृणाल में भी बहिर्मुखी प्रवृत्ति दिखाई देती है। सामाजिक बंधनों के प्रति विद्रोह की भावना होने पर भी समाज के अस्तित्व को नष्ट नहीं करना चाहती। ''मैं समाज को तोड़ना–फोड़ना नहीं चाहती हूँ। समाज टूटा कि फिर हम किसके भीतर बनेंगे या किसके भीतर बिगड़ेंगे। इसलिए मैं इतना ही कर सकती हूँ कि समाज से अलग होकर उसकी मंगलाकांक्षा में खुद ही टूटती रहूँ।'' इसके विपरीत उसका भतीजा प्रमोद अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का व्यक्ति है। अन्तर्मुखी भावुक व्यक्तित्व होने के कारण बुआ की मृत्यु के आघात को नहीं झेल पाता। वह अपने को अपराधी समझता है और इसी अपराध भावना से ग्रस्त हो जजी से त्यागपत्र दे देता है। इसी तरह 'व्यतीत' का जयन्त

अन्तर्मुखी व्यक्ति है जो अनिता के प्रेम में विफल होकर कविताएँ लिखने लगता है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि जैनेन्द्र के उपन्यासों को समझने में मनोवैज्ञानिक दृष्टि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनके चरित्रों को मनोविज्ञान के आलोक में अच्छी तरह समझ सकते हैं।

11.4.3 अज्ञेय के उपन्यास

अज्ञेय बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। उन्होंने केवल तीन उपन्यास लिखकर हिन्दी उपन्यास साहित्य में विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया। अज्ञेय के उपन्यासों में मानव–मन की कलात्मक अभिव्यक्ति है।

'शेखर : एक जीवनी' हिन्दी का महत्वपूर्ण एवं अज्ञेय का पहला उपन्यास है। 'शेखर : एक जीवनी' में एक व्यक्ति के जीवन–चरित्र के विकास को लेकर कथानक की संरचना की गई है। डॉ. देवराज उपाध्याय इसकी विशिष्टता की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं – ''अज्ञेय का शेखर हिन्दी का प्रथम उपन्यास है जिसमें शिशु मानस के सपनों को, आनन्द प्रधान जीवन की झाँकियों को, उसके कौतुहल और जिज्ञासाओं को उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों पर माता–पिता के व्यवहार या यों कहिये Reality Principles के सम्पर्क से उत्पन्न दमन को, मानसिक ग्रन्थियों को तथा उनके जीवनव्यापी प्रभावों को कथा क्षेत्र में लाने का प्रयत्न किया गया है।''

'शेखर : एक जीवनी' के शेखर में बाल्यकाल से जीवन एवं मृत्यु के सम्बन्ध में जिज्ञासा का भाव देखने को मिलता है किन्तु उसकी जिज्ञासाओं का उचित समाधान न होने के कारण उसकी प्रवृत्तियाँ सामाजिक रूप से विकसित नहीं हो पाती। यही कारण है कि जीवन प्रवृत्ति के सक्रिय होने पर उसके मन में प्रेम–दया आदि की भावना उत्पन्न होती है और मृत्यु के सक्रिय होने पर घृणा, हिंसा, विद्रोह की भावना उसके चरित्र में दृष्टिगोचर होती है।

'शेखर : एक जीवनी' का शेखर अन्तर्मुखी है। वह अपने आपको सबसे अलग और कटा–कटा अनुभव करता है। लोगों के स्नेह और तिरस्कार–दोनों का उस पर गहरा प्रभाव पड़ता है। ''वह अकेला था। अनुभव कर रहा था कि मैं अकेला हूँ और यह भी अनुभव कर रहा था कि मैं इस प्रकार का नहीं हूँ जिसे लोग अलग समझते हैं, सबका भुलाया हुआ यहाँ खड़ा हूँ।'' अज्ञेय के दूसरे उपन्यास 'नदी के द्वीप' का भुवन भी अन्तर्मुखी है। वह एकान्तप्रिय है तथा अपने ढंग से जीना चाहता है। उसे अपने निजी जीवन में किसी प्रकार का सामाजिक अवरोध अच्छा नहीं लगता है।

'शेखर : एक जीवनी' के शेखर में काम–भावना की प्रधानता परिलक्षित होती है और इसी की आपूर्ति में वह अस्त–व्यस्त रहता है। शेखर के जीवन में बहुत सी नारियाँ आती है जिनका उसके जीवन पर अलग–अलग प्रभाव पड़ता है। 'नदी के द्वीप' में बाह्य रूप से नीरस लगने वाला भुवन रेखा के प्रथम संस्पर्श से रोमांचित हो उठता है और उसकी समस्त अतृप्त इच्छाएँ जाग्रत हो जाती है। इसी तरह बाह्य रूप से विरक्त दिखने वाली रेखा भी यौन भावनाओं से अछूती नहीं है। वह भुवन के प्रति समर्पण में ही अपने जीवन की पूर्णता मानती है।

'नदी के द्वीप' के भुवन में इड, ईगो, सुपरईगो का अन्तर्द्वन्द्व दिखाई पड़ता है। रेखा के संसर्ग से उसे शारीरिक तथा मानसिक सुख की प्राप्ति होती है किन्तु सामाजिक बन्धन

के कारण अचेतन में पड़े संस्कार उसे रेखा के प्रति आकर्षण अनुभव में बाधा उत्पन्न करते हैं। इसी उपन्यास के एक पात्र चन्द्रमाधव में हीनता ग्रन्थि है। चन्द्रमाधव साधारण व्यक्तित्व वाला व्यक्ति है अतः वह कुछ ऐसा नहीं कर पाता जिससे वह जीवन में असाधारणता पा सके और इससे उसके मन में हीनता ग्रन्थि का निर्माण हो जाता है। इसी तरह 'अपने–अपने अजनबी' के 'योके' में 'सेल्मा' के कारण हीन भावना उत्पन्न होती है। योके और सेल्मा बर्फ के काठघर में दब गए हैं, सेल्मा बुढ़िया है तथा कैन्सर की मरीज है अतः वह मृत्यु से डरती नहीं वरन् उसकी प्रतीक्षा करती है। योके युवा है, सुन्दर है उसमें जीवन की कामना हैं अतः वह मृत्यु के डर से खुश नहीं रह पाती और अपने मन में हीन भावना का अनुभव करती है।

अज्ञेय ने अपने उपन्यासों में मानसिक क्रियाओं का सजीव चित्रण किया है। उन्होंने पात्रों के मन में उठने वाली प्रत्येक भावना को विस्तार से शब्द प्रदान किये हैं, दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि मन की गहराइयों को छानने का सफल प्रयास किया है।

11.4.4 इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की परम्परा में इलाचन्द्र जोशी का नाम उल्लेखनीय है। जोशीजी मनोविज्ञान के महत्त्व को स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि फ्रायड, एडलर और युंग ने मनोविज्ञान से संबंधित कुछ ऐसे नये सिद्धांतों की खोज की जिसने मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक प्रचण्ड क्रांति की लहर उत्पन्न कर दी। उन्होंने अनेक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की रचना की है।

'संयासी' उपन्यास के नन्दकिशोर में इड, ईगो, तथा सुपरईगो का अन्र्द्वन्द्व दिखाई पड़ता है। वह कहता है – ''प्रेम के सम्बन्ध में सिद्धांत रूप में मेरा आदर्श कितना ही ऊँचा क्यों न हो, पर यथार्थ में वह वास्तविक जगत की प्रकृतिगत पंकिलता से लिप्त होने के लिए भीतर ही भीतर व्याकुल ही रहा था'' इसी तरह 'जहाज का पंछी' उपन्यास का नायक गरीब लोगों अर्थात् अभावग्रस्त लोगों के लिए चिन्तित है। लीला के संसर्ग से उसे व्यक्तिगत सुखों की प्राप्ति हो गई जिससे उसका इड तो संतुष्ट हो गया लेकिन यह सुख क्षणिक सिद्ध हुआ। आत्मा के जाग्रत होने पर उसके मन में सुपर ईगो तथा इड के मध्य संघर्ष छिड़ जाता हैं। इसी क्रम में हम 'सुबह के भूले' के 'गिरिजा' को देख सकते हैं। गिरिजा जब अपने वर्ग से बिल्कुल अलग वर्ग के लोगों के बीच में जाती है तो उसका मन अन्तर्द्वन्द्व के कारण अशान्ति अनुभव करता है। यद्यपि उसका ईगो इस अन्तर्द्वन्द्व को शान्त करने का रास्ता ढूँढ़ता है और एक सीमा तक वह इसमें सफल भी होती है किन्तु उसके अनजाने में उसके मन में अन्तर्द्वन्द्व छिड़ा रहता है और इसी कारण ईगो की चेष्टा के बाद भी अशान्ति महसूस करती है। गिरिजा का इड उच्च वर्ग की फैशनपरस्ती और ठाठ–बाट से प्रभावित होता है किन्तु सुपर ईगो उसे उसके संस्कारों की याद दिलाता है। उसका ईगो इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि यह सुख उसे अशांति प्रदान करने वाला होगा। लेकिन इड की सुखमूलक भावना प्रबल होकर उसके मन में अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न करती है।

'प्रेत और छाया' का पारसनाथ अपने को जारज सन्तान समझने लगता है और इसके परिणामस्वरूप उसमें हीनता ग्रंथि जन्म ले लेती है। इस हीनता ग्रन्थि के कारण वह विवाह के बन्धन को स्वीकार करने में असमर्थ पाता है। ग्रंथि के खुल जाने पर हीरा के परिणय सूत्र में बंध जाता है। 'पर्दे की रानी' की नायिका निरंजना स्वभाव एवं संस्कारों

से स्नेहशील एवं परिश्रमी है। युवा होने पर जब उसे पता चलता है कि वह एक वेश्या की पुत्री है तो उसके अन्दर हीनता ग्रंथि का निर्माण हो जाता है। इसी तरह 'निर्वासित' उपन्यास का नायक महीप अपने बबुआ रूप के कारण हीनता की भावना का शिकार हो जाता है। वह जिसे प्रेमिका समझकर प्यार करता है उसके मन में अपने प्रति वात्सल्य भाव पाता है। प्रिया द्वारा स्वयं को बालक समझा जाना उसको अन्दर तक तोड़कर रख देता है। परिणामस्वरूप वह अपनी व्यक्तित्व शक्ति की स्वाभाविकता को खो देता है।

इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी दोनों प्रकार के पात्र हैं। 'लज्जा' उपन्यास का राजू अन्तर्मुखी चरित्र है। उसने अल्पायु में ही दर्शन व राजनीति शास्त्र के बड़े–बड़े जटिल ग्रन्थों का अध्ययन किया है। उसके भीतर ज्ञान की पिपासा है। माता–पिता, भाई–बहनों के स्नेह, प्रेम से घिरा होने पर भी अपने को एकदम अकेला महसूस करता है। विश्वव्यापी अन्याय, अत्याचार, घोर नैराश्य एवं दुख के कारण उसका हृदय व्यथित होता है। अन्ततः वह आत्महत्या कर बैठता है। इसके विपरीत उसकी बहन लज्जा बहिर्मुखी प्रवृत्ति की है। स्कूल तथा कॉलेज में वह सभी लड़कियों के आकर्षण का केन्द्र बनी रहती है। उसे अपने सुन्दर रूप का बोध है और उससे पुरूषों को आकृष्ट करने का प्रयत्न करती है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में मनोविज्ञान स्पष्ट रूप से प्रतिफलित हुआ है।

11.5 सारांश

- मनोविज्ञान और साहित्यकार दोनों ही व्यक्ति को समझने का प्रयास करते हैं अतएव मनोविज्ञान और साहित्य में घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप मनोविज्ञान तथा उसके साहित्य के साथ सम्बन्धों पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- मनोविश्लेषण मनोविज्ञान की एक पद्धति है। साहित्य को समझने एवं उसके मूल्यांकन में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप फ्रायड, एडलर तथा युंग के मनोविश्लेषण सम्बन्धी सिद्धांतों को बता सकेंगे।
- हिन्दी उपन्यास में मनोवैज्ञानिक तत्त्व बहुतायत से मिलते हैं। जैनेन्द्र, अज्ञेय एवं इलाचन्द्र जोशी हिन्दी के प्रमुख मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप साहित्य को समझने में मनोविश्लेषणात्मक शोध प्रविधि का उपयोग कर सकेंगे।

11.6 शब्दावली

इड – इदम्

ईगो – अहम्

सुपरईगो – पराहम्

दिवास्वप्न – अकर्मण्य एवं निराश व्यक्ति का बैठे–बैठे हवाई किले बनाना, अवास्तविक।

संश्लेषणात्मक – जोड़ना, मिलाना सम्बन्धी

स्मृतिभ्रंश – स्मृति का नष्ट हो जाना, याद न रहना

दमित – दमन किया हुआ

परिरक्षण – हर तरह से रक्षा करना

जैव – जीव सम्बन्धी

पंकिलता – गंदगी

नैराश्य – निराशा

संप्रेषित – भेजा/पहुँचाया हुआ

अनुवांशिकता – वंशानुगत

संवेदना – अनुभूति

अंतर्द्वन्द्व – आन्तरिक संघर्ष

11.7 संदर्भ ग्रन्थ

- सहगल डॉ.मनमोहन : हिन्दी शोध तंत्र की रूपरेखा, पंचशील प्रकाशन, द्वि.सं. 1989 जयपुर ।
- शर्मा डॉ. विनय मोहन : शोध–प्रविधि, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, प्र.सं. 1973, दरियागंज, नई दिल्ली ।
- हिन्दी साहित्य निकेतनः बिजनौर द्वारा प्रकाशित 'शोध संदर्भ श्रृंखला' (1, 2, 3, 4)
- उपाध्याय डॉ. देवराज : आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान ।
- मिश्र डॉ. भागीरथ : पाश्चात्य कावयशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी ।
- उपाध्याय डॉ. देवराज : जैनेन्द्र के उपन्यासों का–मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली ।
- सिंहल सतीभूषण : साहित्यिक शोध के आयाम, आर्य बुक डिपो, दिल्ली ।
- सिंहल बैजनाथ : शोध स्वरूप एवं मानक व्यवहारिक कार्यविधिः प्रथम संस्करण 1995 नई दिल्ली।

सहायक पुस्तकें

- अज्ञेय – शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप
- जैनेन्द्र – त्यागपत्र, सुनीता .
- प्रेमचन्द – निर्मला, सेवासदन, कायाकल्प

11.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मनोविज्ञान की परिभाषा देते हुए मनोविज्ञान के किन्हीं तीन क्षेत्रों का संक्षेप में उल्लेख करिए।

2. मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के निर्माण में साहित्य की क्या भूमिका है? स्पष्ट कीजिए।

3. फ्रायड का स्वप्न सिद्धांत क्या है? स्पष्ट कीजिए। मानव व्यक्तित्व के विकास के सम्बन्ध में फ्रायड एवं एडलर के नत वैभिन्य को स्पष्ट कीजिए।

4. एडलर का 'हीनता ग्रन्थि' से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए।

5. युंग के अनुसार मन के कितने स्तर होते हैं? युंग ने कला एवं साहित्य का उद्गम स्रोत किसे स्वीकार किया है?

6. 'शेखर : एक जीवनी' उपन्यास के नायक शेखर के चरित्र की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

7. 'प्रेत और छाया' का पारसनाथ हीनता ग्रंथि का शिकार क्यों होता है?

8. 'शेखर : एक जीवनी' के शेखर के व्यक्तित्व का विश्लेषण कीजिए।

□

इकाई–12 विषय का चयन, वर्गीकरण एवं रूपरेखा

इकाई की रूपरेखा

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 शोध की अवधारणा

12.3.1 शोध विषय का चयन

12.3.2 शोध के विविध क्षेत्र : सामान्य परिचय

12.3.3 हिन्दी शोध विषयों के विविध क्षेत्र (वर्गीकरण)

12.3.4 चयनित विषयों का प्रामाणिक निदर्शन

12.4 वर्गीकरण : विषयानुरूप विश्लेषण

12.5 शोध विषय की रूपरेखा

12.5.1 रूपरेखा की निर्माण प्रक्रिया : उल्लेख्य बिन्दु

12.5.2 रूपरेखा का अनुसंधानात्मक निर्देशन

12.6 सारांश

12.7 संदर्भ ग्रन्थ

12.8 अभ्यास प्रश्न

12.1 उद्देश्य

शोध प्रविधि के खण्ड शोध सामग्री संकलन व लेखन पद्धति से सम्बद्ध इकाई में शोध–विषय का चयन, वर्गीकरण एवं रूपरेखा सम्बन्धी बिन्दु दिये जा रहे हैं। इस इकाई को पढने के बाद आप–

- शोध सामग्री संकलन एवं लेखन पद्धति से जुड़े बिन्दुओं से परिचित हो सकेंगे।
- शोध का स्वरूप, शोध विषयों का चयन, शोध–विषय की नवीनता एवं मौलिकता, से परिचित हो सकेंगे ।
- शोध विषय के अनुसंधानगत विविध क्षेत्र एवं शोध–विषयों का प्रामाणिक निर्देशन को समझ सकेंगे ।

12.2 प्रस्तावना

शोध के पारिभाषिक एवं तात्विक स्वरूप की जानकारी के बाद इस इकाई में शोध सम्बन्धी विषय के चयन, वर्गीकरण एवं विषय के अनुसार संक्षिप्तद्व सारगर्भित, योजनाबद्ध एवं व्यवस्थित रूपरेखा निर्माण की प्रक्रिया से आपको परिचित कराया जा रहा है। शोध विषय एवं रूपरेखा के प्रामाणिक निर्देशन से आपको स्वयं शोध विषय चयन एवं तदनुसार रूपरेखा बनाने की जानकारी एवं अभ्यास हो सकेगा।

12.3 शोध की अवधारणा

शोध, अनुसंधान, गवेषणा एवं अन्वेषण सभी शब्द पर्यायवाची हैं और अंग्रेजी के 'रिसर्च' शब्द के समानार्थी शब्द के रूप नें प्रचलित हैं। शोध शब्द एक प्रकार की शुद्धि, संशोधन, संस्कार या परिष्कार का वाचक है। अनुसंधान का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है– पीछे लगकर सम्यक रूप से किसी विषय को धारण करना, उसका निरीक्षण–अन्वेषण कर, उसका लक्ष्य संधान करना। शोध या अनुसंधान वस्तुतः अज्ञात तथ्यों की खोज या ज्ञात तथ्यों का अन्वेषणपरक पुनराकलन है। अंग्रेजी के रिसर्च शब्द के पुनः खोजने के अर्थ में ज्ञात तथ्यों के वस्तुनिष्ठ, तर्कसम्मत, प्रामाणिक एवं व्यवस्थित पुनःअनुशीलन या अन्वेषण का स्पष्ट संकेत है। एकाग्र एवं तन्मय भाव से वस्तुनिष्ठ दृष्टि रखते हुए नवीन ज्ञानवर्द्धक सामग्री या निष्कर्ष की प्रस्तुति या समस्त तथ्यों का प्रामाणिक, नवीन, मौलिक अनुशीलन ही अनुसंधान या शोध है। अनुसंधान विच्छिन्न सम्बन्ध–सूत्रों का पुनः संधान या तर्कसम्मत व्यवस्थापन है। अतः विषय चयन से लेकर शोध–प्रस्तुति तक संकल्पबद्ध जिज्ञासा, चयनित विषय का ज्ञान, अनवरत अध्ययन सामग्री–संचय, शोध–विषय की व्यवस्थित एवं सार्थक रूपरेखा, निरीक्षण, परीक्षण, वर्गीकरण, मौलिक निष्कर्षण एवं सशक्त अभिव्यक्ति कौशल शोध–प्रक्रिया के अपरिहार्य अंग हैं।

12.3.1 शोध विषय का चयन

किसी भी शोध कार्य को प्रारम्भ करने का सबसे पहला और प्रमुख बिन्दु है समुचित और सार्थक शोध विषय का चयन। शोध–प्रक्रिया में शोध–प्रविधि के निर्धारित मानदण्डों की अनुपालना आवश्यक है। सर्वप्रथम वैज्ञानिक दृष्टि, तटस्थता एवं उत्कट जिज्ञासा के साथ नवीन एवं मौलिक शोध विषय का चयन करके ही शोध–प्रक्रिया की सफल और सार्थक दिशा का संधान किया जा सकता है। डॉ. विनयमोहन शर्मा के अनुसार वैलनिक शोध के निम्नांकित सोपान हैं:–

1. विषय चयन और उसके लक्ष्य की परिकल्पना
2. सामग्री संचयन
3. सामग्री का विश्लेषण
4. शोध निष्कर्ष

शोध विषय जिस परिणाम या निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए चुना गया है, उसकी अवधारणा या परिकल्पना के बिना प्रामाणिक शोध कार्य सम्भव नहीं है। परिकल्पना सिद्धान्त या शोध–निष्कर्ष को सिद्ध करने के अनुरूप उपलब्ध तथ्यों या सामग्री के प्रकाश में शोधक के समक्ष सुनिश्चित परिकल्पना होनी चाहिए। परिकल्पना के बाद विषय क्षेत्र से सम्बन्धित सामग्री चयन, उसका वर्गीकरण–विश्लेषण, व्यापक गहन अध्ययन, तदनुसार शोध की रूपरेखा का निर्धारण आदि सोपान शोध–प्रक्रिया को सही दिशा में प्रवृत्त करते हैं।

शोध–विषय चयन के उल्लेख्य बिन्दु

शोध–विषय–चयन के लिए निम्नांकित बिन्दुओं को ध्यान में रखना आवश्यक भी है औरस महत्वपूर्ण भी है:–

- विषय शोधार्थी की रुचि एवं सामर्थ्य के अनुरूप होना चाहिए।

- विषय सर्वथा नवीन, मौलिक एवं शोध की दिशा की सार्थक प्रभाव क्षमता में संचालित होना चाहिए।
- शोध–विषय अपने प्रस्तावित शोध–लक्ष्य की दृष्टि में सुनिश्चित, सुस्पष्ट, सुसम्बद्ध एवं अतिव्याप्ति से मुक्त होना चाहिए। विषय का क्षेत्र इतना विस्तृत न हो कि शोध की सही दिशा और सार्थक निष्कर्ष का संतुलन आहत हो जाये।
- शोध विषय चयन के लिए यह भी आवश्यक है कि उससे सम्बद्ध उपलब्ध सामग्री प्रामाणिक अन्वेषण को सार्थकता प्रदान कर सके।
- शोध विषय का शोधार्थी को व्यापक एवं गहन ज्ञान होना चाहिए। इसके लिए तर्कनिष्ठ संकल्पबद्धता एवं अनवरत अध्ययन की महत्ता असंदिग्ध है।
- चयनित विषय का अनुसंधान ऐसा सांगोपांग अनुशीलन या विश्लेषण है जिसमें उद्‌देश्यपूर्ण निरीक्षण, सूक्ष्म पर्यवेक्षण के साथ तर्कसम्मत संगति स्थापन एवं प्रमाणपुष्ट व्याख्या का सामर्थ्य सतत् अपेक्षित है।

12.3.2 शोध के विविध क्षेत्र : सामान्य परिचय

किसी भी विषय में अनुसंधानपरक अध्ययन के विविध क्षेत्र उपलब्ध हैं। शोध की दिशाएँ एवं सम्भावनाएँ विस्तृत एवं व्यापक हैं। हिन्दी साहित्य और भाषा के अनुसंधित्सु के लिए साहित्य, भाषा, इतिहास, संस.ति हिन्दी साहित्य के इतिहास की विविध धाराएँ एवं प्रवृत्तियाँ, साहित्यकार विशेष के .तित्व, विशिष्ट रचना, पाठालोचन के अतिरिक्त साहित्यशास्त्र तथा हिन्दीतर साहित्य के तुलनापरक अनुशीलन आदि विभिन्न क्षेत्रों से सम्बद्ध शोध–विषय हो सकते हैं।

शोध–विषय या उसका क्षेत्र चुनने से पहले यह आवश्यक है कि विभिन्न विश्वविद्यालयों में अब तक पंजी.त या स्वी.त हो चुके शोध विषयों की जानकारी प्राप्त की जाये ताकि शोध–अध्ययन की पुनरावृत्ति से बचा जा सके। हिन्दी–शोध साहित्य में कई बार यह देखा जाता है कि कोई भी शोधार्थी किसी भी सामान्य या प्रचलित विषय को लेकर शोध–कार्य शुरु कर देता है। पुराने शोध–कार्यों की पुनरावृत्ति या पिष्टपेषण के प्रचलन से किसी भी विषय में स्तरीय तथा मौलिक अनुसंधान की दिशा प्रशस्त नहीं हो सकती। अतः विषय चयन तथा शोध क्षेत्र चयन से पूर्व नवीनता एवं मौलिकता की संकल्पबद्ध निष्ठा बहुत आवश्यक है।

अतः शोध कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व शोधार्थी एवं उसके निर्देशक दोनों से यह अपेक्षा रहती है कि वे विभिन्न विश्वविद्यालयों में हुए शोध कार्यों की सामान्य जानकारी का यथासम्भव प्रयास करें तथा उसी के परिप्रेक्ष्य में नवीन शोध दिशा का संधान व चयन करें।

इस दिशा में डॉ. सत्येन्द्र, डॉ. उदयभानुसिंह आदि विद्वानों ने हिन्दी में विश्वविद्यालयीय शोध कार्यों को सूचीबद्ध करने में उल्लेखनीय कार्य किया है। हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर द्वारा प्रकाशित शोध संदर्भ (भाग 1, 2, व 3) श्रृंखला में हिन्दी में अद्यतन पंजी.त/स्वी.त शोध–विषयों को सूचीबद्ध किया गया है। यहाँ शोधार्थियों की जानकारी एवं उपयोग के लिए हिन्दी विषय क्षेत्रों का वर्गीकरण प्रस्तुत है:–

12.3.3 हिन्दी शोध विषयों के विविध क्षेत्र (वर्गीकरण)

आदिकालीन साहित्य

अपभ्रंश साहित्य	रासो साहित्य
काव्यरूप	वीर काव्य
जैन साहित्य	सिद्ध और नाथ साहित्य
डिंगल	काव्य

मध्यकालीन साहित्य

काव्यशास्त्र	लोकतत्व
काव्यरूप	संगीत
नारी	संस्कृति
प्रभाव	समाज
प्रवृत्तियाँ	सौंदर्यशास्त्र
भक्ति और दर्शन	तुलनात्मक
मनोविज्ञान	

मध्यकाल : संतकाव्य

काव्यशास्त्र	भाषा
गुरुग्रंथ साहित्य	संस्कृति, लोक और समाज
दर्शन एवं भक्ति	तुलनात्मक
प्रभाव	विविध

मध्यकाल : सूफीकाव्य

काव्यशास्त्र	स्त्रोत
प्रभाव	तुलनात्मक
लोक समाज संस्कृति	
सूफी मत और साधना	

मध्यकाल : कृष्णकाव्य

उपासना	रास व लीलादर्शन
काव्यशास्त्र	संस्कृति समाज
चरित्र–सृष्टि	सौंदर्यशास्त्र
परम्परा और विकास	तुलनात्मक
प्रभाव	

मध्यकाल : रामकाव्य

काव्यशास्त्र

चरित्र–सृष्टि

परम्परा

भक्ति दर्शन

तुलनात्मक

रीतिकालीन साहित्य

काव्यशास्त्र

जैन साहित्य

प्रबन्धकाव्य

प्रभाव

प्रवृत्तियाँ

भक्ति तत्व

संगीत

संस्कृति समाज

सौंदर्यशास्त्र

स्वच्छन्द काव्य

तुलनात्मक

आधुनिककालीन साहित्य

उपन्यास

आंचलिकता

ऐतिहासिकता

कालविशेष और उपन्यास

जीवन–मूल्य

धर्म–संस्कृति

नारी

नैतिकता

परिवार

पात्र–सृष्टि

प्रभाव

प्रेम–निरूपण

भाषा

मनोविज्ञान

राजनीति

राष्ट्रीयता

लघु उपन्यास

वस्तु (शिल्प और शैली)

वाद, विचार और प्रवृत्तियाँ

विकास

व्यक्ति

समाज

तुलनात्मक

कथा साहित्य

प्रभाव

प्रवृत्तियाँ

मनोविज्ञान

कहानी

नारी

विकास

प्रभाव

प्रवृत्तियाँ

मनोविज्ञान

वस्तु (शिल्प–शैली)

समाज और जीवन

तुलना

काव्य

काव्य–चिन्तन (वस्तु–शिल्प)

काव्यरूप

खण्डकाव्य

गीतिकाव्य

प्रबन्धकाव्य

महाकाव्य

काव्यशास्त्र

धर्म–दर्शन

नारी

परम्परा प्रयोग

प्रभाव

ब्रजभाषा काव्य

भक्तिकाव्य

भाषा

मनोविज्ञान

मानव

राष्ट्रीयता

लोकतत्व

छायावाद और स्वच्छंदतावाद

काव्यादर्श

काव्य–चिन्तन

दर्शन

नारी

प्रभाव

भाषा

प्रवृत्ति

युग, समाज, संस्कृति

सौंदर्यशास्त्र

तुलना

विविध

प्रगतिवाद

प्रयोगवाद और नई कविता

विकास

वीरकाव्य

संस्कृति, समाज, राजनीति

सौंदर्यशास्त्र

स्त्रोत

हास्य और व्यंग्य

तुलनात्मक

काव्यशास्त्र

अलंकार

काव्यगुण

काव्यदोष

रस

शब्द–शक्ति

सम्प्रदाय

छंद	तुलना
नायक–नायिका भेद	विविध

गद्य विधाएँ

आत्मकथा	ललित निबंध
जीवनी–साहित्य	संस्मरण
निबन्ध	विविध
रेखाचित्र	

गद्य साहित्य

विकास	तुलना
व्यंग्य	

नाटक

अनुवाद	यथार्थवादी नाटक
उद्भव और विकास	युग और नाटक
एकांकी	रंगमंच
ऐतिहासिक नाटक	राष्ट्रीयता और संस्‍ति
गीतिनाट्य	रेडियो नाटक
नारी	समस्या नाटक
पात्र–सृष्टि	समाज
पौराणिक नाटक	साहित्य–चिन्तन (वस्तुशिल्प)
प्रतीक नाटक	हास्य–व्यंग्य
प्रभाव	तुलनात्मक
मनोविज्ञान	

पत्रकारिता

बाल साहित्य

इतिहास (भाषा)	रूपविज्ञान
काव्य–भाषा	लिपि–विज्ञान
भाषा और बोली	वाक्य–विज्ञान
भाषावैज्ञानिक अध्ययन	शब्द–विज्ञान
वर्णनात्मक अध्ययन	व्युत्पत्ति
भाषा और बोलीःसामान्य परिचय	शब्द–समूह

भाषा–विज्ञान
भाषा साहित्य

अर्थविज्ञान
व्याकरण

कोषविज्ञान
तुलनात्मक अध्ययन

ध्वनिविज्ञान

मुहावरे और लोकोक्तियाँ

तुलनात्मक

लोक साहित्य

लोककथाएँ
लोकनाट्य

लोकगीत
लोक–साहित्य

लोकगीत : तुलनात्मक

समीक्षा और आलोचना

हिन्दी काव्य : सामान्य

काव्यरूप
तुलनात्मक

काव्यशास्त्र

विभिन्न वाद

हिन्दी साहित्य : सामान्य

काव्यशास्त्र
विभिन्न वाद

नारी
संस्कृति, समाज, राजनीति

प्रभाव
हास्य व्यंग्य

योगदान
तुलना

राष्ट्रीयता

हिन्दी साहित्य का इतिहास

साहित्यकार विशेष

अज्ञेय

अमृतलाल नागर
चन्दवरदाई

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
चतुरसेन शास्त्री

आलम
जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'

इलाचन्द्र जोशी
जयशंकर प्रसाद

उदयशंकर भट्ट
काव्य

उपेन्द्रनाथ अश्क
कबीर
  जीवन–दर्शन
  भाषा
  संस्कृति और समाज
  तुलना
कुतुबन
केशवदास
गजानन माधव मुक्तिबोध
गोरखनाथ
सेठ गोविन्ददास
घनानन्द
भाषा
मनोविज्ञान
मानव और मानवता
राजनीति
लोकतत्व
संस्कृति
समाज
सूक्तियाँ
सौंदर्यशास्त्र
स्त्रोत
तुलना
विविध
दादूदयाल
देव
नन्ददास
नन्ददुलारे वाजपेयी
नगेन्द्र
कामायनी
कथा–साहित्य
गद्य साहित्य
नाटक साहित्य
प्रसाद साहित्य
तुलना
जायसी
जैनेन्द्र कुमार
तुलसीदास
  काव्य–चिन्तन
  जीवन–परिचय
  नारी
  नीति
  प्रभाव
  भक्ति–दर्शन
बिहारी
भगवतीचरण वर्मा
भगवतीप्रसाद वाजपेयी
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
भिखारीदास
भूषण
मंझन
मतिराम
महादेवी वर्मा
महावीरप्रसाद द्विवेदी
माखनलाल चतुर्वेदी
मीरां
मुल्ला दाऊद
मैथिलीशरण गुप्त

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	मोहन राकेश
नागार्जुन	यशपाल
नानक	रसखान
नाभादास	रहीम
पं. पद्मसिंह शर्मा	रांगेय राघव
पद्माकर	रामकुमार वर्मा
पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'	रामचन्द्र शुक्ल
पुष्पदंत	रामधारी सिंह 'दिनकर'
प्रेमचन्द	रामनरेश त्रिपाठी
जीवन–दर्शन	रामवृक्ष बेनीपुरी
शिल्प	राहुल सांकृत्यायन
संस्कृति	लक्ष्मीनारायण मिश्र
मानव–समाज	विद्यापति
तुलनात्मक	विश्वनाथ सिंह
बाँकीदास	विष्णुदास
सुमित्रानंदन पंत	वृंदावनलाल वर्मा
सूरति मिश्र	शांतिप्रिय द्विवेदी
सूरदास	श्रीराम शर्मा
काव्य–चिन्तन	सियारामशरण गुप्त
धर्म–दर्शन	सुभद्राकुमारी चौहान
भाषा	तुलना
मनोविज्ञान	सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
लोक–समाज	सेनापति
स्त्रोत	हजारीप्रसाद द्विवेदी
हरिकृष्ण प्रेमी	हरिवंशराय बच्चन

सम्प्रदाय विशेष

पंथ सम्प्रदाय	
कबीर पंथ	निरंजनी सम्प्रदाय
चैतन्य सम्प्रदाय	निर्गुण सम्प्रदाय

दादू पंथ | राधावल्लभ सम्प्रदाय
नाथ सम्प्रदाय | राधास्वामी सम्प्रदाय
निम्बार्क सम्प्रदाय | रामसनेही सम्प्रदाय
वल्लभ सम्प्रदाय | विविध सम्प्रदाय

12.3.4 चयनित विषयों का प्रामाणिक निदर्शन

विषय–चयन एवं हिन्दी शोध–विषयों के विविध क्षेत्रों के वर्गीकरण की जानकारी निश्चय ही शोध–कार्य के सम्यक् एवं समुचित प्रवर्तन में सहायक होगी। शोधार्थियों के मार्गदर्शन हेतु यहाँ हिन्दी के कुछ चुनिन्दा शोध विषयों के प्रामाणिक एवं व्यावहारिक निदर्शन की दृष्टि से हिन्दी गीतिकाव्य एवं हिन्दी साहित्य से सम्बद्ध कुछ विषय प्रस्तुत हैं:–

गीतिकाव्य

आधुनिक हिन्दी काव्य में आख्यानक प्रगीतों का अनुशीलन,

छायावादोत्तर श्रृंगारपरक गीतिकाव्य का अनुशीलन,

छायावादोत्तर हिन्दी गीतिकाव्य में सामाजिक तनावों की अभिव्यक्ति,

दक्खिनी हिन्दी के शोकगीत,

साठोत्तर हिन्दी गीत साहित्य का सौंदर्यशास्त्रीय अनुशीलन

साठोत्तर हिन्दी सिने गीत : वस्तु–शिल्प,

गीतकार द्वारिकाप्रसाद चौधरी,

स्वातंत्र्योत्तार गीतिकाव्य का अध्ययन,

स्वातंत्र्योत्तर गीतिकाव्य का शिल्प–विधान (सन् 1947 से 1970 तक)

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गीतिकाव्य एक अध्ययन

हिन्दी अभिनव गीतिकाव्य (1960–75)

हिन्दी गीतिकाव्य : एक सामान्य विवेचन,

हिन्दी नवगीत : एक अनुशीलन,

हिन्दी नवगीत का आलोचनात्मक अध्ययन,

हिन्दी फिल्मों में साहित्यिक गीत एवं गीतकार,

हिन्दी सम्बोध गीतों का विश्लेषणात्मक अध्ययन,

हिन्दी साहित्य का इतिहास

आधुनिक मैथिली साहित्य का इतिहास,

आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास–दर्शन,

दक्खिनी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास,

दक्षिण में सर्जनात्मक हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन,

भारतीय नारी–प्रतिरूपों का ऐतिहासिक सर्वेक्षण,

जनार्दन

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन : एक पुनर्मूल्यांकन,

मुद्रित हिन्दी साहित्य की सन् 1928 से 1978 तक प्रकाशित ग्रंथपुटियों एवं प्रलेखन सूचियों का आलोचनात्मक अध्ययन,

शूरसेन जनपद का इतिहास,

साहित्यिक इतिहास की अवधारणाएँ : हिन्दी साहित्य में पुनर्जागरण की अवधारणा,

साहित्येतिहास दर्शन की दृष्टि से हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक विकास–प्रक्रिया का अध्ययन,

हिन्दी में प्रगतिवादी आंदोलन का आलेखात्मक इतिहास,

हिन्दी साहित्य की इतिहास–परम्परा और विकास,

हिन्दी साहित्य के इतिहास की प्रवृत्तियों का इतिहास : दर्शन के परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन,

हिन्दी साहित्य के इतिहास–ग्रंथ,

हिन्दी साहित्य के इतिहास–ग्रंथों का विकासात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन, काशी विद्यापीठ,

हिन्दी साहित्य ग्रंथों के आधार पर सोलहवीं शताब्दी विक्रमी के समाज का विश्लेषणात्मक अध्ययन,

हिन्दी साहित्य के इतिहास–लेखन की परम्परा,

हिन्दी साहित्येतिहास के स्त्रोत

12.4 वर्गीकरण : विषयानुरूप विश्लेषण

शोध विषय का चयन एवं शोध सामग्री निर्धारित हो जाने पर गुप्तबद्ध रूपरेखा निर्माण हेतु संचित शोध सामग्री को व्यवस्थित एवं तर्कसम्मत ढंग से संयोजित एवं विश्लेषित करना भी अपेक्षित है। शोध सामग्री का यह गुप्तबद्ध एवं तथ्यपरक संयोजन एवं विश्लेषण ही वर्गीकरण कहलाता है। वर्गीकरण विषय की रूपरेखा एवं शोध कार्यों के क्रमबद्ध तथा संतुलित लेखन में सहायक होता है। तथ्यों के विश्लेषण तथ गुप्तबंधन के आधार पर शोध प्रबंध में रूपरेखा गुप्तबन्ध होती है तथा शोध संधान की स्पष्ट दिशा एवं प्रमाणपुष्ट निष्कर्षों की सिद्धि होती है।

वर्गीकरण के व्यावहारिक निदर्शन हेतु डॉ. विनयमोहन शर्मा ने डॉ. सत्येन्द्र की भारतेन्दु हरिश्चन्द्र विषयक काव्य सम्बन्धी परिकल्पना का उदाहरण प्रस्तुत किया है। उनकी परिकल्पना है कि भारतेन्दु ब्रजभाषा के संधि युग के कवि थे। इस धारणा की पुष्टि के लिए उन्होंने पहले तथ्य सामग्री एकत्र की तथा फिर काव्य सामग्री का इस प्रकार वर्गीकरण किया:–

भारतेन्दु का ब्रजभाषा काव्य

नवोन्मुखी

1. **मध्ययुगोन्मुखी**

भक्ति विषयक, रीति–शैली, अन्य।

इसी तरह नागार्जुन के काव्य में यथार्थ बोध एवं व्यंग्य विधान के विश्लेषण को निम्नांकित बिन्दुओं में वर्गी.त किया जा सकता है:–

यथार्थ बोध की भंगिमाएँ :

सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक वैषम्य, ग्रामीण जीवन, आंचलिक स्पर्श, प्रगतिवादी चेतना, यथार्थ की प्रयोगशील छवियाँ।

12.5 शोध विषय की रूपरेखा

विषय चयन और शोध सामग्री के विश्लेषण के साथ ही विषय की रूपरेखा का भी शोध प्रक्रिया में बहुत अधिक महत्व है। शोध की रूपरेखा जितनी सुस्पष्ट, व्यवस्थित, सर्वांगीण, कमबद्ध होगी, शोध की दिशा भी उतनी ही सुगम और सार्थक होगी तथा शोध प्रबन्ध भी सारगर्भित, सम्पूर्ण, सफल और स्तरीय होगा। शोध आवेदन के समय ही शोध की रूपरेखा प्रस्तुत करने की स्थिति में प्रायः शोधार्थी अस्थायी रूपरेखा या शीर्षकों– उपशीर्षकों को योजनाबद्ध कर प्रस्तुत कर देते हैं जिसमें शोधकार्य होने तक आवश्यकतानुसार संशोधन एवं विस्तार होता रहता है। कुछ विश्वविद्यालयों में शोध प्रबन्ध की प्रस्तुति के समय रूपरेखा देने का प्रावधान है। यह स्थिति अधिक न्यायसंगत है, क्योंकि इसमें उपलब्ध शोध सामग्री एवं निष्कर्षों के आधार पर सम्पूर्ण प्रबन्ध की समग्र छवि रूपरेखा में रूपायित हो जाती है। प्रारम्भिक रूपरेखा संक्षिप्त एवं अस्थायी भले ही हो, उसका सुस्पष्ट, वस्तुनिष्ठ एवं सर्वांगीण होना आवश्यक है ताकि तद्नुसार स्पष्ट दिशा प्रवृत्त हो सके। सिर्फ शीर्षक उपशीर्षक को सतही तौर पर सूचीबद्ध कर देने से रूपरेखा अपूर्ण एवं अपर्याप्त रह जाती है। उदाहरणार्थ, 'तुलसी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व' पर निम्नांकित रूपरेखा द्रष्टव्य है:–

प्रथम अध्याय : तुलसीकालीन स्थिति

द्वितीय अध्याय : तुलसी का व्यक्तित्व एवं जीवन–चरित्र

तृतीय अध्याय : तुलसी का .तित्व

चतुर्थ अध्याय : तुलसी–काव्य की आलोचना

पंचम अध्याय : उपसंहार।

उक्त रूपरेखा को देखकर ऐसा लगता है कि जैसे किसी निबन्ध का प्रस्तावित रूप हो। इसमें यह स्पष्ट नहीं होता कि शोधार्थी तुलसी के अध्ययन से किस अध्याय में क्या प्रतिपादित करना चाहता है। इस प्रकार की उड़न–छू या टेलीग्राफिक शैली की अधूरी एवं सतही रूपरेखा से शोध अध्ययन सही एवं लक्षित दिशा में प्रवृत्त नहीं हो सकता है।

इसी अस्पष्ट एवं कोरे शीर्षक वाली आधी–अधूरी रूपरेखा का सही प्रारूप तब बनेगा

जब उसके प्रत्येक अध्याय में प्रतिपाद्य सामग्री का वस्तुनिष्ठ एवं समग्र विवरण दिया जाये। यथा–

- **पहला अध्याय :** तुलसीकालीन परिवेश एवं परिस्थितियाँ – सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्.तिक, साहित्यिक। तुलसी पर परिवेशगत प्रभाव।

- **दूसरा अध्याय :** तुलसी का रचनात्मक व्यक्तित्व एवं संक्षिप्त जीवनवृत्त – तुलसी के व्यक्तित्व की छवि, जन्म–तिथि, बाल्य–संस्कार, पारिवारिक पृष्ठभूमि, आन्तरिक साक्ष्य, बाह्य साक्ष्य, विभिन्न मत, निष्कर्ष।

- **तृतीय अध्याय :** तुलसी का रचना–संसार – तुलसी की काव्य–.तियों का सामान्य परिचय, रामचरित मानस, विनयपत्रिका, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, रामलला नहछू आदि।

- **चतुर्थ अध्याय :** तुलसी की काव्य–कला : भावपक्ष – जीवन–दर्शन, प्रकृति–चित्रण, वर्णन–सौंदर्य। कलापक्ष – छंद, अलंकार, बिम्ब रचना, प्रतीकात्मकता आदि। तुलसी की काव्य–कला का अप्रतिम उन्मेष।

- **पंचम् अध्याय :** उपसंहार – तुलसी का हिन्दी काव्य में वैशिष्ट्य एवं महत्व, शोधगत निष्कर्षों का समाहार।

12.5.1 रूपरेखा निर्माण की प्रक्रिया : उल्लेख्य बिन्दु

शोध की रूपरेखा सम्बन्धी उपर्युक्त विवेचन के आधार पर रूपरेखा–निर्माण की प्रक्रिया के कुछ उल्लेख्य बिन्दु निम्नांकित हैं:–

- रूपरेखा निर्माण से पूर्व चयनित शोध विषय से सम्बद्ध सामग्री संचय करना एवं उसकी सामान्य जानकारी प्राप्त करना अपेक्षित है।

- रूपरेखा न तो इतनी संक्षिप्त हो कि मात्र अध्यायगत शीर्षकों का उल्लेख भर कर दिया जाये और न इतनी विस्तृत हो कि उसका ओर–छोर ही पता न चले।

- रूपरेखा के अध्यायों में वर्णनीय विषयों के बोधगम्य संकेत देना आवश्यक है।

- शोध विषय की रूपरेखा शीर्षक मात्र न होकर वर्णनात्मक क्रमबद्धता में होनी चाहिए। उसमें प्रतिपाद्य शोध विषय से सम्बद्ध सभी दिशाएँ सर्वथा स्पष्ट होनी चाहिए।

- रूपरेखा सम्पूर्ण शोध कार्य की आधारभूत पूर्व पीठिका है। अतः प्रत्येक अध्याय के तथ्यपरक बिन्दुओं का विवरण उपशीर्षकों में प्रस्तुत करना अनिवार्य है ताकि प्रस्तावित शोध प्रतिपाद्य सही दिशा में प्रतिफलित एवं निष्पन्न हो सके।

- रूपरेखा शोध–विषय से प्रत्यक्षतः सम्बद्ध, सार्थक एवं सोद्देश्य होनी चाहिए। शोध विषय में समाहित शब्द योजना का सार्थक प्रतिपादन अध्याय शीर्षकों एवं उपशीर्षकों में स्पष्टतः प्रतिबिम्बित होना शोध–प्रविधि की दृष्टि से आवश्यक है।

- प्रत्येक अध्याय प्रस्तावित शीर्षक के रूप में न होकर उस शीर्षक का विस्तार करने वाली विषय वस्तु के विवरण से संवलित होना चाहिए।

- रूपरेखा तैयार करने से पूर्व शोध विषय से सम्बन्धित समस्त प्रकाशित–अप्रकाशित

साहित्य और समीक्षा का अध्ययन करने से ही उसकी सुस्पष्ट क्रमबद्धता एवं प्रामाणिक स्तरीयता सिद्ध हो सकेगी।

- प्रारम्भिक रूपरेखा प्रस्तावित शोध प्रबन्ध की आधारशिला है, किन्तु वह स्थिर एवं जड़ नहीं है, बल्कि एक सतत विकासमान प्रक्रिया है। शोध सामग्री के गहन एवं व्यापक अध्ययन के समय उसमें कुछ संशोधन या परिशोधन सहज ही हो जाता है।

12.5.2 रूपरेखा का अनुसंधानात्मक निदर्शन

विषय–चयन, वर्गीकरण एवं उससे सम्बद्ध तथ्यों की उक्त जानकारी के बाद उससे सम्बद्ध शोध रूपरेखा की व्यावहारिक तथा प्रामाणिक जानकारी देने के लिए यहाँ कुछ स्वी.त शोध प्रबन्धों की रूपरेखा का निदर्शन प्रस्तुत हैः–

नागार्जुन के काव्य में यथार्थ बोध एवं व्यंग्य–विधान

भूमिका : छायावादोत्तर नयी काव्यधारा – (प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता) उद्भव, विकास एवं प्रवृत्तिगत स्वरूप, नागार्जुन की विशिष्ट भूमिका

प्रथम अध्याय : नागार्जुन का रचनात्मक व्यक्तित्व, जीवन–परिचय एवं रचना–संसार

द्वितीय अध्याय : यथार्थबोध एवं व्यंग्य–विधान – पारिभाषिक तथा तात्विक स्वरूप, यथार्थ एवं व्यंग्य का साहचर्य एवं अन्तःसम्बन्ध, साहित्य में यथार्थ एवं व्यंग्य की सार्थक भूमिका।

तृतीय अध्याय : आधुनिक हिन्दी काव्य में यथार्थ बोध एवं व्यंग्य–विधान की परम्परा : भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, प्रगतिवादी काव्य में यथार्थ बोध, प्रयोगवाद तथा नयी कविता एवं व्यंग्य कविता में यथार्थ बोध, नागार्जुन का वैशिष्ट्य।

चतुर्थ अध्याय : नागार्जुन के काव्य में यथार्थ बोध की भंगिमाएँ–सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक वैषम्य, ग्रामीण जीवन, आंचलिक स्पर्श, प्रगतिवादी चेतना, यथार्थ की प्रयोगशील छवियाँ।

पंचम अध्याय : नागार्जुन के काव्य में व्यंग्य विधान –

(i) व्यंग्य– व्यंजना शक्ति का रचनात्मक एवं कलात्मक उपकरण।

(ii) व्यंग्य के कथ्यगत परिप्रेक्ष्य – विसंगति, असंगति, वैषम्य, आडम्बर, रूढ़ि एवं अंधविश्वास, मानवीय दुर्बलता, अनाचार आदि।

(iii) नागार्जुन के काव्य में व्यंग्य की रचनात्मक छवियाँ – सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्तिक, नैतिक, धार्मिक।

षष्ठम् अध्याय : नागार्जुन के काण्व्य में यथार्थ बोध एवं व्यंग्य प्रयोग का रचनात्मक एवं कलात्मक संयोजन

सप्तम अध्याय : उपसंहार –

(i) नयी कविता में नागार्जुन का वैशिष्ट्य, महत्व एवं योगदान

(ii) शोधगत निष्कर्षों का समाहार।

हिन्दी रेखाचित्र : स्वरूप और विकास

भूमिका : विषय की शोधपरक महत्ता एवं विशिष्टता

प्रथम अध्याय : हिन्दी गद्य की विधाएँ तथा रेखाचित्र

उपन्यास, कहानी, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, निबन्ध, यात्रावृत्त, डायरी, रिपोर्ताज, वार्ता, गद्यकाव्य एवं रेखाचित्र।

द्वितीय अध्याय : रेखाचित्र : परिभाषा एवं तात्विक स्वरूप

व्युत्पत्तिपरक अर्थ, चित्रकला और स्केच, परिभाषा, परिभाषा, तात्विक स्वरूप– कथ्य एवं भाव संवेदन, शिल्प–विधान, भाषा, कथन–भंगिमा, बिम्ब–विधान, प्रतीक रचना, उपमान–विधान, रचना–प्रक्रिया : वैशिष्ट्य, विधागत प्रभावान्विति।

तृतीय अध्याय : रेखाचित्र एवं संस्मरण : तुलनात्मक आकलन

कथ्य, शिल्प–विधान एवं रचना–प्रक्रिया

समानता एवं असमानता निष्कर्ष।

चतुर्थ अध्याय : हिन्दी रेखाचित्र का उद्‌भव एवं विकास–क्रम

पंचम अध्याय : हिन्दी के प्रमुख रेखाचित्रकार

पद्‌मसिंह शर्मा

श्रीराम शर्मा

बनारसीदास चतुर्वेदी

राजा राधिकारमण

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

महादेवी वर्मा

रामवृक्ष बेनीपुरी

शिवपूजन सहाय

माखनलाल चतुर्वेदी

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर

प्रकाशचन्द्र गुप्त

देवेन्द्र सत्यार्थी

अज्ञेय

विष्णु प्रभाकर

भगवतीचरण वर्मा

रामधारी सिंह दिनकर

जैनेन्द्र कुमार

रायकृष्ण दास

विनय मोहन शर्मा

षष्ठम् अध्याय : हिन्दी रेखाचित्र : कथ्यगत अनुशीलन

व्यक्तिपरक

आत्मचरितपरक

वस्तुपरक

घटना विषयक

परिवेश–रेखांकन

भावपरक

विचारपरक

यात्रा–चित्र

कथ्यगत वैशिष्ट्य–भाव–तरलता, सूक्ष्म संवेदन, सूत्रबद्धता, चित्रांकन, वस्तुपरक राग तत्व।

सप्तम् अध्याय : हिन्दी रेखाचित्र : शिल्प विधान

भाषा संरचना : शब्द–चयन, लाक्षणिकता और व्यंजकता, मूर्त शब्दांकन, प्रवाह, भाषिक प्रभाव का कलात्मक उन्मेष।

शैली वैशिष्ट्य : विभिन्न कथन–भंगिमाओं का रूपांकन।

आलंकारिक अभिव्यक्ति

चित्रांकन और बिम्ब–विधान

प्रतीक–रचना

अभिव्यक्तिगत प्रभावान्विति

उपसंहार

- रेखाचित्र का विधागत वैशिष्ट्य एवं महत्व
- शोधगत निष्कर्षों का समाहार

12.6 सारांश

इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी शोध–विषय के चयन, वर्गीकरण व रूपरेखा बनाने की प्रक्रिया से अवगत हो गए है। शोध में विषय–चयन की अपनी महत्ता है। विषयों से सम्बन्धित तथ्यों को एकत्र करना, उनका आकलन व वर्गीकरण करना तथा विश्लेषण व संश्लेषण द्वारा तथ्यों में निहित सत्य का उद्‌घाटन करना शोधार्थी का लक्ष्य होता है। इसके लिए इसे शोध विषय का वर्गीकरण व विषयानुरूप विश्लेषण, शोध विषय की रूपरेखा के निर्माण की प्रक्रिया तथा रूपरेखा का अनुसंधानपरक निदर्शन की समुचित जानकारी प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है।

12.7 संदर्भ ग्रन्थ

- सहगल डॉ.मनमोहन : हिन्दी शोध तंत्र की रूपरेखा, पंचशील प्रकाशन, द्वि.सं. 1989 जयपुर ।
- शर्मा डॉ. विनय मोहन : शोध–प्रविधि, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, प्र.सं. 1973, दरियागंज, नई दिल्ली ।
- हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर द्वारा प्रकाशित शोध संदर्भ श्रृंखला (1, 2, 3, 4)

12.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. शोध की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2. शोध–विषय चयन एवं उसके विविध क्षेत्रों का परिचय दीजिए।
3. शोध–विषय की रूपरेखा बनाने के उल्लेख्य बिन्दुओं को स्पष्ट करते हुए किसी एक विषय की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।

इकाई–13 सामग्री संकलन

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 सामग्री संकलन की पूर्व पीठिका

13.2.1 शोध सामग्री संकल्प का समारम्भ

13.3 संकलित की जाने वाली सामग्री के प्रकार

13.3.1 अंतः साक्ष्य सामग्री

13.3.2 बाह्य साक्ष्य सामग्री

13.3.3 अंतः और बाह्य साक्ष्य सामग्री का अन्तर

13.3.4 प्रत्यक्ष अंतः साक्ष्य सामग्री

13.3.5 अप्रत्यक्ष अन्तः साक्ष्य सामग्री

13.3.6 क्या रचनाओं के पात्रों के विचार लेखक के ही विचार होते हैं ?

13.4 शोध सामग्री के स्त्रोत

13.4.1 पुस्तकालयों से सामग्री संकलन

13.4.2 संदर्भ पुस्तकों से सामग्री संकलन

13.4.3 संस्थाओं से सामग्री संकलन

13.4.4 व्यक्तियों से सामग्री संकलन

13.4.5 साक्षात्कार/प्रश्नावलियों सामग्री संकलन

13.5 शोध सामग्री संकलन की विधियाँ

13.5.1 सामग्री संकलन की रजिस्टर प्रणाली

13.5.2 सामग्री संकलन का कार्ड प्रणाली

13.5.3 संकलित सामग्री का व्यवस्थापन

13.6 शोध सामग्री संकलन के आधारभूत सिद्धान्त

13.6.1 सार सार को गहि रहे थोथा देहिं उड़ाय

13.6.2 धारे रहे नीर क्षीर विवेक

13.6.3 थामे रहो पतंग की डोर

13.7 संदर्भ ग्रन्थ

13.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.0 उद्देश्य

शोध या अनुसंधान किसी भी दिए गए विषय के अज्ञात सत्यों का संकलन कर उनका व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुतीकरण है। प्रत्येक शोध–प्रयास वर्तमान से अतीत की ओर गमन की जाने वाली शोध–यात्रा होती है।

इस यात्रा के लिए प्रत्येक शोधार्थी को विविध प्रकार के आन्तरिक एवं बाहरी स्रोतों से शोध विषय से सम्बन्धित उचित सामग्री का संकलन करना पड़ता है। शोध का विषय एवं रूपरेखा को विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत कर दिए जाने पर सामग्री संकलन से ही शोधार्थी के शोध कार्य की शुरूआत होती है। दिए गए विषय के लिए कैसी सामग्री संकलित की जानी चाहिए। अंतःसाक्ष्य और बाह्य साक्ष्य क्या होते हैं तथा रचनाओं में उनकी प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष अभिव्यक्तियाँ किस तरह हुआ करती है ? सामग्री कहाँ–कहाँ से प्राप्त करनी है? सामग्री का संकलन और उनकी नोटिंग कैसे की जाती है? इन सभी विषयों की जानकारी प्राप्त करना प्रत्येक शोधार्थी के लिए अनिवार्य है। इस प्रकार सामग्री संकलन के कार्य को किसी भी शोध प्रयास की रीढ़ की हड्डी की संज्ञा दी जाती है। प्राप्त एवं संकलित सामग्री पर ही शोध प्रबन्ध लिखा जाता है अतः सामग्री संकलन के समस्त आयामों की जानकारी प्राप्त करना प्रत्येक शोधार्थी के लिए परम आवश्यक है।

शोध का स्वरूप एवं प्रविधि से संबंधित इस खण्ड में शोध सामग्री संकलन एवं लेखन पद्धति को समाहित किया गया है। इस इकाई में सामग्री संकलन के समस्त आयामों की जानकारी दी जा रही है। इस इकाई को पढ़कर आप –

- सामग्री संकलन की पूर्व पीठिका को समझ सकेंगे।
- अंतः और बाह्य सामग्री क्या होती है ? जान सकेंगे।
- प्रत्यक्ष अन्तःसाक्ष्य और अप्रत्यक्ष अन्तः साक्ष्य के अंतर को समझ सकेंगे।
- कैसी शोध सामग्री संकलित की जानी चाहिए ? जान सकेंगे।
- सामग्री कहाँ से प्राप्त की जानी चाहिए? इसे जान सकेंगे।
- शोध सामग्री कैसे संकलित की जाती है? इसे जान सकेंगे।
- शोध सामग्री संकलन के आधारभूत सिद्धान्तों के बारे में जान सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

किसी भी शोध प्रबन्ध लेखन में सामग्री संकलन का कार्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है। दिए गए विषय से सम्बन्धित उचित सामग्री का संकलन कर शोधार्थी उपलब्ध तथ्यों के आधार पर नवीन स्थापनाएँ करता है। उसकी दृष्टि आलोचक की दृष्टि नहीं होती है जो कृति के सौंदर्य उदघाटन को अधिक महत्त्व देता है। शोधार्थी कृति के सौंदर्य से उदासीन रहते हुए उसमें नए अज्ञात सत्यों को खोजने का कार्य करता है। वह मोती खोजने के लिए पानी में गोते नहीं लगाता है, वरन् टार्च लेकर समुद्र के गर्भ में स्थित एक–एक वस्तु, जीव–जन्तु, आन्तरिक संरचनाओं की खोज करने हेतु जल में उतरता है। इसके लिए वह दिए गए विषय से सम्बन्धित समस्त प्रकार की जानकारियों, विवरणों को रचना के भीतर से या अन्यान्य स्रोतों से जुटाता है। वह बाहें भर–भर कर सामग्री संगृहीत नहीं करता है वरन सामग्री की प्रामाणिकता की बारीकी से जाँच–पड़ताल करते

हुए एक–एक मोती को सहेजता है। अन्तःसाक्ष्य से प्राप्त हो या बाह्य साक्ष्यों से, वह चारों तरफ नजर दौड़ाते हुए सामग्री का संकलन करता है।

शोध प्रबन्ध में इसी कारण सामग्री संकलन पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाता है। संकलित सामग्री कैसी है ? विषय से सम्बन्धित है या नहीं ? सामग्री कैसे संकलित की जानी चाहिए? कहाँ–कहाँ से की जानी चाहिए? तथा कैसे की जानी चाहिए? ये कुछ बातें हैं जिनको ध्यान में रखकर ही एक अच्छे शोध प्रबन्ध की आधारभूत सामग्री एकत्रित की जा सकती है। शोध कार्य में सबसे प्रमुख बात यह है कि वह पाठकों को सर्वथा अनदेखी, अनजानी, अनछुई तहों का संस्पर्श करवाता है। वह ज्ञात सत्यों की व्याख्या नहीं करता है, अज्ञात तथ्यों के परिपार्श्व में नवीन सत्यों की स्थापनाएँ किया करता है। शोधार्थी का यह सारा प्रयास उसके द्वारा की जाने वाली सामग्री संकलन पर निर्भर करता है। इसी आधार पर इस इकाई में आपके समक्ष सामग्री संकलन से सम्बन्धित समस्त प्रकार की जानकारियाँ दी गई हैं। इन्हें पढ़कर आप स्वयं एक अच्छे शोधार्थी की तरह किसी भी विषय पर शोध कार्य कर सकने की निपुणता प्राप्त कर सकेंगे, संकलित सामग्री की उचित सुरक्षा कर सकेंगे एवं किस विधि से संदर्भ पुस्तकों आदि से सामग्री संकलित की जाए इसकी जानकारी भी प्राप्त कर सकेंगे। पूरी सूचनाएँ कैसे इकट्ठा की जाये इसको भी जान सकेंगे क्योंकि अधूरी सूचना का एकत्रीकरण शोध प्रणाली का उल्लंघन करना माना जाता है। आपको एक कुशल सामग्री संकलनकर्ता बनाने में यह इकाई पूरी तरह से समर्थ रहेगी।

13.2 सामग्री संकलन की पूर्व पीठिका

किसी भी शोध प्रबन्ध के सामान्यतः निम्नलिखित चार प्रमुख अंग होते हैं –

1. विषय का चुनाव
2. रूपरेखा निर्माण
3. सामग्री संचयन
4. शोध प्रबन्ध का लेखन

इनमें शोध सामग्री के संचयन का कार्य सभी शोध प्रयासों की रीढ़ की हड्डी कहा जा सकता है। शोधार्थी के द्वारा किसी भी विषय का चुनाव उसकी रुचि एवं शोध की संभावनाओं को देखते हुए किया जाता है। विषय का चुनाव करते समय उसे सिर्फ इन बातों को ध्यान में रखना होता है कि चुने गए विषय से सम्बन्धित सामग्री पर्याप्त रूप में उपलब्ध है या नहीं है। इसके अलावा शोध विषय का चुनाव करते समय उसे विषय के औचित्य का निर्धारण भी करना पड़ता है। इसके लिए उसे यह देखना होता है कि चुने गये विषय की उपयोगिता कितनी है। उसे यह भी ध्यान मे रखना होता है कि चुना गया विषय न तो बहुत बड़ा हो और न बहुत छोटा क्योंकि विस्तृत विषय में शोधार्थी के विषय से भटक जाने की पूरी सम्भावना रहती है तो छोटे विषय में उसके लिए यह प्रतिपादित करना कठिन हो जाता है कि चुना गया विषय वास्तव में शोध कार्य करने लायक है भी या नहीं। जिस विषय से सर्वथा नवीन अज्ञात बातें स्पष्ट की जा सकती हैं वह उतना ही अच्छा शोध विषय माना जाता है।

शोध हेतु विषय का चुनाव कर लिए जाने पर शोध कार्य के दूसरे अंग रूपरेखा निर्माण पर कार्य किया जाता है। अपने निर्देशक के निर्देशानुसार शोधार्थी चुने गये विषय की

रूपरेखा (सिनोप्सिस) का निर्माण करता है। शोध कार्य कितने अध्यायों में किया जाएगा? प्रत्येक अध्याय का शीर्षक क्या होगा और उसमें किन–किन बिन्दुओं को शोध प्रयास में समेटा जाएगा? उनके उप शीर्षक क्या–क्या होंगे ? इत्यादि तथ्यों के आधार पर रूपरेखा बनाई जाती है।

शोध कार्य में शोध का विषय चयन तथा शोध विषय की रूपरेखा निर्माण में शोधार्थी का प्रयास अनुसर्ता का होता है। वह विश्वविद्यालय के नियमों एवं शोध निर्देशक के निर्देशों के अनुसार शोध की रूपरेखा तैयार करता है। यह सब कार्य हो जाने पर शोध सामग्री संकलन का कार्य प्रारम्भ होता है।

13.2.1 शोध सामग्री संकलन का समारम्भ

शोध प्रबन्ध की रूपरेखा तैयार हो जाने एवं उसे विश्वविद्यालय द्वारा शोध कार्य हेतु स्वीकृत कर लिए जाने पर शोधार्थी को अपने शोध प्रयासों का समारम्भ विषय से सम्बन्धित सामग्री को एकत्रित करने के रूप में करना चाहिए। सामग्री का संचयन तभी किया जा कसता है जब शोधार्थी के सामने किए जाने वाले शोध कार्य एवं उसके लिए अपेक्षित शोध सामग्री की तस्वीर पूरी तरह से स्पष्ट हो। शोध सामग्री संकलित करने के प्रयास शुरू करने से पूर्व ही शोधार्थी को यह ज्ञात होना चाहिए कि उसे कैसी सामग्री संकलित करनी है, वह सामग्री कहाँ मिलेगी और उसे कैसे संकलित किया जाये।

गवेषणात्मक आलोचना के रूप में शोध कार्य को भी समीक्षा के अन्तर्गत ही देखा जाता है। लेकिन अनुसंधान और आलोचना में अन्तर होता है। डॉ. शशिभूषण सिंहल के अनुसार, "शोध का क्षेत्र रचना का रहस्य (तंत्र) है और आलोचना का क्षेत्र रचना का मर्म (सौंदर्य) है। क्षेत्र के अनुसार दोनों के कर्त्तव्य–कर्म का क्षेत्र रचना का मर्म (सौंदर्य) है। क्षेत्र के अनुसार दोनों के कर्त्तव्य–कर्म भिन्न हैं, शोधक उद्घाटन करता है तो आलोचक सम्प्रेषण।" शोधार्थी रचनाओं के सौंदर्य पर रीझता या खीझता नहीं है बल्कि एक प्रकार से उसे काव्य सौंदर्य से कोई प्रत्यक्ष प्रयोजन ही नहीं रहता है। उसका उद्देश्य रचना की अच्छाइयों–बुराइयों को प्रकट करना नहीं होता है। उसका उद्देश्य रचना में निहित अनदीखती बात को उजागर करना होता है। इसलिए उसकी यात्रा ज्ञात तथ्यों से अज्ञात तथ्यों तक पहुँचने की होती है। लेकिन यहीं एक सच्चे शोधार्थी के शोध कार्य की परीक्षा होती है।

ज्ञात से अज्ञात तक कैसे पहुँचा जाय? इसको अंधों और हाथी की प्रसिद्ध कथा से समझा जा सकता है। इस कथा के अनुसार कुछ अंधों को हाथी का वर्णन करने को कहा गया। इसके लिए उन्हें हाथी के शरीर का स्पर्श करवाया गया। एक ने उसके पेट का स्पर्श किया तो उसने हाथी को ढोल जैसा बतलाया, दूसरे ने उसके पैरों का स्पर्श कर उसे खम्भे जैसा बतलाया, तीसरे ने उसके कानों का स्पर्श कर उसे छाजले जैसा बतलाया तो चौथे ने उसकी सूँड का स्पर्श कर उसे केले के तने जैसा बतलाया। इस प्रकार एक ही सत्य के संदर्भ बदल जाने से वे सभी अलग–अलग निष्कर्षों पर जा पहुँचे। इसलिए शोधार्थी की सामग्री– संचयन की यात्रा प्रारम्भ से ही यदि गलत दिशा में उन्मुख हो जाती है तो उसका शोध प्रयास भी गलत दिशा में जा सकता है।

अतः शोधार्थी को शोध प्रबंध लिखने से पूर्व ही सामग्री–संकलन से सम्बन्धित आवश्यक बातों की जानकारी प्राप्त कर लेना जरूरी है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि

किसी भी शोध प्रयास हेतु सामग्री संकलन की यात्रा इन तीन बातों पर निर्भर करती है–

1. उसे कैसी शोध सामग्री संकलित करनी है ?
2. उसे शोध सामग्री कहाँ–कहाँ से संकलित करनी है?
3. उसे शोध सामग्री कैसे संकलित करनी है ?

यहाँ इन तीन बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा कर शोध सामग्री संकलन के स्वरूप को स्पष्ट किया जा रहा है।

13.3 संकलित की जाने वाली सामग्री के प्रकार

शोध सामग्री के आधार भूत साक्ष्यों की जानकारी से पहले यह जान लेना जरूरी है कि शोध कार्य में तथ्य स्वयं नहीं बोलते हैं शोधार्थी उन्हें वाणी देता है। शोधार्थी के सामने परिणाम नहीं होते हैं परिणामों तक तो उसे पहुँचना होता है। विषय–चयन करते समय उसे शोध परिणाम का झीना सा पूर्वाभास मात्र होता है। उसी आभास को आधार बनाकर उसे अपने शोध कार्य की दिशा तय करनी होती है। यह सब शोध प्रयास के मूल कार्य सामग्री संकलन पर निर्भर करता है। अनुसंधित्सु को सबसे पहले संग्रहीत की जाने वाली सामग्री के विविध स्रोतों की जानकारी प्राप्त कर लेना जरूरी हे।

किसी भी दिए गए शोध विषय से सम्बन्धित सामग्री दो प्रकार की होती है –

1. अंतःसाक्ष्य
2. बाह्य साक्ष्य

यहाँ संक्षेप में इन दोनों की जानकारी प्राप्त कर लेना जरूरी है।

13.3.1 अंतःसाक्ष्य सामग्री

उसके अंतर्गत ये ग्रन्थ देखे जा सकते है –

(क) रचनाकारों से सम्बन्धित आधारभूत ग्रन्थ

(ख) काव्य / कथा संकलनों तथा

(ग) रचनाकारों की प्रकाशित–अप्रकाशित रचनाएँ तथा

(घ) साहित्यकारों से संबंधित परिचय इत्यादि पुस्तकीय सामग्री रखी जा सकती है।

13.3.2 बाह्य साक्ष्य सामग्री

बाह्य साक्ष्य की सामग्री चार रूपों में उपलब्ध होती है –

(1) प्राचीन साहित्यिक सामग्री

(2) प्राचीन ऐतिहासिक स्थान एवं उनसे संबंधित सामग्री

(3) शिलालेख, वंशावलियाँ एवं इसी तरह की अन्य प्रामाणिक सामग्री, तथा

(4) जनश्रुतियाँ, किंवदन्तियाँ, कवि प्रसिद्धियाँ इत्यादि रखी जा सकती हैं।

ध्यान देने की बात है कि आदर्श शोध के लिए (अपवाद रूप में कतिपय शोध विषयों को

छोड़कर जिनका विषय ही इन स्त्रोतों से संकलित सामग्री पर निर्भर करता हो) बाह्य सामग्री अधिक विश्वसीय और प्रामाणिक सामग्री नहीं मानी जाती है। अतः अच्छे शोध प्रबन्धकार के लिए अन्तःसाक्ष्यों से ही अधिकाधिक आधारभूत सामग्री का संकलन किया जाना ही उचित है।

13.3.3 अंतःसाक्ष्य और बाह्य साक्ष्य सामग्री का अन्तर

अंतःसाक्ष्य और बाह्य साक्ष्य के अन्तर को कवियों के द्वारा किए गए प्रयासों के उदाहरणों से समझा जा सकता है। छायावाद के समय से ही छन्दों, अलंकारों की रूढ़िबद्धता अब कवियों को खलने लगी थी। उन्हें लगता था कि ये नियम कवि वाणी पर अनावश्यक नियंत्रण रखे हुए है। अतः उनका प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष विरोध शुरू हुआ।

13.3.4 प्रत्यक्ष अंतःसाक्ष्य सामग्री

कुछ अंतःसाक्ष्य प्रत्यक्ष होते हैं। छायावाद के उपर्युक्त प्रसंग के संदर्भ में प्रत्यक्ष कथनों में पन्त की इन पंक्तियों को लिया जा सकता है जिनमें वे स्पष्ट ही अलंकारों, अनुप्रासों, छंदो आदि को नए भावबोध की अभिव्यक्ति के लिए अनुपयोगी मानते हुए उनका विरोध करते हैं –

1. तुम जन मन में वहन कर सको मेरे विचार।
   वाणी मेरी चाहिए, तुम्हें क्या अलंकार।।
2. खुल गए छन्द के बन्ध, प्रास के रजत पाश।
   अब वाणी हो गई मुक्त औ युगधारा बहती अयास।।

इसी तरह प्रयोगवादी कविता के दौर में परम्परित उपमानों की उपयोगिता पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए अज्ञेय ने भी कहा था –

'ये उपमान मैले पड़ गए हैं
देवता इनके कर गए हैं कूच
कभी बासन अधिक घिसने से
मुलम्मा छूट जाता है'

ये सभी उद्धरण शोधार्थियों के लिए 'प्रत्यक्ष' अन्तःसाक्ष्य के स्पष्ट प्रमाण कहे जा सकते हैं। रचनाकारों के द्वारा विषय विशेष को ही यहाँ प्रतिपाद्य बनाया गया है। यहाँ कविता और काव्यशास्त्र संबंधी विषयों पर कवि के अपने विचार मिलकर एकरूप हो गए हैं। यहाँ कविता भी है और विषय विशेष से संबंधित कवि के विचार भी प्रत्यक्ष प्रस्तुत किए गए हैं।

तुलसीदास की 'कवितावली' में उन्होंने स्वयं के जीवन प्रसंगों को कविता का विषय बनाकर प्रस्तुत किया है। 'माँग कै खाईबो, मसीत में सोइबो' या 'चार चनों को चार फल' जैसा बतलाना उनकी अनाथकालीन दुःखद दशा को व्यक्त करता है। तुलसी के जातीय भावना सम्बन्धी विचार भी 'काहू की बेटी सौं बेटा न ब्याहब' जैसी पंक्तियों में व्यक्त हुए हैं। ये सभी प्रत्यक्ष अंतःसाक्ष्य के प्रमाण कहे जा सकते हैं, क्योंकि इनमें रचनाकार स्वयं विषय विशेष पर अपने विचार प्रत्यक्षतः प्रकट कर रहा है।

13.3.5 अप्रत्यक्ष अंतःसाक्ष्य सामग्री

ये वे अन्तः साक्ष्य हैं जो रचनाकारों के द्वारा अपनी रचनाओं में तो प्रस्तुत किए गए है लेकिन उन्हें रचनाओं का प्रत्यक्ष विषय नहीं बनाया गया है। ऊपर दिए गए छन्द, अलंकार संबंधी पन्त के उद्धरण प्रत्यक्ष अन्तःसाक्ष्य की सामग्री है, लेकिन पन्त ने ही 'पल्लव' की भूमिका में इसी विषय पर बड़े विस्तार से विवेचन किया है। निराला ने भी परिमल की भूमिका में मुक्त छन्द आदि के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किए है। ये सभी अप्रत्यक्ष अन्तःसाक्ष्य की सामग्री हैं। इसी तरह कवियों 'कालिदास हजारा' या शिवसिंह 'सरोज' जैसे ग्रन्थ जिनमें कवियों के जीवन और साहित्य को संकलित किया गया है अप्रत्यक्ष अंतःसाक्ष्य का प्रमाण है।

13.3.6 क्या रचनाओं के पात्रों के विचार लेखक के ही विचार होते हैं ?

यहाँ यह प्रश्न विचारणीय है कि क्या रचनाओं के पात्रों द्वारा विषय विशेष के सम्बन्ध में प्रस्तुत किए गए विचार शोधार्थी के लिए उचित सामग्री हो सकते है या नहीं ? यह अत्यंत पेचीदा मसला है जिसके लिए हाँ या ना में स्पष्ट संकेत नहीं दिया जा सकता है। इसके लिए न सिर्फ अपवादों के लिए पूरी गुंजाइश है वरन् कुछ शर्तों, सीमाओं को ध्यान में रखना भी जरूरी है। इसे कुछ उदाहरणों से समझा जा सकता है। जैसे प्रसाद की राष्ट्रीय भावना के लिए उनके स्कंदगुप्त, चन्द्रगुप्त, सिंहरण, अलका जैसे पात्रों के सम्वाद रूप में प्रस्तुत विचार स्वयं प्रसाद जी के विचारों के रूप में उपस्थित किए जा सकते हैं। इसके विपरीत 'रामचरितमानस' में समुद्र का यह कथन–

ढोर गँवार शूद्र पशु नारी।

सकल ताड़ना के अधिकारी।।

क्या तुलसीदास की विचाराधारा का प्रतिनिधित्व कर रहा है या प्रसंग की आवश्यकता के अनुरूप यह सिर्फ एक पात्र का विचार है? इसे छाँटना शोधार्थी के लिए टेढी खीर होती है। 'गोदान' में प्रो. मेहता साम्यवाद का विरोध करते हैं या नारी को वोट देने के अधिकार को धोखा कहते हैं तो ऐसे प्रसंग प्रेमचन्द के विचार माने जाएँ या कथानक के अनुरूप पात्र के चरित्र निर्माण की आवश्यकता माने जाएँ? यह विचारणीय है। कुछ लोग आज नारी को पीटने सम्बन्धी 'रामचरितमानस' में आई समुद्र की पंक्तियों को स्वयं तुलसी के विचार मानते है, लेकिन ऐसा समझना भारी भूल है, क्योंकि तुलसी ने रावण जैसे चरित्र का भी गठन किया है। जैसे रावण की उक्तियों, विचारों को तुलसी के विचार नहीं माने जा सकते या 'गोदान' में साम्यवाद सम्बन्धी विचार प्रेमचन्द के खुद के विचार नहीं माने जा सकते वैसे ही नारी संबंधी समुद्र के विचार भी तुलसी के विचार नहीं माने जा सकते हैं।

सामग्री संकलन में एक शोधार्थी को नीर–क्षीर विवेक से काम लेना होता है (इसे अन्यत्र विस्तार में समझाया जा चुका है)। उसे किसी रचना में कौन सी बात स्वयं रचनाकार के विचारों का प्रतिनिधित्व करती है और कौन सी अपनी चारित्रिक आवश्यकताओं के अनुसार लेखक ने अपने विचार न होते हुए भी कृति में पात्रों के मुख से कहलवाई है। इसके अन्तर को बारीकी से समझना होगा। ऐसा न करने में अनुचित सामग्री का चयन कर शोधार्थी गलत परिणामों तक पहुँच सकता है।

13.4 शोध सामग्री के स्त्रोत

शोध सामग्री को कहाँ से एकत्रित किया जाय? इस बिन्दु की जानकारी प्राप्त करना जरूरी है। शोध सामग्री का संकलन कई रूपों में कई प्रकार से किया जाता है। साहित्य के अधिकांश विषयों की सामग्री हमें पुस्तकालयों में उपलब्ध पुस्तकों से ही प्राप्त होती है। पाठालोचन, पाण्डुलिपि संपादन या आंशिक रूप में व्याकरण आदि से सम्बन्धित कुछ विषय ऐसे हो सकते है जिनमें संदर्भ पुस्तकों से सामग्री लेने की जरूरत नहीं पड़ती है। इस तरह के कुछ शोध विषयों को छोड़कर साहित्य से संबंधित सभी प्रकार के शोध कार्यों के लिए संदर्भ पुस्तकों से ही सामग्री संकलित की जा सकती है। इस सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य से संबंधित शोधकार्य अधिकांश रूप में 'टेबल वर्क' है। प्राप्त संदर्भ पुस्तकों से टेबल पर बैठकर ही सामग्री संकलित की जा सकती है। स्वाभाविक है संदर्भ पुस्तकें प्राप्त करने का प्रमुख स्रोत पुस्तकालय होते हैं जहाँ से पुस्तकें प्राप्त की जा सकती हैं। पुस्तकों के अलावा कुछ शोध विषयों के लिए व्यक्तियों से भी सम्पर्क कर सामग्री संकलित करनी पड़ती है। इसके लिए शोधार्थी को संबंधित व्यक्तियों से सम्पर्क करना पड़ता है। इसके अलावा कुछ शोध विषय ऐसे होते हैं जिनसे सम्बन्धित सामग्री कुछ संस्थाओं से ही प्राप्त हो सकती है। इनसे इतर कुछ शोध–विषयों में विशिष्ट स्थानों पर जाकर भी अज्ञात सामग्री का संकलन करना पड़ता है। इस प्रकार शोध सामग्री संकलित करने के निम्नलिखित स्त्रोत निर्धारित होते हैं –

- पुस्तकालयों से
- संदर्भ पुस्तकों से
- संस्थाओं से / स्थानों से
- व्यक्तियों से
- व्यक्तिशः सम्पर्क से (प्रश्नावलियाँ / साक्षात्कार)

13.4.1 पुस्तकालयों से सामग्री संकलन

पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है साहित्य के अधिकांश विषयों में संदर्भ पुस्तकों से ही शोध सामग्री एकत्रित की जा सकती है और संदर्भ पुस्तकें पुस्तकालयों में ही उपलब्ध होती हैं। आज राजकीय पुस्तकालयों के अतिरिक्त सभी विश्वविद्यालयों और बड़े–बड़े महाविद्यालयों के पास बहुत विशाल पुस्तकालय हैं।

इनके अलावा अनेक साहित्यिक संस्थाओं के पास भी अपने समृद्ध पुस्तकालय हैं। इन सभी से सम्पर्क कर, इनका सदस्य बनकर संदर्भ पुस्तकें प्राप्त की जा सकती हैं। सम्भव है कि उनके नियमानुसार आपको पुस्तक निर्गत न की जा सकती हो तो आप कार्यालय समय में स्वयं वहाँ बैठकर संदर्भ पुस्तकों से सामग्री संकलित कर सकते है।

पुस्तकालयों से संदर्भ पुस्तकें प्राप्त करने अथवा उनके वाचनालयों में बैठकर संदर्भ एकत्रित करने के लिए यह आवश्यक है कि आपके पास अपना प्रामाणिक परिचय पत्र हो। इसके अलावा अपने शोध निर्देशक के द्वारा संबंधित पुस्तकालयाध्यक्ष के नाम का प्रार्थना पत्र भी अपने साथ रखें। इसके बिना संभव है आपको पुस्तकालय का उपयोग करने की अनुमति प्राप्त न हो।

पुस्तकालयों में पुस्तकें रखने की दो प्रकार की प्रचलित व्यवस्थाएँ हैं। पहली तालाबन्द व्यवस्था होती है। इसमें आपको बन्द अलमारियों में रखी पुस्तकें ढूँढने का अधिकार नहीं दिया जाता है। पुस्तकें अलमारियों में बंद रहती हैं, लेकिन उनके द्वारा लाईब्रेरी विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार केटेलॉग बने रहते हैं। आप उन केटेलॉगों को खंगालकर या रजिस्टर बना हो तो उसमें से अपने काम की पुस्तक का विवरण नोट कर लें। उनके आधार पर पुस्तकालय का कर्मचारी आपको सम्बन्धित पुस्तक लाकर दे देता है। इस व्यवस्था में आपको आसानी से पुस्तकें उपलब्ध हो जाती है।

अधिकांश पुस्तकालयों में आजकल पुस्तकें रखने की दूसरी व्यवस्था का पालन किया जाता है। इसे 'ओपन सेल्फ सिस्टम' (खुली अलमारी व्यवस्था) कहा जा सकता है। यद्यपि इनमें भी पुस्तकालय विज्ञान के अनुसार पुस्तकें व्यवस्थित की जाती है और उनके केटेलॉग कार्ड भी बनाए जाते हैं लेकिन खुली सेल्फों में पुस्तकें रखी जाने के कारण इनकी व्यवस्था तनिक लचर हो जाती है। ऐसे पुस्तकालयों में आपको रैकों में रखी प्रत्येक पुस्तक को देखकर उनमें से अपने लिए उपयोगी पुस्तक छाँटनी होती है। ऐसी व्यवस्था के अन्तर्गत पुस्तकालयों से संदर्भ ग्रन्थ छाँटने के लिए उचित यह रहता है कि पहले कुछ दिनों तक सारी अलमारियों की पुस्तकें खंगाल ली जाएँ और उनमें रखी अपने काम की पुस्तक के विवरण के साथ–साथ अलमारी एवं सेल्फ संख्या भी नोट कर लेनी चाहिए।

13.4.2 संदर्भ पुस्तकों से सामग्री संकलन

पुस्तकालयों में जाकर संदर्भ पुस्तकों की तलाश शुरू करने से पूर्व ही आपको अपने विषय एवं विषय सूची के प्रत्येक अध्याय से संबंधित संदर्भ पुस्तकों की रूपरेखा बना लेनी चाहिए। वैसे तो विश्वविद्यालय में शोध विषय के अनुमोदन के लिए दी जाने वाली रूपरेखा (सिनोप्सिस) के साथ ही संदर्भ पुस्तकों की सूची देना अनिवार्य होता है, लेकिन वह सूची पूर्व कल्पित और प्रायः अधूरी होती है। अतः शोध सामग्री संकलन का कार्य शुरू करने से पूर्व एक बार फिर से शोध विषय के प्रत्येक अध्याय से संबंधित संदर्भ पुस्तकों की सूची बना लेना जरूरी है।

संदर्भ पुस्तकों की सूची बनाने का सबसे आसान, किन्तु उपयोगी तरीका यह है कि आप पुस्तकाकार प्रकाशित शोध प्रबन्धों में पीछे दी गई संदर्भ पुस्तकों को देख लें। उनमें से आप आपके विषय के लिए उपयोगी ग्रन्थों को छाँटकर उनकी सूची बना सकते हैं।

आजकल प्रत्येक प्रकाशक भी अपने द्वारा प्रकाशित अथवा उनके द्वारा बेची जाने वाली अन्य प्रकाशकों की पुस्तकों के केटेलॉग प्रकाशित करते हैं। प्रकाशकों की इन पुस्तक सूचियों में से आप आसानी से अपने लिए उपयोगी संदर्भ ग्रन्थ छांटकर उनकी सूची बना सकते हैं।

हिन्दी साहित्य में अनेक लेखकों/प्रकाशकों ने संदर्भ ग्रन्थों की सूचियाँ/कोश बना रखे हैं यथा– डा. पुरुषोत्तम आसोपा का 'संदर्भ ग्रन्थ कोश' आदि। इस तरह के संदर्भ ग्रन्थ कोशों से आप अपने विषय से सम्बन्धित संदर्भ पुस्तकों की सूची बना सकते हैं। इन सूचियों को बनाने के उपरान्त ही पुस्तकालयों में जाकर इन ग्रन्थों को ढूँढना चाहिए और उनमें से उपयोगी सामग्री का संकलन करना चाहिए।

13.4.3 संस्थाओं से सामग्री संकलन

कुछ शोध विषय ऐसे होते हैं जिनमें आपको विशिष्ट संस्था से सम्बन्धित जानकारियों को भी समेटना होता है। अधिकांश संस्थाएं साहित्यिक पत्रिकाएँ प्रकाशित किया करती हैं जिनमें विविध प्रकार की उपयोगी सामग्री उपलब्ध हो सकती हैं। संस्थाओं के द्वारा आयोजित की जाने वाली गोष्ठियों, सेमिनारों, कार्यशालाओं एवं अन्यान्य गतिविधियों की विस्तृत रिपोर्ट हर संस्था प्रतिवर्ष प्रकाशित करती है। इसी भाँति अपने आयोजनों के लिए स्मारिकाओं का प्रकाशन भी किया करती हैं। इनमें इन संस्थाओं से संबंधित अत्यधिक उपयोगी सामग्री प्राप्त होती है। अच्छी संस्थाएँ हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज का, प्रान्तीय/राष्ट्रीय सम्मेलनों का, पुरस्कारों–सम्मानों आदि अनेक प्रकार की गतिविधियों का भी संचालन करती है। इन सभी से संबंधित उपयोगी जानकारियाँ इन संस्थाओं से प्राप्त की जा सकती हैं।

13.4.4 व्यक्तियों से सामग्री संकलन

कुछ शोध विषयों के लिए स्वयं रचनाकार से या उनके परिवार वालों से अथवा उनसे जुड़े हुए अन्य व्यक्तियों से व्यक्तिशः सम्पर्क कर शोध सामग्री एकत्रित करी होती है। इसके लिए पूर्व में पत्राचार से या टेलीफोन से उनसे सम्पर्क स्थापित कर उनसे समय ले लिया जाना उचित है। निश्चित समय पर सम्पर्क करने जाने से पूर्व शोधार्थी के लिए पहले से ही छोटी–मोटी प्रश्नावली तैयार कर लेना अच्छा रहता है। व्यक्तिशः सम्पर्क में शोधार्थी पर निर्भर करता है कि वह कितनी उपयोगी सामग्री सम्पर्क किए जाने वाले व्यक्ति से प्राप्त कर पाता है। शोधार्थी को पहले ही ज्ञात होना चाहिए उसे क्या सामग्री प्राप्त करनी है, किन किन जानकारियों को प्राप्त करना है तथा कैसे प्राप्त करनी है। इस प्रकार व्यक्तिशः सम्पर्क से शोध सामग्री संकलन करने से पूर्व शोधार्थी के लिए अपनी सारी तैयारियाँ पूर्व में ही कर लिया जाना जरूरी है, तभी वह अपने लिए वांछित सामग्री प्राप्त कर सकता है।

13.4.5 प्रश्नावलियों से सामग्री संकलन

समाजशास्त्रीय पद्धति से किए जाने वाले शोध विषयों में सामग्री संकलन का कार्य प्रश्नावलियों के माध्यम से किया जाता है। इसके लिए विषय से सम्बन्धित विविध प्रश्न बनाकर उनको टाईप करवा लिया जाता है। उनसे अलग–अलग लोगों द्वारा भरवा कर सामग्री संकलित की जाती है। इसके लिए प्रश्नों का औचित्यपूर्ण होना अनिवार्य है। जो जानकारियाँ एक आम व्यक्ति बिना संकोच दे सकता है वैसे ही प्रश्न ऐसी प्रश्नावलियों में रखे जाने लगे। इस तरह से सामग्री संकलन करते समय विश्वसनीयता बनाए रखना बहुत जरूरी है। प्रश्नों के उत्तर देने वाले को यहाँ विश्वास हो जाना चाहिए कि उसके द्वारा दी जाने वाली जानकारियों को उसे किसी तरह की कोई कठिनाई नहीं होगी।

13.5 शोध सामग्री संकलन की विधियाँ

शोधार्थी को अपने शोध प्रबन्ध के लिए स्त्रोत रूप में उपलब्ध समस्त सामग्री की जानकारी प्राप्त कर लेने के उपरान्त क्रमशः एक–एक संदर्भ ग्रन्थ प्राप्त कर उसमें से अपने शोध विषय से सम्बन्धित सामग्री नोट करना शुरू कर देना चाहिए। शोध सिद्धान्त सम्बन्धी पीठिका के पुष्ट हो जाने पर ही शोध सामग्री का संकलन अच्छे ढंग से किया जा सकता है अतः सामग्री संकलन का कार्य सीधे ही शुरू न करते हुए प्रथमतः शोध

कार्य सम्बन्धी सम्पूर्ण जानकारियाँ प्राप्त कर लेना जरूरी है।

अपने शोध विषय से सम्बन्धित सामग्री संकलित करते समय सर्वप्रथम जिस ग्रन्थ से सामग्री संकलित की जा रही है उससे सम्बन्धित समस्त जानकारी नोट करनी चाहिए। शोध कार्य की प्रामाणिकता के लिए यह जरूरी होता है कि शोध के अन्त में परिशिष्ट रूप में पढ़े गए एवं संदर्भित सभी ग्रन्थों की सविस्तार सूचना दी जाय। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो सम्भव है शोधार्थी अधूरी सूचनाएँ ही दे पाए और अधूरी सूचना देना शोध प्रणाली का उल्लंघन माना जाता है। वैसे भी किसी पुस्तक से सामग्री संकलित करते समय यदि उससे सम्बन्धित सभी बातें पूरी तरह से नोट नहीं की जाएँगी तो परिशिष्ट में दी जाने वाली संदर्भ ग्रन्थों की सूची बनाने में शोधार्थी को पर्याप्त असुविधा होगी। यहाँ इस बात को भी ध्यान में रखना अनिवार्य है कि शोध करते समय पुस्तकालयों से प्राप्त की गई पुस्तक कार्य समाप्त हो जाने पर वापस लौटा दी जाती हैं। लौटा दिए जाने पर उनके विवरण प्राप्त करना सम्भव नहीं रहता है।

शोध सामग्री संकलन करते समय जिस पुस्तक से सामग्री संकलित की जा रही है सर्वप्रथम उससे सम्बन्धित ये सारी बातें नोट कर लेना अत्यंत आवश्यक है–

1. पुस्तक का नाम
2. लेखक का नाम
3. प्रकाशक का नाम एवं पता
4. पुस्तक प्रकाशन वर्ष एवं संस्करण की संख्या
5. संकलित की जाने वाली सामग्री की पृष्ठ संख्या

ये सारी बातें नोट कर लेने के उपरान्त ही पुस्तक को पढ़ना शुरू करना चाहिए ।

सामान्यतः लोग संदर्भ इकट्ठा करने के लिए काम में ली गई पुस्तक में ही उपयोगी पंक्तियों को पेंसिल से रेखांकित कर लेते हैं और फिर उन्हें नोट कर लेते हैं। यह तरीका उचित नहीं कहा जा सकता है। पुस्तकालय की पुस्तक सिर्फ एक पाठक के लिए नहीं होती है, वह सभी पाठकों के लिए हुआ करती है। इसलिए रेखांकित कर उसे गंदा करना उचित नहीं है। शोधार्थी को अपनी वांछित पंक्तियों को स्वयं नोट कर लेना चाहिए। आजकल फोटोकॉपी की सुविधा सर्वत्र उपलब्ध है अतः यदि पूरे पृष्ठ की या एक से अधिक पृष्ठों की सामग्री नोट करनी हो तो पुस्तक के उन पृष्ठों की फोटो कॉपी करवा लेनी चाहिए ।

किसी भी शोधार्थी के द्वारा सामग्री संकलन का कार्य दो प्रकार से किया जा सकता है–

1. रजिस्टर पद्धति से सामग्री संकलन
2. कार्य पद्धति से सामग्री संकलन

ये दोनों समान रूप से एक ही उद्देश्य को सिद्ध करते हैं अतः कुछ लोग इन्हें अलग–अलग न मानकर समरूप मानते हैं। सामग्री संकलन की इन दोनों प्रणालियों को यहाँ स्पष्ट किया जा रहा है ।

13.5.1 सामग्री संकलन की रजिस्टर प्रणाली

इसके अनुसार शोधार्थी अपने रजिस्टर में शोध सामग्री को नोट कर लेता है। जिस पुस्तक से सामग्री संकलित की जा रही है उसे बिन्दुवार रजिस्टर में नोट कर लिया जाता है। इसके लिए रजिस्टर के प्रारम्भ के तीन–चार पृष्ठों को अनुक्रमणिका बना लेना चाहिए। इसमें अपने प्रत्येक अध्याय के सभी शीर्षको, उप–शीर्षकों को बिन्दुवार एक–एक पंक्ति में लिख लेना चाहिए। तदुपरान्त प्रत्येक बिन्दु के आगे एक पृष्ठ संख्या दे देनी चाहिए। रजिस्टर के उस पृष्ठ पर शीर्षक रूप में वह बिन्दु लिख लेना चाहिए। अब पढ़ी जाने वाली पुस्तक से शोधार्थी को जिस बिन्दु से सम्बन्धित सामग्री उपलब्ध हो रही है उसे उस बिन्दु को दिए गए पृष्ठ पर उतार लेना चाहिए। ऐसा करने से शोधार्थी को धीरे–धीरे अपने शोध प्रबन्ध के सभी बिन्दुओं से सम्बन्धित सामग्री पृथक–पृथक रूप में सिलसिलेवार उपलब्ध हो जाएगी ।

किसी भी पुस्तक से उद्धरण या पंक्तियाँ नोट करने के उपरान्त उसके नीचे दाहिनी ओर ली गई पुस्तक की पृष्ठ संख्या को नोट कर लेनी चाहिए ।

रजिस्टर प्रणाली में सामग्री संकलित करते समय एक नोट ले लेने के बाद दो–तीन पंक्तियाँ खाली छोड़कर ही दूसरा नोट लेना चाहिए। आवश्यक हो तो हाशिए में उनका वर्ग या क्रम भी लिखा जा सकता है। इस प्रकार शोध प्रबन्ध के लिए एकत्रित की जाने वाली सम्पूर्ण सामग्री वैज्ञानिक ढंग से बिन्दुवार अलग–अलग पृष्ठों पर नोट कर लेनी चाहिए। यों शोधार्थी के लिए शोध प्रबन्ध लिखने हेतु आधारभूत सामग्री एक ही रजिस्टर में एकत्रित हो जाती है। उसके आधार पर आसानी से शोध एवं लिखा जा सकता है।

13.5.2 सामग्री संकलन की कार्ड प्रणाली

सामग्री संकलन की यह दूसरी प्रणाली है। इसमें रजिस्टर के स्थान पर कार्डों पर सामग्री संकलित की जाती है। इसके लिए एक बड़ी शीट से पोस्टकार्ड या पुस्तकालयों में केटैलॉग बनाने हेतु प्रयुक्त किए जाने वाले केटैलॉग कार्डो के आकार के कार्ड कटवा लिए जाते हैं। संकलित की जाने वाली पुस्तक से एक–एक उद्धरण या सम्बन्धित पंक्तियों को पृथक–पृथक कार्डों पर नोट कर लिया जाता है। फिर अपने शोध विषय के अनुसार इन समस्त कार्डों को अलग–अलग बिन्दुवार छाँट लिया जाता है। प्रत्येक बिन्दु से सम्बन्धित कार्डों को रबड बैंड में बाँधकर सुरक्षित रखा जाना उचित रहता है। इस तरह अलग–अलग बिन्दुओं से सम्बन्धित कार्डो के आधार पर शोध प्रबन्ध लिखते समय प्रत्येक बिन्दु को लिखा जा सकता है।

13.6. सामग्री संकलन के आधार भूत सिद्धान्त

शोध की सामग्री संकलित करते समय इन बातों को ध्यान में रखना जरूरी है –

13.6.1 सार–सार को गहि रहे थोथा देहि उड़ाय

कबीर ने साधु के चरित्र की तुलना 'जैसा सूप स्वाभाव' सूप से की थी। जिस तरह सूप सारभूत तत्त्व को अपने में धारण किए रहता है और कचरे के रूप में थोथी बातों को उड़ा देता है, वैसे ही शोध प्रबन्ध की सामग्री संकलन करने वाले शोधार्थी का स्वभाव भी सूप के समान ही होना चाहिए। उसके सामने हजारों पृष्ठों में अनगिनत सामग्री बिखरी पड़ी रहती है, लेकिन उनमें से उसे अपने द्वारा चुने गए विषय के अनुरूप सामग्री को चुन

लेना चाहिए। यहाँ ध्यान रखने योग्य बात यह है कि आधारभूत सामग्री की सम्पूर्ण पुस्तक ही पठनीय और उपयोगी होती है, लेकिन यह जरूरी नहीं है कि शोधार्थी द्वारा चुने गए विषय की दृष्टि से वह सारी सामग्री उपयोगी ही है। इसे उदाहरण से यों समझा जा सकता है। मान लीजिये कोई शोधार्थी महादेवी की रहस्य भावना पर शोध कार्य कर रहा है। उसके सामने महादेवी की स्वयं की रचनाएँ तथा उस पर लिखी गई समस्त प्रकार की रचनाएँ उपयोगी सामग्री लिए उपस्थित रहती है, लेकिन शोधार्थी के लिए सिर्फ उतनी सी सामग्री उपयोगी हो सकती है जो उसके विषय की मर्यादाओं के अनुरूप सिर्फ रहस्य भावना से ही सम्बन्धित हों। यहाँ सूप की तरह शोधार्थी को भी सार–सार को गहते हुए थोथे को उड़ा देना चाहिए। सार और थोथे के अन्तर को निर्देशक के निर्देश के आधार पर अलग–अलग किया जाना चाहिए ।

13.6.2 धारे रहो नीर–क्षीर विवेक

शोधार्थी को अपने शोध के लिए आलोचक की तरह उपलब्ध सामग्री पर आलोचना नहीं लिखनी होती है, उसे तो अपने लिए उपयोगी सामग्री की स्वयं खोज करनी होती है। इस प्रक्रिया में उसे नीर–क्षीर विवेक का पूरी तरह से अनुसरण करना पड़ता है। उसे इस बात के लिए पूरी तरह से चौकस रहना होता है कि वह शोध के लिए कितनी उपयोगी हो सकती है। उसके लिए कोई पहले से निर्धारित रास्ते नहीं होते है वरन् उसे तो पानी पर तैरते तिनके की तरह या रेत पर चलती चींटी की तरह अपनी राह स्वयं निर्मित करनी होती है। ऐसी अवस्था में उसे अपने विवेक को पूरी तरह से जाग्रत रखना होता है, क्योंकि फालतू सामग्री या अनुपयोगी सामग्री उसे अपने लक्ष्य से भटका सकती है या उसके श्रम को दुहरा–तिहरा कर सकती है। कहा जाता है कि हंस नीर और क्षीर में से यह पहचान कर लेता है कि दूध कहाँ और पानी कहाँ? शोधार्थी को सामग्री संकलन में निरर्थक बेमानी सामग्री कौन सी है इसे पहचान लेना जरूरी है। यदि वह ऐसी सामग्री को संकलित करता चला गया तो सम्भव है ''जाना था जापान पहुँच गए चीन'' की तर्ज पर वह अपने शोध के मूल लक्ष्य से ही भटक जाए। मोह सर्वत्र हानिकारक होता है और शोधार्थी के लिए तो सामग्री का यह मोह उसके शोध प्रयास को ही पूरी तरह से भटका सकता है ।

13.6.3 थामे रहो पतंग की डोर

शोध सामग्री के संकलन का कार्य 'रमता जोगी' की तरह का या गाँव–गाँव सौदा बेचने वाले सौदागर का सा नहीं होता है । सौदागर एक गांव से शुरू होकर न जाने किस दिशा में बढ़ता चला जाता है। रमता जोगी भी जब जी चाहा अपने झोली ठण्डा उठाकर न जाने किस दिशा में बढ़ जाता है, यह ज्ञात नहीं रहता। सौदागर या जोगी को यात्रारम्भ के स्थल को छोड़कर अन्यत्र बसेरा करना होता है इसलिए वे यात्रा शुरू किए जाने वाले स्थल पर वापस लौटकर नहीं आते, लेकिन शोधार्थी के सामग्री संकलन का कार्य पतंग उड़ाने जैसा होता है। पतंग भले ही चाहे जिस दिशा में उडान भर ले चाहे जितनी दूरी पर चली जाए पर हर दशा में उसका नियंत्रण उडाने वाले के हाथ में ही रहता है। शोधार्थी को भी सामग्री संकलन हेतु अंतःबाह्य समस्त स्त्रोतों को खंगालते हुए प्रत्येक बार संकलित सामग्री को अपने शोध विषय से अनिवार्यतः जोड़ना होता है। जिस बिन्दु से सम्बन्धित सामग्री संकलित करने का प्रयास किया जाए, पंतग की डोर की तरह उसे हर दशा में चयनित विषय के हाथों में नियंत्रित रखना चाहिए। पेंच भी लड़ाए जा

सकते हैं, गोते भी लगाए जा सकते हैं, पर ध्यान रहे किसी भी दिशा में पतंग कटने न पाए। अर्थात् सामग्री की खोज उसी सीमा तक की जाए कि वह डोर की तरह पतंग को थामे रखे। कहीं ऐसा न हो जाए कि कटी पतंग की तरह छिटक कर दूर नहीं चली जाए।

बिहारी के एक प्रसिद्ध दोहे में भी कहा गया है कि गुड़ी (पतंग) आकाश में कितनी ही ऊँची या दूर क्यों न चली जाए हर दशा में वह उड़ाने वाले हाथों में नियंत्रित रहती है। इसी प्रकार शोधार्थी के सामग्री संकलन का कार्य हर दशा में अनिवार्यतः उसके द्वारा बनाई गई रूपरेखा संबंधी पतंग की डोर के नियंत्रण में ही रहनी चाहिए। इस कार्य में भटकने की पूरी संभावना रहती है। इसका कारण यह है कि अपनी वांछित सामग्री के लिए जब शोधार्थी कोई पुस्तक पढ़ने लगता है तो उसे पुस्तक की अपनी कई बातें शोधार्थी को अच्छी लगने लगती है। वह उन्हें भी नोट करने लगता हैं। लेकिन ऐसी सामग्री से शोध की दिशा के भटक जाने की पूरी सम्भावना बनी रहती है अतः इस सम्बन्ध में कठोरतापूर्वक आत्म नियंत्रण रखना बहुत आवश्यक है ।

13.7 संदर्भ ग्रन्थ

- आसोपा डॉ. पुरुषोत्तम – हिन्दी साहित्य संदर्भ ग्रन्थ कोश
- शर्मा डॉ. विनय मोहन – शोध प्रविधि
- सिंह डॉ. सरनाम – शोध प्रक्रिया एवं विवरणिका
- सिंह डॉ. विजयपाल – हिन्दी अनुसंधान
- संपा. डॉ. विश्वनाथप्रसाद – अनुसन्धान के मूल तत्व
- संपा. सिन्हा डॉ. सावित्री – अनुसन्धान का स्वरूप
- संपा. सिन्हा डॉ. सावित्री, डॉ. विजयेन्द्र स्नातक – अनुसन्धान की प्रक्रिया
- सूरती डॉ. उर्वशी – अनुसन्धान का व्यावहारिक स्वरूप
- सिंह डॉ. उदयभानु – अनुसन्धान का विवेचन
- डॉ. सत्येन्द्र – अनुसन्धान

13.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. शोध हेतु संकलित की जाने वाली सामग्री का विवरण दीजिये ।
2. किन–किन साक्ष्यों से शोध सामग्री संकलित की जा सकती है? स्पष्ट करते हुए बतलाए।
3. शोध सामग्री संकलन की कितनी प्रणालियाँ हैं? विवरण दीजिये ।
4. अन्तःसाक्ष्य और बाह्य साक्ष्य को विस्तार से समझाइये ।
5. प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अन्तःसाक्ष्य के अंतर को स्पष्ट कीजिये ।
6. किसी शोध प्रबन्ध को लिखने के लिए सामग्री कहाँ–कहाँ से प्राप्त की जा सकती है, विस्तार से समझाइये ।
7. सामग्री संकलन के आधारभूत सिद्धान्तों को स्पष्ट कीजिये ।

इकाई संख्या –14   शीर्षक–प्रस्तुति की भाषा शैली

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 प्रस्तुति की भाषा

14.2.1 संयत भाषा का स्वरूप

14.2.2 भाषा का भावुकताविहीन प्रयोग

14.2.3 भाषा की अलंकारविहीनता

14.2.4 विशेषणमुक्त भाषा

14.2.5 शोध की भाषा आत्माभिव्यक्ति विहीन

14.3 प्रस्तुति की शैली

14.3.1 आमुख

14.3.2 विषयक्रम

14.3.3 शोध प्रबन्ध का कलेवर

14.3.4 शोध कार्य के निष्कर्ष

14.3.5 पठित ग्रन्थों का विवरण

14.4 सारांश

14.5 संदर्भ ग्रन्थ

14.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- शोध प्रबन्ध लेखन की आधारभूत स्थापनाओं से परिचित हो सकेंगे।
- मुख्य रूप से ये स्थापनाएँ शोध प्रबन्ध की भाषा शैली से सम्बन्धित है।
- शोध कार्य को वैज्ञानिक विधि का स्वरूप देने में उसकी भाषा शैली का प्रमुख योगदान रहता है। छात्र इस पाठ के अन्तर्गत शोध प्रबन्ध की इसी वैज्ञानिक प्रविधि से अवगत हो सकेंगे।
- शोध कार्य तथ्यपरक, वैज्ञानिक, विश्लेषणात्मक होता है, इसलिए शोध छात्र एक अनुशासन में रहकर अपने शोध प्रबन्ध को आकार प्रदान करता है। विद्यार्थी इसका कौशल इस पाठ के माध्यम से अर्जित करेंगे।
- शोध प्रबन्ध की भाषा और शैली का प्रस्तुत पाठ इस दिशा में शोध छात्र का मार्गदर्शन कर सकता है।

- शोध प्रबन्ध की भाषा शैली एवं आलोचना तथा निबन्ध की भाषाशैली में एक मौलिक अन्तर है, इस तथ्य से शोध छात्रों को प्रस्तुत पाठ के माध्यम से परिचित करवाया जायेगा क्योंकि दोनों की भाषा शैली गुणात्मक दृष्टि से भिन्न प्रकार की होती है।

14.1 प्रस्तावना

शोध कार्य मुख्य रूप से कार्य–कारण श्रृंखला के माध्यम से छात्रों में तथ्यपरक एवं तार्किकता का सहारा लेकर विश्लेषण, विवेचन और निष्कर्षों से होकर अध्ययन की निष्पत्ति तक पहुँचने की एक लम्बी प्रक्रिया है। इसी में वे अन्तर्निहित बिन्दु आ जाते हैं जो कि शोध की भाषा और शैली को निरूपित करते हैं। साधारणतः साहित्यिक शोध कार्य को एक विशेष कोष्ठक में रखा जाता है। समाजशास्त्रीय शोध कार्य और प्राकृतिक विज्ञानों के शोध कार्य की प्रकृति कुछ भिन्न होती है, इस भिन्नता को रेखांकित करने में साहित्यिक शोध कार्य की भाषा शैली मुख्य रूप से चर्चा में आती है। प्रस्तुत पाठ में इसी आधारभूत भिन्नता को समझाने का प्रयास किया जा रहा है।

साहित्यिक कृतियों, प्रवृत्तियों, साहित्यिक कालखण्ड या साहित्य की भूमि पर उपजे विभिन्न वादों को शोध का आधार बनाकर शोधार्थी अपने अध्ययन में प्रवृत्त होते हैं। स्वाभाविक है कि शोध कार्य के विश्लेषण–विवेचन के क्रम में कल्पना, भावना, रसात्मकता और भावुकता के प्रसंगों को भी शोध–प्रबन्ध स्पर्श करता है। ऐसी स्थिति में शोधार्थी को शोध की भाषा शैली को निर्धारित करते समय भावुकता से बचते हुए एक तटस्थ, संयत व अनुशासित भाषा का सहारा लेना पड़ता है, तभी उसके अध्ययन में वैज्ञानिकता, विवेकसम्मता और संयत मूल्यांकन के तत्त्व उभर सकते हैं। आगे के पृष्ठों में शोधकार्य की प्रस्तुति के क्रम में शोधार्थी को भाषा–शैली को समझाने में इसी सन्दर्भ को ध्यान में रखेंगे, साथ ही यह समझाने का प्रयास करेंगे कि वे कौन से दोष या कमियाँ हैं जिनसे बचते हुए शोध–प्रबन्ध की भाषा–शैली को भाषिक अनुशासन में रखा जा सकता है। भाषा के अतिरिक्त शोध प्रबन्ध की प्रस्तुति का एक दूसरा आयाम भी है, वह आयाम है प्रस्तुति की शैली। शैली के अन्तर्गत शोध प्रबन्ध के प्रमुख बिन्दुओं को समझाने का प्रयास करेंगे।

14.2 प्रस्तुति की भाषा

साहित्यिक शोध कार्य की भाषा शैली के सम्बन्ध में विचारकों, विद्वानों एवं आलोचकों की यही सर्वसम्मत मान्यता है कि उसे तथ्य को वहन करने योग्य साधन के रूप में अपनाया जाय। स्वाभाविक है कि यह भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण, अलंकारविहिन और विशेषणों के प्रयोग से बचते हुए अपना स्वरूप निधारित करेगी। भौतिक विज्ञानों एवं समाज विज्ञानों में भी तथ्यवहन करने वाली भाषा को ही अपनाया जाता है। साहित्यिक शोध–कार्य में शोध–छात्र तथ्य संकलन से आगे बढ़कर सत्य के उद्‌घाटन की ओर अग्रसर होता है। तथ्य एक ऐसी स्थिति है जो प्रत्यक्ष विद्यमान है और सत्य उस प्रत्यक्ष विद्यमानता में छिपा हुआ मूल तत्व होता है। शोधार्थी उस तत्व तक पहुँचने हेतु विश्लेषण एवं विवेचन के मार्ग से गुजरता है। इस पूरी प्रक्रिया में शोधार्थी को संयत, एवं अनुशासन में ढली हुई भाषा ही निष्कर्षों तक पहुँचाती है। भाषा के इस पहलू को समझने के लिए अनेक बिन्दुओं को ध्यान में रखना आवश्यक है।

14.2.1 संयत भाषा का स्वरूप

शोध छात्र को अपने विषय प्रतिपादन में अतिरेकों से बचना चाहिए। ये अतिरेक दो प्रकार के होते हैं – 1. भावातिरेक 2. विचारातिरेक। भावातिरेक में किसी तत्व का समर्थन या खण्डन करते समय शोधार्थी को वाक् संयम का परिचय देना चाहिए। अपने को खण्डन–मण्डन से पृथक रखते हुए निष्कर्ष सामने रखने चाहिए। तथ्य संकलन, विवेचन और विश्लेषण के द्वारा निष्कर्ष तक पहुँचना स्वाभाविक परिणति के रूप में सामने आना चाहिए। भाषा में भावुक उद्‌गारों से बचकर मर्यादित ढंग से सत्य का प्रतिपादन होना चाहिए, तभी शोधार्थी की भाषा में वैज्ञानिक तटस्थता और ईमानदारी झलकेगी।

भावातिरेक की भाँति विचारातिरेक भी सत्य के प्रतिपादन में एक बड़ी बाधा के रूप में सामने आता है। अध्येता को अपने को तटस्थ रखते हुए विचारों एवं तर्कों का सहारा लेना चाहिए। खण्डन–मण्डन से सर्वथा पृथक् रहकर अपने को एक वैज्ञानिक अध्येता के रूप में संयत रखना चाहिए। इस प्रसंग में कतिपय शोध–कृतियों की भाषा को ध्यान में रखना वांछनीय है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की 'हिन्दी–साहित्य की भूमिका' और 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' इसके उदाहरण हैं। यद्यपि ये दोनों रचनाएं किसी शोध–उपाधि हेतु प्रस्तुत कृतियाँ नहीं है, तथापि द्विवेदी जी ने इन में नवीन तथ्यों की खोज एवं तथ्यों की पुनःविवेचना करके इनको श्रेष्ठ शोध ग्रन्थ का रूप दिया है। इस क्रम में डॉ. धीरेन्द्र वर्मा द्वारा रचित 'हिन्दी–भाषा का इतिहास' एक अन्य ग्रन्थ है जो शोधपरक और संयत भाषा का एक श्रेष्ठ उदाहरण कहा जा सकता है।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के मार्ग दर्शन में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में जितने भी जो शोध कार्य सम्पन्न हुए हैं उनमें शोधक की तटस्थता, भाषा का संयत प्रयोग एवं तार्किकता का तत्व विद्यमान है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा प्रवर्तित शोध–भाषा का प्रचलन बढ़ता गया और अन्य विश्वविद्यालयों में भी कालान्तर में जो शोध–ग्रन्थ प्रस्तुत किये गये उनमें प्रस्तुति की भाषा का आदर्श वही अपनाया गया।

14.2.2 भाषा का भावुकताविहीन प्रयोग

साहित्य मात्र भावुकता पर टिका है। पाठक के हृदय को झंकृत करने में यही भावुकता काम आती है। साहित्यकार – कवि, नाटककार, कहानीकार आदि भावोद्रेक हेतु एक भावोच्छ्‌वसित भाषा का प्रयोग करते हैं। पाठकों को ऐसी भावप्रवण भाषा द्रवित करती है और वे कृति का रसास्वादन करते है। जहाँ तक शोध कार्य की भाषा का प्रश्न है उसमें भाषा के भावुकतापूर्ण प्रयोग की कोई गुंजाइश नहीं है। यह कहना उचित होगा कि शोध कार्य में भाषा का भावुकतापूर्ण प्रयोग एक बड़ी त्रुटि है।

शोधकार्य मूलतः एक बौद्धिक कार्य है। इसमें तथ्यानुसंधान एवं उपलब्ध तथ्यों का मौलिक विवेचन – ये दो प्रचलित क्षेत्र हैं। कहने की आवश्कता नहीं कि इन दोनों क्षेत्रों में शोधार्थी को अपनी बौद्धिक प्रतिभा का परिचय देना पड़ता है। उसे विचार, तर्क, परीक्षण, विवेचन, विश्लेषण से होकर निर्णय एवं निष्कर्ष तक पहुँचना पड़ता है, यह आद्यंत एक बौद्धिक यात्रा है। इसमें भावुक उद्‌गारों के लिए कोई स्थान नहीं है। यहाँ तक कि शोधग्रन्थ की बौद्धिकता कभी–कभी बोझिल रूप धारण कर लेती है और ग्रन्थ को दुर्बोध तथा अपठनीय बना डालती है। ऐसी स्थिति में सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि शोध की भाषा भावुकताविहिन, तर्काश्रित और तथ्यपरकता लिये होती है।

उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित अनुच्छेद को लिया जा सकता है :–

"मनुष्य की अवधारणा के रूप हिन्दी साहित्य में कई बार बदले हैं और इसी के साथ परमतत्व को लेकर उसके रिश्ते भी। आदिकाल के प्रसंग में हमने परिलक्षित किया था कि यहाँ मनुष्य का ईश्वर की महिमा से युक्त रूप में वर्णन हुआ है, जबकि भक्तिकाल में ईश्वर का मनुष्य के रूप में हुआ है, आगे चलकर फिर रीतिकाल में ईश्वर और मनुष्य दोनों का मनुष्य रूप में चित्रण होता है, आधुनिक काल में आकर मनुष्य सारे चिन्तन का केन्द्र बनता है और ईश्वर की धारणा व्यक्तिगत आस्था के रूप में स्वीकृत होती है, साहित्य या कलाओं में उसका चित्रण प्रासंगिक नहीं रह जाता""। (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास)।

इस अनुच्छेद में लेखक ने बौद्धिक विश्लेषण करके आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल एवं आधुनिक काल के साहित्य को लक्ष्य करके साहित्य के अन्तराल में ईश्वर और मनुष्य के सम्बन्ध का निरूपण किया गया है। लेखक ने अनुच्छेद के आरम्भ में दो छोटे वाक्य रचकर अपनी मुख्य स्थापना को एक लम्बे वाक्य में प्रस्तुत किया है। अनुच्छेद का प्रत्येक वाक्य एवं वाक्यांश अर्थगर्भित है। पाठक को बहुत सावधानीपूर्वक लेखक की अर्थगर्भित स्थापना तक पहुँचना पड़ता है। ऐसे में भावुक उद्‌गारों के लिए भला कहाँ अवकाश? शोध की भाषा ऐसी ही कसावट लिए अर्थगर्भित होनी चाहिए।

14.2.3 भाषा की अलंकारविहीनता

साहित्यिक भाषा की पहचान प्रायः अलंकृत भाषा के रूप में की जाती है। अलंकार वाणी की सजावट कहे जा सकते हैं। साहित्यकार अलंकारों के आकर्षण में बंधे रहते हैं। यहाँ तक कि बड़े आलोचकों में भी अलंकार से बोझिल भाषा रचने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। शुक्ल जी जैसे प्रौढ़ आलोचक की कृतियों में भी अलंकारों के दर्शन हो जाते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि शोध की भाषा तथ्य को वहन करने वाली, तर्क को गति देने वाली भाषा होनी चाहिए। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के शोधपरक ग्रन्थों में इस अलंकारविहीनता को देखा जा सकता है। वे विचारों के प्रतिपादन के प्रति समर्पित रहकर तर्क–शृंखला को आगे बढ़ाते रहते हैं। उनका लेखन अलंकारों से बचते हुए विषय प्रतिपादन के प्रति अग्रसर रहता है, इस बात को समझने के लिए उनके ग्रन्थ ''हिन्दी भाषा का इतिहास'' से निम्नलिखित उदाहरण दिया जा रहा हैः–

''प्राचीन वैदिक तथा बौद्ध साहित्य के बाह्य रूप तथा उसमें पाये जाने वाले उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि भारत में लेखन कला का प्रचार चौथी शताब्दी पूर्व ईसा से बहुत पहले मौजूद था। ऐसी अवस्था में कुछ योरोपीय विद्वानों का यह मत बहुत सारयुक्त नहीं मालूम होता कि भारतीय लोगों ने चौथी, आठवीं या दसवीं शताब्दी पूर्व ईसा में, किन्हीं विदेशियों से लिखने की कला सीखी। जो हो भारत में लिखने के प्रचार की प्राचीनता तथा उसका उद्‌गम हमारे प्रस्तुत विषय से विशेष सम्बन्ध नहीं रखता, अतः इसका विस्तृत विवेचन यहाँ अनावश्क है।'' ध्यान देने योग्य बात यह है कि डॉ. धीरेन्द्र वर्मा भाषा को विषय प्रतिपादन का साधन मात्र मानते थे। उसे अलंकार बोझिल रूप देने में उनकी कोई रूचि नहीं थी। उनके द्वारा प्रवर्तित और प्रचलित शोध–भाषा आज भी शोधार्थियों के लिये एक आदर्श हैं।

14.2.4 विशेषण मुक्त भाषा

विशेषण भी भाषा को अलंकृत करने का साधन है। वैसे विशेषण मुक्त भाषा का आदर्श निभाना कठिन है। अभिव्यक्ति के प्रवाह में सहज रूप से आने वाले विशेषण तो ग्राह्य माने जाने चाहियें किन्तु प्रयत्नपूर्वक विशेषणों का प्रयोग एक दोष ही है। शोध की भाषा निर्धारित करते समय विशेषणों के अतिशय प्रयोग से बचना चाहिये।

14.2.5 शोध की भाषा आत्माभिव्यक्तिविहीन

डॉ. नगेन्द्र ने अपने विश्लेषण में शोध और आलोचना में एक मौलिक भेद करते हुए एक पार्थक्य रेखा खींची हैं उनकी मान्यता है कि आलोचना में कहीं न कहीं आलोचक की आत्माभिव्यक्ति भी सन्निहित रहती है। इसलिए आलोचना का कला पक्ष भी चर्चा में आता रहता है। जहाँ तक शोध आलेख का प्रश्न है उसमे आत्माभिव्यक्ति की कोई गुंजाइश नहीं है। अपने को पृथक रखते हुए सत्य के प्रति शोधार्थी की निष्ठा होनी चाहिए। एक वैज्ञानिक तटस्थता उसके प्रतिपादन में परिलक्षित होनी चाहिए। इसीलिए शोधार्थी की भाषा निर्वैयक्तिक डिपर्सनलाइज्ड – भाषा कही जाती है। शोध की भाषा इसीलिए कहीं–कहीं रुक्ष और नीरस होती हुई बोझिल तक बन जाती है। कुल मिलाकर यह शोधार्थी की भाषागत विशेषता ही है।

यहाँ पर शोध की भाषा को स्पष्ट रूप से समझने के लिए निबन्ध और आलोचना की भाषा से उसकी पृथकता को रेखांकित करना भी आवश्यक है। आलोचना और निबन्ध में भी बौद्धिकता की प्रधानता बनी रहती है। बौद्धिक विवेचन व प्रतिपादन की दृष्टि से शोध, आलोचना और निबन्ध बहुत निकटता वाली विधाएँ हैं – केवल प्रस्तुति की भाषा–शैली के आधार पर ही उनमें अन्तर देखा जा सकता है। उदाहरणस्वरूप आचार्य शुक्ल के निबन्ध (मनोभावों से सम्बन्धित) एवम् उनके आलोचनात्मक निबन्धों को लिया जा सकता है। शुक्लजी का प्रखर व्यक्तित्व उनके निबन्धों तथा उनकी आलोचना में सर्वत्र परिलक्षित होता है, किन्तु एक शोधार्थी अपने व्यक्तित्व को सत्य के प्रतिपादन में पृथक ही रखता है। यही निबन्ध, आलोचना और शोध की भाषा का मौलिक अन्तर है।

14.3 प्रस्तुति की शैली

पूर्व प्रसंग में शोध प्रबन्ध की प्रस्तुति के संदर्भ में शोध की भाषा पर चर्चा की गयी है। शोध प्रबन्ध की भाषा के पक्ष के साथ साथ उसके शैली पक्ष पर भी विचार करना समीचीन है। प्रस्तुत प्रसंग में शोध प्रबन्ध के शैली पक्ष पर ही विचार किया जा रहा है।

शोध प्रबन्ध की शैली का एक सुविचारित और सुनिश्चित स्वरूप निर्धारित करना सम्भव नहीं है, क्योंकि हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत प्रस्तुत किए जाने वाले शोध प्रबन्धों पर दृष्टिपात करें तो उनमें विविधता और विभिन्नता दृष्टिगत होती है। यह न केवल शोधार्थी की व्यक्तिगत रूचि और सीमाओं का निदर्शन करवाती है अपितु विश्वविद्यालयों के विभिन्न शोध प्रबन्ध लेखन की विविधताओं को भी समर्थन देती रही है। उदाहरण के लिए इलाहाबाद, लखनऊ, गोरखपुर और बनारस विश्वविद्यालय में तैयार किए गए शोध प्रबन्ध अलग परिपाटी का पालन करते हुए दिखाई पड़ते हैं, जबकि दिल्ली विश्वविद्यालय, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, जामिया मीलिया विश्वविद्यालय के शोध प्रबन्ध कुछ अलग प्रकार की विभिन्नता लिए होते हैं। इसी प्रकार आगरा विश्वविद्यालय, राजस्थान विश्वविद्यालय, जोधपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागों के द्वारा शोध प्रबन्ध लेखन में

तुलनात्मक दृष्टि से पर्याप्त भिन्नता दिखाई पड़ती है। यह भिन्नता बहुत कुछ शोध निर्देशक की दृष्टि पर निर्भर करती है। विस्तार भय के कारण हम यहाँ उदाहरण नहीं दे पा रहें हैं।

कुल मिलाकर यह कहना अधिक उचित होगा कि शोध प्रबन्ध की एक सुनिश्चित शैली का निर्धारण कठिन है। हाँ, कुछ केन्द्रीय बिन्दु ऐसे निरूपित किए जा सकते हैं जिनका प्रयोग प्रत्येक शोध कार्य और प्रत्येक शोध प्रबन्ध में अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिए।

संक्षेप में वे सामान्य बिन्दु इस प्रकार है –अध्ययन की सुनिश्चित सीमा, विषय की स्पष्ट अवधारणा, सामग्री संकलन के प्रति सतर्क दृष्टि, बौद्धिक विवेचना, तार्किकता, उद्धरण एवं संदर्भ निर्देश के प्रति ईमानदारी एवं विवेचन और विश्लेषण के पश्चात् निष्कर्षों की क्रमिक प्रस्तुति ।

इन विशेषताओं में अध्येता की परिश्रमशीलता, बौद्धिक ईमानदारी और तटस्थ विवेचन की प्रक्रिया का विशेष महत्त्व रहता है। शोध प्रबन्ध की शैली का निरूपण करते समय हम इन्हीं बिन्दुओं की समीक्षा प्रस्तुत करेंगे।

शोध प्रबन्ध लेखन किसी निर्दिष्ट विषय पर योजनाबद्ध ढंग से वैज्ञानिक दृष्टि से किया जाने वाला अध्ययन माना जाता है। विश्वविद्यालयों की एम.फिल., पीएच डी., डी. फिल और डी. लिट. उपाधियों हेतु शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किये जाते हैं। कुछ सीमा तक शोध प्रबन्ध लेखन की एक निर्धारित परिपाटी सी बन गयी है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि स्वतन्त्र साहित्यिक लेखन, जिसमें साहित्यिक आलोचना का प्रमुख स्थान है, शोध प्रबन्ध का लेखन इससे सर्वथा भिन्न है। शोध प्रबन्ध–लेखन की अपनी शैलीगत विशेषताएँ होती हैं। यह अध्ययन का किसी विषय विशेष पर केन्द्रित वैज्ञानिक प्रारूप होता है, इसलिये शोध प्रबन्ध की शैली की अपनी एक सुनिश्चित परिपाटी होती है, जिसे शोध प्रबन्ध की शैली भी कह सकते हैं।

14.3.1 आमुख

यह किसी भी शोध प्रबन्ध की योजना में आरम्भिक बिन्दु है। जिस विषय पर शोधार्थी अपना शोध कार्य कर रहा है उस विषय पर इससे पूर्व किये गये अध्ययन और अनुसंधान की सुनिश्चित जानकारी दी जानी चाहिये। इस क्रम में उक्त विषय पर प्रकाशित पुस्तकों की सूची और लेखकों का उल्लेख होना आवश्यक है। साथ ही अपने अध्ययन की दिशा का मौलिक संकेत भी आ जाना चाहिये। इसमें शोधार्थी को अपने अध्ययन के क्रम में प्राप्त हुई सहायता –पुस्तकालयों का उपयोग, विद्वानों से विचार विमर्श, विचार गोष्ठियों के प्रति भी आभार प्रदर्शन वांछनीय है। आमुख के अंतर्गत शोधार्थी द्वारा इस प्रसंग में शोध प्रबन्ध की तैयारी में सहायता प्रदान करने वाले व्यक्तियों, संस्थाओं आदि की भी चर्चा की जानी चाहिये। यह एक प्रकार से शोधार्थी के द्वारा प्रकट की गयी बौद्धिक ईमानदारी है जिसका कि सारस्वत साधना में अपना महत्त्व है।

14.3.2 विषयक्रम

आमुख के पश्चात् शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत किये जाने वाले अध्यायों की संख्या नामोल्लेख के साथ आनी चाहिये। प्रायः शोध प्रबन्ध के अध्यायों की संख्या सात, आठ या नौ तक हो सकती है। संख्या का निर्धारण बहुत कुछ विषय विशेष के विस्तार पर निर्भर करता है। शोध के कुछ क्षेत्र ऐसे होते हैं, जिनमें विषय विस्तार की अधिक गुंजाइश होती है।

स्वाभाविक है कि शोधार्थी को क्षेत्र अध्ययन (फील्ड वर्क) के हेतु आंकड़े जुटाने पड़ते हैं, प्रश्नावलियाँ तैयार करनी पड़ती है, साथ ही संकलित तथ्यों का विवेचन और विश्लेषण भी करना पड़ता है, और अन्त में अध्ययन के निष्कर्ष भी प्रस्तुत करने पड़ते हैं। दूसरी ओर शोध के कुछ क्षेत्र ऐसे होते हैं जिनमें विस्तार की अपेक्षा गहराई का आयाम देखने को मिलता है। सामग्री संकलन, तथ्य संग्रह से आगे बढ़कर शोध छात्र तत्व निरूपण की ओर अग्रसर होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस कोटि के शोध प्रबन्ध अधिक विस्तार लिये हुए नहीं होते। उनमें संक्षिप्तता, कसावट और गहराई देखने को मिलती है। स्वाभाविक है कि इस कोटि में आने वाले शोध प्रबन्धों की अध्याय संख्या सिमट कर पाँच या छः तक ही रह जाती है।

प्रत्येक अध्याय का एक स्पष्ट शीर्षक होना चाहिए। पहले अध्याय से लेकर अंतिम अध याय तक अध्ययन की एक क्रमिक योजना होनी चाहिए जो कि स्पष्ट रूप से अध्ययन को गति देने वाली हो। क्रमबद्ध रूप से एक अध्याय से दूसरे अध्याय को शीर्षक देते समय अध्यायों के नामकरण में तार्किकता दिखायी पड़नी चाहिए। विषय क्रम पर दृष्टिपात करते ही स्पष्ट रूप से अध्ययन की तर्कसम्मत दिशा परिलक्षित होनी चाहिए। प्रत्येक अध्याय का अपना पृथक शीर्षक होना चाहिए और फिर अध्याय के प्रमुख शीर्षक के अंतर्गत अध्ययन के विस्तार को संकेतित करने वाले उपशीर्षक भी दिए जाने चाहिए। इस प्रकार विषय प्रवेश में समग्र शोध प्रबन्ध की एक झलक दिखायी पड़नी चाहिए।

14.3.3 शोध प्रबन्ध का कलेवर

विभिन्न अध्यायों में बँटे शोध–प्रबन्ध का कलेवर तैयार करने में विशेष सावधानी अपेक्षित है। शोधार्थी को अध्यायों में विभक्त शोध–सामग्री का योजनाबद्ध ढंग से लेखन–कार्य करना चाहिए। भाषा सम्बन्धी विवेक की चर्चा हम यथास्थान कर चुके हैं। शैली निर्धारित करते समय इस बात का ध्यान रखा जाय कि एक अनुच्छेद में जो विचार प्रस्तुत किया गया है, अगले अनुच्छेद में क्रमिक रूप में विचार से सम्बन्धित सूत्रों का विकास किया जाय। विचार की आवृत्ति से बचना चाहिए। जहाँ पूर्व प्रसंग की चर्चा अपेक्षित है, वहाँ केवल संकेत भर कर दिया जाय। साथ ही ध्यान में रखने योग्य बात यह है कि शोधार्थी अपनी स्थापनाओं के समर्थन में अन्य विचारकों व विद्वानों के कथन उद्धृत करे और पाद–टिप्पणियों के द्वारा सन्दर्भ का खुलासा करे।

कभी–कभी विषय से सम्बन्धित किसी अन्य विद्वान के मत की आलोचना करनी हो तो पहले उस विद्वान को स्थापनाओं को उद्धृत किया जाना चाहिए। पूरी तरह ईमानदारी के साथ उक्त मत का परिचय देकर ही अपनी दृष्टि के अनुसार उस मत की आलोचना की जानी चाहिए। अपनी स्थापनाओं को सामने रखते समय बिन्दुवार अपनी तर्क पद्धति का प्रयोग करना चाहिए। अपने मत की पुष्टि में क्षेत्र विशेष के अधिकारी विद्वानों का मत भी सामने रखा जाना चाहिए।

शोध प्रबन्ध में शोधार्थी की तटस्थ वैज्ञानिक दृष्टि, तार्किकता एवं निर्वैयक्तिक निरूपण का विशेष महत्त्व है। प्रबन्ध का कलेवर ऐसा होना चाहिए कि उसमें कहीं भी विषय से भटकाव नहीं हो और न ही विषय प्रतिपादन में शिथिलता हो। एक अन्य बात की ओर हम शोधार्थी का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं– इधर–उधर से एकत्र की गई सामग्री की पूर्ण प्रामाणिकता को सुनिश्चित करके ही उसका उपयोग किया जाना चाहिए। स्तरहीन पुस्तकों का उल्लेख शोध प्रबन्ध में नहीं किया जाना चाहिए। इससे शोध की गरिमा को क्षति पहुँचती है।

शोध प्रबन्ध में उद्धरण देने की परिपाटी है। विषय प्रतिपादन में यह वांछनीय भी है। आवश्यकता इस बात की है कि उद्धरण देने में एकरूपता बरती जाय। लेखक का उल्लेख करने के साथ ही पुस्तक का एवं प्रसंग का संकेत भी किया जाना चाहिए और इस क्रम को सभी उद्धरणों में अपनाया जाना चाहिए। हिन्दी साहित्य के शोध छात्र बहुधा विषय का निरूपण करते हुए वैदिक युग, पौराणिक युग, मध्यकालीन इतिहास और आधुनिक परिस्थितियों तक अतिविस्तार में भटक जाते हैं। इस प्रकार के शोध प्रबन्ध अप्रासंगिक और अवांछित उद्धरणों से भी भरे रहते हैं। इससे न केवल शोध प्रबन्ध का भारी भरकम आकार हो जाता है अपितु विषय प्रतिपादन में शिथिलता भी आ जाती है। इस शैलीगत दोष के प्रति शोध छात्र को बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है।

14.3.4 शोध कार्य के निष्कर्ष

निर्धारित विषय पर अनुसन्धान के पश्चात् जो भी निष्कर्ष प्राप्त हों, उनकी प्रस्तुति का विशेष महत्त्व है। अध्ययन, विवेचन और विश्लेषण के फलस्वरूप शोधार्थी को अपने मत का स्पष्ट प्रतिपादन करना चाहिए। एक प्रकार से यह किसी भी अध्येता के श्रम की सार्थकता कही जा सकती है।

ध्यान में रखने योग्य बात यह है कि साहित्य के धरातल पर शोध दो प्रकार के होते हैं। पहला नवीन तथ्यों की खोज, दूसरा, उपलब्ध तथ्यों की पुनर्व्याख्या। इन दोनों क्षेत्रों में अध्ययन का स्वरूप भी भिन्न–भिन्न होता है। साथ ही अध्ययन के उपरान्त प्रस्तुत किये जाने वाले निष्कर्षों की प्रस्तुति का स्वरूप भी अलग होता है। तथ्यपरक शोध में तर्क–पद्धति का सहारा लेकर उपलब्ध स्थापनाओं में नवीनता का पुट देकर नवीन तथ्य जोड़ दिये जाते हैं। एक प्रकार से यह तथ्यानुसन्धान कहा जा सकता है। इस कोटि के अध्ययन में शोधार्थी को सन्, संवत, घटना, पात्र और प्रसंग की पूर्ण जाँच कर लेनी चाहिए। आमतौर से ऐतिहासिक साक्ष्यों की जाँच इस अध्ययन के अन्तर्गत आती है। हिन्दी साहित्य का आदिकाल, उसमें परिगणित कृतियों का परीक्षण, रचनाकारों का समय निर्धारण, कृतियों में वर्णित घटनाक्रम का परीक्षण एवं सम्बन्धित ऐतिहासिक तथ्य इसी श्रेणी में रखे जा सकते हैं। अतीत में जो रचनाकार हुए हैं, उनको अध्ययन के दायरे में लाना भी तथ्यानुसन्धान ही है। इसी प्रकार पुरानी पाण्डुलिपियों की खोज और विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त प्रतियों के पाठ की जाँच को भी इसी वर्ग में रखा जा सकता है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इतिहास, पुरातत्व, पाण्डुलिपि विज्ञान और भाषा शास्त्र में किया जाने वाला शोध–कार्य इसी क्षेत्र में रखे जाने योग्य है। इस दृष्टि से डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, डॉ. दशरथ ओझा, और आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जैसे विद्वानों का शोध–कार्य इसी वर्ग का है। स्पष्ट रूप से अपने अध्ययन के निष्कर्ष इन विद्वानों ने कृति के अन्त में संख्या क्रम से गिनाये हैं। यही शैली वांछनीय भी है।

अनुसन्धान कार्य का दूसरा धरातल प्राप्त तथ्यों की पुनर्व्याख्या और पुनः विवेचना से सम्बन्धित है। एक प्रकार से इस कोटि के अध्ययन में चिंतन–मनन का पक्ष उभर कर सामने आता है। अध्येता का अध्ययन जितना विशद और व्यापक होगा उसी अनुपात में उसके विमर्श की परिधि में भी विस्तार आएगा। दूसरे शब्दों में इस अध्ययन के अन्तर्गत दृष्टिकोण की मौलिकता परिलक्षित होती है।

अध्येता को अपने सुविचारित चिन्तन के पश्चात् किसी रचना विशेष या रचनाकार विशेष के सम्बन्ध में अपनी मौलिक दृष्टि की स्थापना करनी पड़ती है। हिन्दी साहित्य में तथ्यों की पुर्नव्याख्या का कार्य प्रतिष्ठित आलोचकों ने किया है। इस दृष्टि से डॉ. नगेन्द्र द्वारा 'देव और उनके काव्य का अध्ययन' विशेष उल्लेखनीय कहा जा सकता है। इसी कोटि में आधुनिक काल के आलोचक डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी की कृति "हिन्दी साहित्य में संवेदना का विकास" को भी रखा जा सकता है। इन दोनों ग्रन्थों में अध्येताओं ने उपलब्ध तथ्यों की पुनर्विवेचना प्रस्तुत की है। उदाहरण के लिये डॉ रामस्वरूप चतुर्वेदी ने अपने अध्ययन में छायावादी काव्य की एक नयी व्याख्या प्रस्तुत की है। अब तक छायावादी काव्य को पलायनवादी मानसिकता का काव्य माना जाता था। डॉ. चतुर्वेदी ने अपने मौलिक चिन्तन से छायावादी काव्य को शक्ति–काव्य कह कर परिभाषित किया है। यह एक आलोचक की, एक समर्थ अध्येता की, मौलिक दृष्टि का परिचायक है।

इस कोटि के अध्ययन में शोधार्थी को विवेचन और विश्लेषण के क्रम में अग्रसर होते हुए अपने निष्कर्ष प्रस्तुत करने पड़ते हैं। इसलिये शोध प्रबन्ध के आरम्भ से अन्त तक दृष्टि की जो नवीनता है उसका परिचय दिया जाना चाहिये। कुल मिलाकर शोध कार्य का यह उपसंहार भी है और निष्कर्ष भी।

14.3.5 पठित ग्रन्थों का विवरण

शोध प्रबन्ध का अंतिम सोपान पठित ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत करने से सम्बन्धित है। अध्ययन के दायरे में आने वाले रचनाकार और शोध पत्रिकाओं आदि का उल्लेख भी शोधार्थी को प्रस्तुत करना चाहिये। पुस्तक की सूची तैयार करते समय विषय से सम्बद्ध पाठ्यपुस्तकों की सूची पहले वर्ग में रखी जानी चाहिये तथा आलोचनात्मक अध्ययन हेतु प्रयोग में आये हुए ग्रन्थों का अलग से विवरण दिया जानां चाहिये। साथ ही अन्य भाषाओं तथा अध्ययन के अन्य स्त्रोतों का भी उल्लेख करना वांछनीय है। आमतौर से अकारादि क्रम का ध्यान रखते हुए पुस्तकों और लेखकों की सूची तैयार की जानी चाहिये, जिसमें पृष्ठ संख्या भी अंकित की जाये।

शोध कार्य की इन औपचारिकताओं का पालन शोध–प्रबन्ध को तैयार करने में किया जाता है। कतिपय विश्वविद्यालय शोधार्थी से अपेक्षा रखते हैं कि शोध प्रबन्ध के अन्त में अध्याय क्रम को ध्यान में रखते हुए सारांश भी प्रस्तुत किया जाय। इसी परिपाटी का पालन करते हुए शोध प्रबन्ध की शैली का स्वरूप उभरता है।

अन्त में शोध प्रबन्ध के परिशिष्ट भाग की चर्चा भी अपेक्षित है। अध्ययन के क्रम में शोधार्थी को बहुत सामग्री संकलित करनी पड़ती है उसमें से कुछ प्रबन्ध की तैयारी में काम न आ सकने वाली सामग्री भी रहा करती है, चाहे वह प्रबन्ध लेखन के उपयोग में न आ सकी हो, किन्तु नितान्त उपेक्षणीय भी नहीं है। ऐसी सामग्री को शोध प्रबन्ध के परिशिष्ट भाग में रखा जा सकता है। साथ ही शोधार्थी के द्वारा अध्ययन के दौरान विषय के विद्वानों से की गयी भेंटवार्ता को भी परिशिष्ट में समेटा जा सकता है। इस प्रकार शोध प्रबन्ध की शैली का एक सुनिर्धारित स्वरूप है जो कि इस प्रसंग में उभारा गया है।

14.4 सारांश

प्रस्तुत पाठ शोध प्रबन्ध की प्रस्तुति से सम्बन्धित है। इस पाठ में शोध प्रबन्ध की भाषा और शैली पर चर्चा की गयी है। शोध प्रबन्ध की भाषा तथ्यपरक, वैज्ञानिक, तर्क को वहन करने वाली, निर्वैयक्तिक भाषा होनी चाहिये। शोधार्थी को अलंकरण और भावुक उद्‌गारों से बचते हुए शोध की भाषा निर्धारित करनी चाहिये। लेखक का व्यक्तित्व शोध प्रबन्ध में प्रच्छन्न बना रहता है। कहीं भी उसके व्यक्तित्व का स्पर्श शोध

प्रबन्ध की भाषा में नहीं दिखायी पड़ता। संक्षेप में, शोध–प्रबन्ध की भाषा की यही पहचान होती है। जहाँ तक शोध प्रबन्ध की शैली का प्रश्न है, वह प्रचलन में आयी हुई परिपाटी कही जा सकती है, जिसमें प्राक्कथन, प्रबन्ध का मुख्य भाग, विचार विश्लेषण एवम् उपसंहार से होते हुए, परिशिष्ट लेखन के क्रम तक इसका एक निर्धारित प्रारूप है। लगभग प्रत्येक शोध प्रबन्ध इन्हीं क्रमिक सोपानों से अग्रसर होता है। संक्षेप में शोध–प्रबन्ध की प्रस्तुति भाषा शैली के इसी स्वरूप पर आधारित है।

14.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

- डॉ. नगेन्द्र : अनुसंधान और आलोचना
- सहगल डॉ. मनमोहन : हिन्दी शोध तन्त्र की रूपरेखा
- सिन्हा डॉ. सावित्री : अनुसंधान का स्वरूप
- आहूजा डॉ. राम : समाज विज्ञान में शोध
- शर्मा डॉ. विनय मोहन : शोध कार्य के कुछ पहलू
- सिंह डॉ. विजय पाल : शोध प्रबन्ध का क्षेत्र
- सिंह डॉ. सरनाम : शोध प्रबन्ध लेखन
- सिंह डॉ. उदय भानु : शोध प्रबन्ध के कुछ बिन्दु
- भटनागर आर. पी. : रिसर्च मैथडोलौजी

14.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. शोध प्रबन्ध की भाषा, आलोचना की भाषा से किस रूप में भिन्न है? उदाहरण सहित उत्तर दीजिये।
2. 'शोधार्थी का व्यक्तित्व उसकी भाषा से विलग रहना चाहिये'। इसका क्या अभिप्राय है?
3. 'भावुकता, अलंकरण और विशेषण प्रयोग, शोध प्रबन्ध की भाषा में अवांछनीय है'। इस कथन को समझाइये।
4. शोध प्रबन्ध की भाषा पर एक विस्तृत आलेख तैयार कीजिये।
5. ''शोध की भाषा, तथ्य वहन करने वाली बौद्धिक भाषा है''। इस कथन को स्पष्ट कीजिये।
6. शोध प्रबन्ध के मुख्य भाग में किन सोपानों की चर्चा की जाती है?
7. शोध प्रबन्ध की शैली में प्राक्कथन का क्या महत्त्व है? स्पष्ट कीजिये।
8. तथ्यपरक अनुसंधान और प्राप्त तथ्यों की पुनर्व्याख्या पर प्रकाश डालिये।
9. शोध प्रबन्ध के परिशिष्ट के अन्तर्गत कौन सी बातें आती हैं?
10. शोध प्रबन्ध की शैली में अकारादि क्रम से ग्रन्थ सूची निर्माण का क्या महत्त्व है? विस्तारपूर्वक समझाइये।

इकाई संख्या–15 शीर्षक–उद्धरण, संदर्भ, अनुक्रमणिका तथा सहायक ग्रन्थ सूची

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्धरण, संदर्भ, अनुक्रमणिका तथा सहायक ग्रन्थ सूची

15.2.1 उद्धरण का अर्थ

15.2.2 उद्धरण के प्रकार

15.2.3 उद्धरण प्रस्तुति की शैली

15.2.4 संदर्भ – शोध प्रविधि की एक पारिभाषिक अवधारणा

15.2.5 संदर्भ लेखन के प्रकार

15.2.6 संदर्भ और उद्धरण की पारस्परिकता

15.2.7 संदर्भ लेखन की कुछ अन्य विधियाँ

15.2.8 अनुक्रमणिका

15.2.8.1 नामानुक्रमणिका

15.2.9 सहायक ग्रन्थ सूची

15.3 सारांश

15.4 संदर्भ ग्रन्थ

15.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.0 उद्देश्य

- इस इकाई को पढ़कर आप–
- पाठ में आई हुई पारिभाषिक अवधारणाओं को समझ सकेंगे।
- शोध प्रबन्ध लेखन के विषय में ये अवधारणाएँ पारिभाषिक अर्थ रखती हैं अतएव इनको समझना और शोध प्रबन्ध लेखन में इनका प्रयोग करना शोध छात्र के लिये आवश्क है। इस पाठ के माध्यम से आपको इसी दिशा में जानकारियाँ प्रदान की जायेंगी।
- शोध प्रबन्ध लेखन, अध्येता की परिश्रमशीलता, अध्ययन की व्यापकता और नवीन स्थापनाओं से सम्बन्धित कहा जा सकता है। इस दिशा में अध्ययन की प्रामाणिकता, विश्वसनीयता और व्यापकता को दर्शाने में इन पारिभाषिक अवधारणाओं का प्रयोग किया जाता है। शोध छात्रों को इसमें दक्ष करना इस पाठ का उद्देश्य है।
- शोध कार्य अपने में तर्क संगत और वैज्ञानिक दृष्टि से युक्त किसी विषय विशेष

पर किया गया अनुसन्धान है इसलिये तार्किक और वैज्ञानिक दृष्टि से शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत की गयी स्थापनाओं को इन्हीं पारिभाषिक अवधारणाओं के माध्यम से समझा जा सकता है।

- शोध प्रबन्ध की तैयारी में उसके तकनीकी पक्ष को स्पष्ट करने के लिये उद्धरण, संदर्भ, अनुक्रमणिका तथा सहायक ग्रन्थ सूची का विशेष महत्त्व है। इन्हीं के आधार पर सामान्य अध्ययन एवं शोधपरक अध्ययन का अन्तर समझा जा सकता है। इस पाठ के माध्यम से शोध छात्र इस अन्तर को समझ सकेंगे।
- ''शोध का स्वरूप और प्रविधि'' शीर्षक, इस प्रश्न पत्र की विषयवस्तु को समझने में इन अवधारणाओं का विशेष महत्त्व है अतएव इस पाठ के माध्यम से आप इन पहलुओं को समझने में सक्षम होंगे। इनको समझाने में कतिपय उदाहरणों की सहायता ली जायेगी ताकि अवधारणा को स्पष्ट किया जा सके।

15.1 प्रस्तावना

इस पाठ का आरम्भ शोध प्रबन्ध लेखन में 'उद्धरण' के तकनीकी प्रयोग से होता है। उद्धरण क्या है? उसके कितने प्रकार हैं तथा उसके प्रयोग की क्या विशेषताएँ हैं? इन बिन्दुओं पर इस पाठ में विचार किया जा रहा है। इसी प्रकार उद्धरण और संदर्भ का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है? दोनो में परस्पर क्या अन्तर है? इस तथ्य को पाठ में स्पष्ट किया जाएगा। साथ ही उद्धरण और संदर्भ का प्रयोग करने में शोध छात्र को विशेष निर्देश दिये जाएँगें। अनुक्रमणिका तैयार करना एक श्रम साध्य कार्य है। शोध–प्रबन्ध में चर्चित पुस्तकों, लेखकों, पारिभाषिक अवधारणाओं, दार्शनिक और बौद्धिक प्रत्ययों को लक्ष्य करके अनुक्रमणिका तैयार की जाती है। अनुक्रमणिका के सम्बन्ध में वांछित परिचय देकर उसके उपयोग से होने वाले लाभ को भी रेखांकित किया जा सकता है। किसी भी शोध प्रबन्ध की तैयारी में सहायक ग्रन्थ सूची का महत्त्वपूर्ण योगदान हुआ करता है इसलिये प्रत्येक शोधार्थी को सहायक ग्रन्थ सूची को तैयार करने में विशेष सावधानी बरतनी वांछनीय है। शोध छात्र को सहायक ग्रन्थ सूची तैयार करते समय मूल ग्रन्थ, प्रारम्भिक स्रोत, माध्यमिक स्रोत, क्षेत्र अध्ययन तथा शोध पत्रों की जानकारी आदि का विवेकपूर्वक क्रम निर्धारित करके अपने अध्ययन को व्यवस्थित करना चाहिये। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन्हीं सावधानियों को बरतने से शोध प्रबन्ध का वैज्ञानिक स्वरूप निर्धारित होता है। प्रस्तुत पाठ में इन्हीं बिन्दुओं पर उदाहरण सहित जानकारी दी जाएगी।

15.2 उद्धरण, संदर्भ, अनुक्रमणिका तथा सहायक ग्रन्थ सूची

15.2.1 उद्धरण का अर्थ

'उद्धरण' का शाब्दिक अर्थ है – गद्य अथवा पद्य की पंक्तियों को शब्दशः किसी प्रसंग में प्रस्तुत करना। प्रश्न खड़ा होता है कि शोध प्रबन्ध लेखन के क्रम में कहीं से ग्रहण की गई इन पंक्तियों का उपयोग कहाँ तक उचित है ? हिन्दी साहित्य का शोधार्थी अपने निर्धारित विषय पर शोध कार्य करते समय उस विषय पर लिखित पुस्तकों का अध्ययन और अनुशीलन करता है। प्रायः यह अपेक्षा की जाती है कि उक्त शोध विषय पर प्रस्तुत की गयी अद्यतन अध्ययन सामग्री का उसे पूर्ण ज्ञान हो। इसी क्रम में उसके अध्ययन का क्षेत्र विस्तृत होता चला जाता है। यहाँ तक कि हिन्दी भाषा से इतर अन्य भारतीय

भाषाओं और विदेशी भाषाओं में अपने निर्धारित विषय से सम्बन्धित सामग्री के अध्ययन और अनुशीनल की अपेक्षा शोध छात्र से की जाती है। अपने अध्ययन के क्रम में शोध छात्र विविध ग्रन्थों से अपने उपयोग की सामग्री संकलित करता रहता है। प्रौढ़ ग्रन्थों से एवं प्रतिष्ठित विद्वानों के कहे गये वक्तव्य बहुत सारगर्भित हुआ करते हैं। ऐसे विचारों और वक्तव्यों को शोधार्थी सामग्री संकलन के क्रम में एकत्र करता रहता है। शोध प्रबन्ध के लेखन के समय इसी संकलित सामग्री में से अपने उपयोग हेतु उसे उद्धरण देने पड़ते हैं। ध्यान रखने की बात यह है कि विद्वानों के विचार जो उन्हीं की भाषा में ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर दिये जाते हैं, उन्हें उद्धरण कहते हैं।

15.2.2. उद्धरण के प्रकार

उद्धरण साहित्य के क्षेत्र में गद्य और पद्य दोनों प्रकार के होते हैं। पहली शर्त यह है कि उद्धृत कथन किसी प्रतिष्ठित विद्वान का वक्तव्य होना चाहिये। दूसरी शर्त यह है कि उद्धृत विचार शोध विषय से सम्बन्धित किसी नवीन दिशा, विचार सरणि, दृष्टिकोण और चिंतन को गति देने वाला हो। उद्धरण का चयन करते समय प्रकाशित–अप्रकाशित ग्रन्थ, पत्र–पत्रिकाएँ साक्षात्कार अथवा भाषण, उपयुक्त स्रोत कहे जा सकते हैं। प्रायः उद्धरण दो प्रकार के होते हैं– पहला संक्षिप्त और दूसरा विस्तृत। संक्षिप्त उद्धरण में तीन चार पंक्तियों तक का विचार स्थान पाता है जबकि विस्तृत उद्धरण में हम एक सम्पूर्ण अनुच्छेद, एक दो पृष्ठ तक विस्तृत कथन अथवा किसी व्याख्यान का सारभूत अंश उपयोग में लाते हैं।

15.2.3 उद्धरण प्रस्तुति की शैली

साधारणतया कोई उद्धरण शोध प्रबन्ध के आलेख में उद्धरण चिन्ह ''...............................'' लगा कर प्रस्तुत किया जाता है। उद्धरण यदि विस्तृत हुआ तो (–) लगा कर अलग अनुच्छेद में इनवर्टेड कौमा के अन्तर्गत रखा जा सकता है। उदाहरण के लिये प्रथम प्रकार का उद्धरण इस प्रकार होगा – आचार्य शुक्ल का कथन है कि ''आत्मा की मुक्तावस्था जिस प्रकार ज्ञान दशा कहलाती है, हृदय की मुक्तावस्था उसी प्रकार रस दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मुनष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं।''

दूसरी कोटि में उद्धरण विस्तृत होने के कारण प्रथम अनुच्छेद में, इनवर्टेड कौमाओं में लिखा जाता है। उदाहरण के लिये आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शोध परक ग्रन्थ ''हिन्दी साहित्य का आदिकाल'' से यदि कोई सम्पूर्ण अनुच्छेद या दो तीन अनुच्छेदों की सामग्री उद्धृत करनी हो तो उसे – के बाद प्रथम अनुच्छेद में प्रस्तुत किया जा सकता है। ध्यान रहे कि किसी प्रतिष्ठित विद्वान के नाम से अथवा किसी प्रसिद्ध कृति से ग्रहण की गयी शब्दराशि अक्षरशः शुद्ध होनी चाहिए। शोधार्थी को अपनी ओर से कोई संशोधन करने की छूट नहीं है। इस प्रकार उद्धरण का उपयोग करते समय शोधार्थी को सत्यनिष्ठा और बौद्धिक ईमानदारी का परिचय देना पड़ता है।

ऊपर की पंक्तियों में किसी प्रतिष्ठित विद्वान वक्ता के भाषण को भी उद्धृत करने की बात कही गयी है। ध्यान रहे कि भाषण प्रायः अलिखित और मौखिक ही हुआ करते हैं इसलिए उद्धरण के रूप में भाषण का उपयोग करने से पूर्व वक्ता से लिखित अनुमति अवश्य ले लेनी चाहिये। इस लिखित अनुमति के दो लाभ हैं। पहला तो यह कि भाषणकर्ता का शब्दशः विचार उद्धरण में प्रयुक्त किया जा सकता है और दूसरा यह कि

भाषण अंश के उद्धरण को एक प्रामाणिकता और विश्वसनीयता प्राप्त हो जाती है।

शोधार्थी को उद्धरण का उपयोग अपने मत की पुष्टि हेतु, अपने कथन के समर्थन में किया जाना चाहिये। इससे शोध प्रबन्ध को विद्वत् समाज का समर्थन प्राप्त हो सकता है। उद्धरण का दूसरा उपयोग कभी भ्रान्त धारणाओं, अविचारित वक्तव्यों और सतही विचारों के खण्डन हेतु भी किया जाता हैं। साहित्य का संसार और उसके अन्तर्गत आने वाली रचनाएँ अध्येताओं के द्वारा बार–बार व्याख्यायित होती रहती हैं। व्याख्या और पुनर्व्याख्या का यह क्रम साहित्य के धरातल पर निरन्तर चलता रहता है। यह स्वाभाविक ही है कि ऐसी स्थिति में पूर्व स्थापनाओं में संशोधन करने की स्थिति बनी रहती है। इसलिये शोधार्थी को अपने मत की प्रस्तुति से पूर्व, पूर्वपक्ष का मत प्रस्तुत करना भी समीचीन कहा जायेगा। इस प्रकार साहित्य के क्षेत्र में शोधन और परिष्कार की सारस्वत यात्रा निरन्तर चलती रहती है।

उद्धरण देने के क्रम शोधार्थी को यह निश्चय कर लेना है कि अपने प्रबन्ध लेखन की दृष्टि से उद्धरण का उपादेय अंश ही ग्रहण किया जाय। दीर्घाकार उद्धरणों से बचना चाहिए। केवल वैचारिक गहराई वाले अंश ही उद्धृत किये जाने चाहिए। इस सावधानी के दो लाभ हैं। पहला तो यह कि अनावश्यक और अवांच्छित अंशों से शोध प्रबन्ध बोझिल होने से बच जाता है और दूसरा यह कि शोध प्रबन्ध के कलेवर को अति विस्तार से बचाया जा सकता है। प्रायः यह देखने में आता है कि शोध प्रबन्ध के पृष्ठ रंगने के क्रम में शोध छात्र विस्तृत, अप्रासंगिक और अनावश्यक उद्धरणों की भरमार कर देते हैं। यह किसी भी शोध प्रबन्ध का एक बड़ा दोष कहा जा सकता है।

प्रश्न उठता है कि लम्बे और दीर्घकाय उद्धरणों में से शोधार्थी अपने उपयोग की विचारगर्भित पंक्तियों को कैसे उद्धृत करें? इसका यही उत्तर है कि विस्तृत उद्धरण के अवांछित अंश को बिन्दु (...............................) लगा कर छोड़ दिया जाय और केवल प्रासंगिक, उपयोगी और विचारगर्भित पंक्तियों को ही उद्धरण के रूप में अपनाया जाय। कहने की आवश्यकता नहीं कि इससे शोध प्रबन्ध में कसावट आ जाएगी और उसे बोझिलता से बचाया जा सकता है।

कभी कभी उद्धरण के लिये शोध छात्र के सम्मुख ऐसे प्रसंग भी आ जाते हैं जो उद्धृत करने योग्य तो होते हैं किन्तु उनमें कोई तथ्यपरक भूल या ऐसा विचार आ जाय जिस पर विद्वत जगत् में शंकाएँ खड़ी की गयी हों, ऐसी स्थिति में शोधार्थी को चाहिए कि वह अपने उपयोग हेतु उद्धरण को तो ग्रहण करे किन्तु कोष्ठक (?) में प्रश्न चिन्ह भी लगा दे। इससे यह भी स्पष्ट हो सकेगा कि शोध छात्र का मंतव्य उसको ज्यों का त्यों स्वीकार करने का नहीं है। प्रश्न खड़ा करके वह यह संकेत दे रहा है कि उक्त विचार की स्थापना के प्रति उसके मन में शंका बनी हुई है।

शोध प्रबन्ध में अब तक मुख्य कलेवर में उद्धरणों के उपयोग की चर्चा होती रही है किन्तु शोध प्रबन्ध तैयार करते समय हम उद्धरण का उपयोग पाद टिप्पणी के रूप में भी कर सकते हैं। ध्यान रखने योग्य बात यह है कि पाद टिप्पणी में जो उद्धरण दिया गया है वह प्रबन्ध लेखन के मुख्य भाग का अंग न बन कर इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है कि वह यदि प्रबन्ध के मुख्य कलेवर से अलग रखा गया है तो उसकी सर्वथा उपेक्षा भी नहीं की गयी। इस प्रकार शोध प्रबन्ध की रचना में उद्धरण को प्रबन्ध लेखन की प्रविधि का अंग माना जाता रहा है। शोध छात्र को निधारित विषय पर अपने विस्तृत

अध्ययन की जानकारी देने का अवसर भी उद्धरण देते हैं। दूसरी ओर विचारों के मौलिक प्रतिपादन में भी इनसे सहायता प्राप्त होती है।

15.2.4 संदर्भ – शोध प्रविधि की एक पारिभाषिक अवधारणा

उद्धरण की भांति संदर्भ भी शोध प्रविधि की एक पारिभाषिक अवधारणा है। ऊपर की पंक्तियों में उद्धरण की चर्चा कुछ विस्तार से की गयी है। उद्धरणों की प्रामाणिकता और विश्वसनीयता संदर्भ से ही निर्धारित होती है। उद्धरण देने के साथ ही शोध छात्र उस पर क्रमिक रूप से संख्या अंकित करता रहता है और फिर अन्यत्र संख्या के आगे, उद्धरण किसका है? कहाँ से लिया गया है? ग्रन्थ का संस्करण क्या है? और उसकी पृष्ठ संख्या क्या है? आदि का पूर्ण उल्लेख करता है। इससे संदर्भोल्लेख की शैली निर्धारित होती है। कुल मिलाकर शोध प्रबन्ध रचना में उद्धरण और संदर्भ एक दूसरे के सहचर हैं। विशेष रूप से शोध छात्र को ध्यान रखना चाहिये कि संदर्भ का उल्लेख करते समय पूरे शोधप्रबन्ध में एकरूपता बरती जाय। उदाहरण स्वरूप –"हिन्दी साहित्य का आदिकाल, लेखक हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या 16।" इसी क्रम से संदर्भोल्लेख की परिपाटी का पालन किया जाना चाहिये। संदर्भ लेखन की इस एकरूपता से शोध प्रबन्ध में वैज्ञानिक आधार बना रहता है जिससे शोध छात्र को भी सहूलियत बनी रहती है। दूसरी ओर शोध प्रबन्ध के वाचन से लाभ उठाने वाले अध्येताओं और शोध छात्रों को भी संदर्भोल्लेख की एकरूपता से मूल ग्रन्थों का अवलोकन करने में सुविधा बनी रहती है।

15.2.5 संदर्भ लेखन के प्रकार

शोध प्रबन्ध में संदर्भ लेखन दो प्रकार से स्थान पाता है। पहला प्रकार वह है जहाँ शोध छात्र विषय प्रतिपादन के प्रवाह में अपने मत समर्थन करने हेतु इसका संदर्भोल्लेख करता है –"हिन्दी साहित्य के इतिहास में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काल निर्धारण करते समय बाह्य परिस्थितियों और तदनुकूल सहृदय की चित्त दशा में आये हुए परिवर्तनों की एकरूपता की चर्चा की है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ संख्या 35।" शोध छात्र प्रायः इसी प्रकार से आलेख के मध्य में संदर्भ का उल्लेख करते हैं। यह पहली प्रकार का संदर्भ लेखन है।

संदर्भ लेखन का दूसरा प्रकार वह है जहाँ संदर्भ देने में शोध प्रबन्ध के नीचे पाद टिप्पणी के रूप में संदर्भ दिया जाता है। यहाँ भी संदर्भ देने का क्रम वही होना चाहिये अर्थात पहले पुस्तक का नाम, फिर लेखक, फिर प्रकाशक, फिर संस्करण और फिर पृष्ठ संख्या। आजकल शोध प्रबन्ध लेखन में पाद टिप्पणी के रूप में स्थान छोड़ कर पृष्ठ के निचले भाग में संदर्भ लेखन किया जाता है। संदर्भ लेखन की एक दूसरी परिपाटी भी प्रचलन में आ गयी है। उद्धरण, नामोल्लेख, पुस्तक का शीर्षक आदि की चर्चा करते समय शोध छात्र इन पर एक संख्या अंकित कर देता है और अध्याय की समाप्ति पर या शोध प्रबन्ध के अंत में अध्याय क्रमानुसार प्रमुख रूप से संख्या के आगे संदर्भ दिया जाता है। इधर प्राकृतिक विज्ञान और समाजशास्त्र से संम्बन्धित शोध प्रबन्धों में संदर्भ लेखन की इस परिपाटी का बहुधा प्रयोग देखा जाता है।

संदर्भ लेखन के ये दोनों प्रकार शोध छात्र की दृष्टि में रहने चाहिएँ। ये दोनों प्रकार शोधप्रविधि में मान्य हैं। यह शोध छात्र के व्यक्तिगत चयन पर निर्भर करता है कि वह इन दोनों में से किस प्रकार को अपनाता है।

15.2.6 संदर्भ और उद्धरण की पारस्परिकता

ऊपर की पंक्तियों में उद्धरण और संदर्भ को सहचर कहा गया है अर्थात ये दोनों शोध प्रबन्ध में साथ साथ चलते हैं। किसी पुस्तक से ली गयी पंक्तियाँ, किसी विचारक का वक्तव्य, शोध प्रबन्ध में उद्धृत किया जाता है तो वह तब तक मान्य नहीं माना जायेगा जब तक कि उपयुक्त संदर्भ से उक्त उद्धरण को न जोड़ा जाय। शोध प्रबन्ध लेखन की वैज्ञानिक परिपाटी की यह आवश्यक शर्त है कि कोई भी विचार, मत या तर्क यदि शोध प्रबन्ध में स्थान पाता है तो वह स्तरीय हो, प्रामाणिक हो, विश्वसनीय हो और मान्य हो। इसका निर्धारण संदर्भ के आधार पर ही किया जा सकता हैं शोध प्रबन्ध में अध्येता का व्यापक अध्ययन, उसकी तार्किकता और बौद्धिक आयाम भी इससे प्रकट होते हैं। कुल मिलाकर शोध प्रबन्ध लेखन एक बौद्धिक व्यापार है जिसमें शोधार्थी की अध यनशीलता और किसी लक्ष्य विशेष को ध्यान में रखकर तार्किक चिंतन दिखायी पड़ता है। साहित्य का शोध प्रबन्ध भी वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित हो सकता है और अन्ततः अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले निष्कर्ष इस ओर संकेत करते है कि शोधार्थी की शोध प्रविधि कार्य कारण श्रृंखला में बंधी हुई है। इस लक्ष्य की पूर्ति में उद्धरण और संदर्भ का पारस्परिक योगदान महत्व रखता है।

15.2.7 संदर्भ लेखन की कुछ अन्य विधियाँ

कभी–कभी शोधार्थी मूल ग्रन्थों को उद्धृत करने की बजाय किसी अन्य विद्वान या शोधार्थी के द्वारा उक्त ग्रन्थ का उपयोग अपने शोध कार्य में कर लेता है। प्रश्न खड़ा होता है कि ऐसी स्थिति में शोधार्थी किसी अन्य विद्वान के उद्धरण को उद्धृत करते समय संदर्भ का संकेत किस प्रकार करे? ध्यान देने योग्य बात यह है कि उद्धृत अंश का लेखक तो वही रहेगा परन्तु उद्धरण का स्रोत बदल जायेगा। शोधार्थी का कर्त्तव्य है कि वह मूल विचारक के नाम से उद्धरण प्रस्तुत करते हुए अपनी पाद टिप्पणी में वर्तमान शोध का संकेत दे। कुल मिलाकर संदर्भ लेखन का स्वरूप इस प्रकार हो जाएगा – ''.................. ऋग्वेद 5/3/2/2 डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा ''हिन्दी साहित्य का आदिकाल'' में उद्धृत।

यदि उद्धृत अंश किसी ऐसे विशेषांक या ग्रन्थ से लिया गया हो जिसमें विभिन्न लेखकों के आलेख संकलित हैं और उनका सम्पादक कोई विशिष्ट व्यक्ति है तो ऐसी स्थिति में संदर्भ निर्देश इस प्रकार हो जाएगा – लेखक का नाम, लेख का नाम, उद्धरण चिन्हों में पुस्तक का नाम जिसमें लेख सम्पादित है, पृष्ठ संख्या, इसके साथ कोष्ठक और ''सम्पादित'' शब्द लिख कर कोलन (:) लगाया जाता है और सम्पादक का नाम लिखा जाता हैं

पाण्डुलिपियों का संदर्भ देते समय पाद टिप्पणी का स्वरूप इस प्रकार होगा – कपूरचन्द्र त्रिखा, रामायण (पाण्डुलिपि), संख्या 2793, सैन्ट्रल पब्लिक लाईब्रेरी, पटियाला। पत्र संख्या 10।

इसके अतिरिक्त पत्र पत्रिकाओं से ग्रहण किये गये उद्धरणों का संदर्भ इस प्रकार दिया जाएगा – डॉ. मनमोहन सहगल, ''जायसी का कहरानामा'', सप्तसिन्धु। वर्ष 11 (जून 1965), पृष्ठ संख्या 21।

पत्र पत्रिकाओं के अलावा शोधार्थी को गजेटियर या रिपोर्ट से भी उद्धरण ग्रहण करने

पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में संदर्भ का स्वरूप इस प्रकार होगा – 'रिपोर्ट ऑन प्राइमरी एजूकेशन' पंजाब गवर्नमैंट गजट, वर्ष 1949, पृष्ठ 324, लोक सम्पर्क विभाग पंजाब।

पाद टिप्पणियों के ये कतिपय उदाहरण हैं जिन्हें विशिष्ट स्थिति में ही प्रयोग में लाया जाता है अन्यथा सामान्य स्थिति में पाद टिप्पणी के संदर्भ बहुत सरल होते हैं। अक्सर लेखक, रचना, लेखक और पृष्ठ संख्या देकर कर्तव्य की इतिश्री कर लेते हैं। कुल मिलाकर संदर्भ निर्देश, शोध प्रबन्ध लेखन की प्रविधि का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है, जिस पर शोधार्थी को पूर्ण गम्भीरता से मनन करना चाहिए।

15.2.8 अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका शोध प्रबन्ध की तैयारी में एक विशिष्ट महत्त्व वाला अंश कहा जा सकता है। शोधार्थी शोध प्रबन्ध के अन्त मे अनुक्रमणिका प्रस्तुत करता है। अनुक्रमणिका तैयार करना एक श्रम साध्य काम है। अनुक्रमणिका को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। पहले वर्ग मे विषयानुक्रमणिका आती है और दूसरे में नामानुक्रमणिका। पहले यह समझना आवश्यक है कि अनुक्रमणिका तैयार करने की उपादेयता क्या है? देखा जाय तो शोधार्थी अपने शोध प्रबन्ध को समाप्त करते हुए विषयानुक्रमणिका एवं नामानुक्रमणिका को तैयार करता है। इन अनुक्रमणिकाओं के द्वारा शोध छात्र अपने अध्ययन के क्रम में आये हुए पारिभाषिक विषयों को अकारादि क्रम से संकेतित करता है तथा प्रत्येक विषय के अन्तर्गत शोध प्रबन्ध में निर्देशित पृष्ठ संख्याओं को भी अंकित करता है। उदाहरण के लिये किसी शोध प्रबन्ध में दर्शन, व्याकरण, मनोविज्ञान काव्यशास्त्र और राजनीतिशास्त्र आदि विषयों के विचार ग्रहण किये जाते हैं तो शोधार्थी का कर्तव्य है कि वह दर्शन विषय की अनुक्रमणिका तैयार करते समय शोध प्रबन्ध के विभिन्न पृष्ठों में आये हुए दर्शन सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों को पृष्ठ संख्या सहित दर्शाता चला जाय। इसी प्रकार प्रत्येक विषय की अनुक्रमणिका तैयार की जाती है। शोध प्रबन्ध का परीक्षक अथवा प्रस्तुत किये गये शोध प्रबन्ध का अन्य अध्येता अनुक्रमणिका देख कर अपने विषय के अन्तर्गत दर्शायी हुई पृष्ठ संख्या का अवलोकन कर सकता है। इसका लाभ यह होगा कि अध्येता अपनी उपयोगी विषयवस्तु को समझने में अल्प समय में ही शोध प्रबन्ध के उपयुक्त अंश का उपयोग कर सकता है। किसी भी शोध प्रबन्ध को व्यवस्थित रूप देने में विषयानुक्रमणिका का अपना महत्त्व है, इससे शोधार्थी के अध्ययन की परिधि का भी परिचय मिलता है।

15.2.8.1 नामानुक्रमणिका

विषयानुक्रमणिका के पश्चात् नामानुक्रमणिका तैयार की जाती है। शोध प्रबन्ध में आये हुए संज्ञा पदों को अकारादि क्रम से व्यवस्थित किया जाता है। नामानुक्रमणिका के अन्तर्गत विचारकों, विद्वानों, शोधार्थियों एवं तत्व चिंतकों के नाम को शोध प्रबन्ध में जिन जिन पृष्ठों पर स्थान दिया गया हो प्रत्येक नाम के साथ शोध प्रबन्ध की पृष्ठ संख्या भी अंकित की जाती है। उदाहरण के लिये हजारीप्रसाद द्विवेदी –पृष्ठ संख्या 12,18,25,35 आदि। हजारी प्रसाद जी के नाम से उल्लिखित नामानुक्रमणिका इस प्रकार सामने आने पर अध्येता का कार्य सरल हो जाता है। वह निर्दिष्ट पृष्ठों को उलट कर अपने लिये उपादेय विचार, सूचना और प्रसंग को आसानी से ग्रहण कर लेता है। अकारादि क्रम से तैयार की गयी इस नामानुक्रमणिका का अपना विशेष महत्व है। अध्ययन की दिशा को अग्रसर करने में नामानुक्रमणिका का महत्त्व रेखांकित करने योग्य है। प्रायः हिन्दी

साहित्य के शोध छात्र अनुक्रमणिका तैयार करने के श्रम से विमुख रहते हैं। किसी शोध प्रबन्ध पर मौखिकी के समय परीक्षक इस न्यूनता की ओर संकेत कर सकते हैं और परीक्षक प्रतिवेदन में यह टिप्पणी दे सकते हैं कि इस शोध प्रबन्ध को प्रकाशन योग्य तभी समझा जाय जब शोध छात्र प्रबन्ध के परिशिष्ट भाग में विषयानुक्रमणिका और नामानुक्रमणिका को तैयार करे।

पश्चिमी देशों में जब भी शोध प्रबन्ध प्रकाशित होता है तो अनिवार्य रूप से उसमें अनुक्रमणिका समाविष्ट रहती है। यहाँ तक कि अनुक्रमणिका तैयार करने के लिए एक विशेष प्रकार की योग्यता वांछित है इसलिए विशेषज्ञों की सेवा भी ली जाती है। उचित पारिश्रमिक के साथ विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई अनुक्रमणिका शोध प्रबन्ध की शोभा बढ़ाने का कार्य करती हैं।

15.2.9 सहायक ग्रन्थ सूची

सहायक ग्रन्थ सूची का सीधा सीधा सम्बन्ध शोध ग्रन्थ के सामग्री संकलन से है। अपने शोध निर्देशक का निर्देश पाते ही शोध छात्र सामग्री संकलन के क्षेत्र में अग्रसर हो जाते हैं। अपने शोध विषय से सम्बन्धित सामग्री को एकत्र करने के क्रम में वे पुस्तकालयों, शोध केन्द्रों, विषय से सम्बन्धित विशेषज्ञों, प्राचीन पाण्डुलिपियों, पत्रिकाओं के विशेषाकों एवं विभिन्न विचारकों और अध्येताओं से भेंट करके सामग्री एकत्र करते रहते हैं। इस प्रक्रिया में शोध छात्र के पास प्रभूत मात्रा में कच्ची सामग्री संकलित हो जाती है– नोट्स के रूप में, टिप्पणी के रूप में, फोटो कॉपी के रूप में तथा सीडी के रूप में। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस क्रम में शोधार्थी के पास काफी फाइलें तैयार हो जाती हैं, जिनमें से शोध प्रबन्ध का आलेख तैयार करते समय अधिकांश सामग्री गौण हो जाती है और केवल अंश मात्र ही प्रबन्ध लेखन के उपयोग में आ पाती है। यहाँ पर ध्यान रखने योग्य बात यह है कि इकट्ठा की हुई सामग्री का शोध प्रबन्ध तैयार करते समय भले ही सीमित उपयोग किया गया हो किन्तु शोध छात्र को सुनिश्चित दिशा में आगे बढ़ने में, दृष्टिकोण को स्वच्छ बनाने में, विवेचन और विश्लेषण के क्रम में और अन्ततः निष्कर्ष तक पहुँचने में इस परिश्रम का निश्चित योगदान रहता है, इससे दृष्टि का विस्तार, तर्क पद्धति का विकास एवं शोध कार्य को एक दिशा प्राप्त होती है।

अब प्रश्न खड़ा होता है कि शोध कार्य की समाप्ति के पश्चात् सहायक ग्रन्थ सूची का निर्माण करते समय वह किसे सम्मिलित करे और किसे छोड़े?

इस प्रसंग में विद्वानों ने शोध सामग्री की ग्रन्थ सूची को निम्नलिखित कोटियों में विभक्त किया है–

1. प्रकाशित ग्रन्थ 2. अप्रकाशित ग्रन्थ 3. पुरातन पाण्डुलिपियाँ

4. अनेक खण्डों में रचे गये ग्रन्थों में प्रयुक्त अंश 5. विश्वकोश 6. पत्र–पत्रिकाएँ

7. राजकीय प्रकाशन 8. सम्पादित ग्रन्थ 9. साक्षात्कार और

10. पत्र व्यवहार.

ग्रन्थ सूची तैयार करते समय शोध प्रबन्घ के शीर्षक को दृष्टिपथ में रखना आवश्यक है। तदनुसार शीर्षक के अनुकूल ग्रन्थ सूची तैयार की जाती है। उदाहरण के लिये यदि किसी साहित्यकार या काल विशेष की साहित्यिक प्रवृत्तियों पर शोध विषय केन्द्रित है,

तो सूची तैयार करते समय प्रकाशित ग्रन्थों को दो भागों में विभक्त कर ग्रन्थ सूची तैयार की जायेगी। पहले वर्ग में विषय से सीधे जुड़े हुए मूल ग्रन्थों को अकारादि क्रम से प्रस्तुत किया जायेगा। मूल ग्रन्थ वे कहलाते हैं जो किसी रचनाकार के द्वारा रचित और प्रकाशित मूल रचनाएँ हों। दूसरे वर्ग में लेखक की ऐसी कृतियाँ शामिल की जायें जो सीधे सीधे उससे भले ही जुड़ी हुई न हो किन्तु सहायक सामग्री के रूप में शोधार्थी ने जिनका उपयोग किया हो। तीसरी कोटि में शोध प्रबन्ध के मूल विषय से जुड़े हुए आलोचनात्मक ग्रन्थों को स्थान दिया जाना चाहिये। विभिन्न आलोचकों से प्राप्त आलोचनात्मक दृष्टि के निर्माण में जिन आलोचनापरक ग्रन्थों का उपयोग किया गया है उनका विशेष महत्त्व होता है। इसलिए ग्रन्थ सूची में उनका उल्लेख प्रथम कोटि में रखा जाना स्वाभाविक है। चौथी सूची में शब्दकोश और विश्वकोश जैसे ग्रन्थों को स्थान दिया जाना चाहिये। पारिभाषिक शब्दावली एवम् अन्य अवधारणाओं को समझाने में शोधार्थी प्रायः इन ग्रन्थों का उपयोग करते हैं, इसलिये इनकी अलग सूची निर्मित की जानी चाहिये। पाँचवें वर्ग में विवेच्य विषय पर तैयार किये गये पत्र पत्रिकाओं के विशेषांक रखे जाने चाहिए। इसी वर्ग में शोध पत्रों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिये, जिनका उपयोग शोध छात्र ने अपने शोध प्रबन्ध की रचना में किया हो। छठी कोटि में विदेशी साहित्य या इतर अनुशासनों की पुस्तकों को रखा जाना चाहिये जिनका उपयोग प्रबन्ध लेखन में किया गया हो। सातवीं कोटि में विद्वानों से की गयी भेंटवार्ता, पत्र व्यवहार और प्रकाशित अथवा अप्रकाशित व्याख्यान रखे जाने चाहिए जो कि शोध छात्र के लिये उपयोगी रहे हों। आठवीं कोटि में पाण्डुलिपियों की फोटोप्रति, विषय से सम्बन्धित मानचित्र, सम्बन्धित विषय की सीडी को स्थान मिलना चाहिये। ध्यान देने योग्य बात यह है कि साहित्य का क्षेत्र व्यापक प्रसंगों को, अवधारणाओं को अपने में समेटे रहता है। इसलिये शोध छात्र को अपने अध्ययन का दायरा विस्तृत करना पड़ता है। इसलिये इतर विषयों के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ जिस रूप में प्रयुक्त हुए हों उनका उल्लेख उसी रूप, प्रायः मूल ग्रन्थ की फोटोप्रति के रूप में इसी कोटि में रखी जानी चाहिये।

कुल मिलकार ग्रन्थ सूची तैयार करना एक पूर्ण कौशल का कार्य है और इसमें अतिरिक्त सावधानी बरती जानी चाहिये। बहुधा इसमें वे ग्रन्थ भी शामिल किये जाते हैं जिनके अध्ययन और अवलोकन से शोध छात्र का दृष्टिकोण विकसित हुआ है, ज्ञान का क्षेत्र विस्तृत हुआ है और विषय के निष्कर्ष तक पहुँचने में प्रकारान्तर से जिन ग्रन्थों के चिंतन मनन से शोध छात्र लक्ष्य तक पहुँचा है।

15.3 सारांश

प्रस्तुत पाठ शोध प्रबन्ध की चार प्रमुख पारिभाषिक अवधारणाओं क्रमशः--उद्धरण, सदर्भ, अनुक्रमणिका और ग्रन्थ सूची है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन चारों अवधारणाओं को समझाने का प्रयास प्रस्तुत पाठ में किया गया है। इनको समझने के पश्चात् शोध छात्र शोध प्रबन्ध तैयार करने में सफल हो सकेंगे। शोध की एक सुनिश्चित परिपाटी है जिसको ध्यान में रख कर शोध प्रबन्ध को एक व्यवस्थित और वैज्ञानिक प्रारूप के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रस्तुत पाठ में उन सावधानियों की ओर शोध छात्र का ध्‍
यान आकर्षित किया गया है, जो कि एक अच्छे और सुव्यवस्थित प्रबन्ध को त्रुटि रहित बनाने में सहायक हो सकती है। विशेष रूप से इस ओर शोध छात्र का ध्यान आकर्षित किया गया है जो कि उसे प्रबन्ध निर्माण के लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायक हो सकते हैं। यदि इस समग्र पाठ की ओर छात्र का ध्यान केन्द्रित रहे तो निश्चय ही एक अच्छा और

स्तरीय शोध आलेख तैयार हो सकता है। इस दिशा में शोध छात्र को सचेत और सावधान रह कर अग्रसर करते रहना ही प्रस्तुत पाठ का उद्देश्य है।

15.4 संदर्भ ग्रन्थ

- डॉ. नगेन्द्र – अनुसंधान और आलोचना
- सहगल डॉ. मनमोहन – हिन्दी शोध तंत्र की रूप रेखा
- सिन्हा डॉ. सावित्री – अनुसंधान का स्वरूप
- आहूजा डॉ. राम – समाज विज्ञान में शोध
- शर्मा डॉ. विनय मोहन – शोध कार्य के कुछ पहलू
- सिंह डॉ. विजयपाल – शोध प्रबन्ध का क्षेत्र
- सिंह डॉ. सरनाम – शोध प्रबन्ध लेखन
- सिंह डॉ. उदयभानु – शोध प्रबन्ध के कुछ बिन्दु
- भटनागर डॉ. आर.पी. – रिसर्च मैथडोलौजी

15.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. उद्धरण का पारिभाषिक अर्थ स्पष्ट करते हुए उद्धरण के प्रकारों पर प्रकाश डालिए।
2. उद्धरण प्रस्तुत करने की प्रमुख शैलियाँ क्या हैं ?
3. संदर्भ क्या है? प्रबन्ध लेखन में संदर्भ निर्देश की क्या परिपाटी है? समझाइये।
4. उद्धरण और संदर्भ सहचर क्यों है? दोनों की पारस्परिकता को उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
5. अनुक्रमणिका के कितने प्रकार है ? अनुक्रमणिका का शोध प्रबन्ध में क्या महत्व है? स्पष्ट कीजिए।
6. ग्रन्थ सूची तैयार करने का प्रमुख रूप से क्या आधार है? उसके महत्व का प्रतिपादन करते हुए ग्रन्थ सूची के प्रकार का निर्देश कीजिए।
7. ग्रन्थ सूची में मुख्य और गौण का विभाजन किस आधार पर किया जाता है? उदाहरण सहित उत्तर दीजिए।
8. शोध प्रबन्ध के प्रारूप को व्यवस्थित करने में पारिभाषिक अवधारणाओं का क्या महत्व है ?
9. शोध प्रबन्ध लेखन को एक श्रम साध्य कार्य क्यों माना जाता है ? स्पष्ट कीजिए।

□

इकाई–16 कम्प्यूटर व अन्य प्रौद्योगिकी

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 कम्प्यूटर को जानें

16.2.1 कम्प्यूटर : एक परिचय

16.2.2 कम्प्यूटर के प्रकार

16.2.3 कम्प्यूटर के अंग

16.3 कम्प्यूटर का संचालन

16.4 कम्प्यूटर पर आधारित अन्य प्रौद्योगिकियाँ

16.5 सारांश

16.6 शब्दावली

16.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

16.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम कम्प्यूटर और इससे संबद्ध और प्रभावित प्रौद्योगिकियों की चर्चा करेंगे। मुख्य रूप से चर्चा कम्प्यूटर की होगी। इस इकाई को पढ़ने के बाद :

- कम्प्यूटर शब्द का अर्थ जान सकेंगे और इसकी परिभाषा निर्धारित कर सकेंगे।
- कम्प्यूटर के इतिहास से परिचित हो सकेंगे।
- कम्प्यूटर के विभिन्न अंगों जैसे सॉफ्टवेयर और हार्डवेयर का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- कम्प्यूटर के कार्यों का अवलोकन कर सकेंगे।
- कम्प्यूटर पर कार्य करना सीख सकेंगे, और
- दुनिया भर की तमाम प्रौद्योगिकियों में कम्प्यूटर के उपयोग की चर्चा कर सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

कम्प्यूटर आज की दुनिया में अपरिचित नाम नहीं रह गया है। अब लगभग सभी कार्यालयों में कामकाज करने के लिए कम्प्यूटर का उपयोग होने लगा है। रेडियो और टेलीविजन की तरह यह घर–घर की उपयोगी वस्तु बनता जा रहा है। कम्प्यूटर की प्रौद्योगिकी का प्रयोग कई प्रौद्योगिकियों में होता है और हवाई जहाज से लेकर बच्चों के खिलौने तक में कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी का उपयोग होने लगा है।

इस इकाई में सबसे पहले हम कम्प्यूटर के इतिहास और उसके कार्यों से परिचित होंगे। इसके बाद हम यह जानने की कोशिश करेंगे कि कम्प्यूटर है क्या? यानी कम्प्यूटर को परिभाषित करने की कोशिश करेंगे। कम्प्यूटर अनेक प्रकार के कार्य करता है। इसमें

लेखन और दस्तावेजीकरण से लेकर मल्टीमिडिया, नेटवर्किंग आदि का भी कार्य किया जाता है। कम्प्यूटर इंटरनेट का भी बहुत बड़ा माध्यम है जिसके द्वारा पूरी दुनिया में सूचना क्रांति आ गई है। कम्प्यूटर कैसे कार्य करता है? इस पर कैसे कार्य किया जाता है? आदि की जानकारी भी इस इकाई में दी जाएगी। इसमें माइक्रोसॉफ्ट वर्ड, पावर प्वाइंट, मल्टीमीडिया, नेटवर्किंग और इंटरनेट की चर्चा की जाएगी।

कम्प्यूटर तकनीक का अन्य प्रौद्योगिकियों पर भी गहन प्रभाव पड़ा है। रॉकेट, हवाई जहाज, मोटर कार अब कम्प्यूटर द्वारा संचालित होते हैं। इसके अलावा रोजमर्रा की वस्तुएँ जैसे वाशिंग मशीन, बच्चों के खिलौने, मोबाइल फोन, आदि भी कम्प्यूटर तकनीक से ही चलते हैं यानी उनमें प्रोग्रामिंग की जाती है और उसी प्रोग्रामिंग के द्वारा वे संचालित होते हैं। दूरसंचार और मुद्रण प्रौद्योगिकी पर कम्प्यूटर का अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा है और इसका स्वरूप बदल गया है। इस पर भी इस इकाई में विचार किया जाएगा।

इकाई के बीच में बोध प्रश्न दिए गए हैं। यह स्वाध्याय आधारित प्रश्न हैं। आप इन्हें हल करें और यह जानने की कोशिश करें कि आपने इस इकाई से कितना सीखा है। इस इकाई में शब्दावली के अन्तर्गत उन पारिभाषिक शब्दों का अर्थ स्पष्ट किया गया है जिनको जानना कम्प्यूटर को जानने और उस पर काम करने के लिए आवश्यक है। अन्त में अभ्यास के लिए कुछ प्रश्न दिए गए हैं जिन्हें आप अवश्य हल करें क्योंकि इससे आपको कम्प्यूटर के संचालन में मदद मिलेगी और आप कम्प्यूटर पर काम करना सीख सकेंगे।

16.2 कम्प्यूटर को जानें

इस भाग में कम्प्यूटर से जुड़ी बुनियादी बातों की जानकारी दी जा रही है। कम्प्यूटर पर काम करने के लिए इन्हें जानना जरूरी है। आप जिस मशीन पर काम कर रहे कर रहे हैं उसके मिजाज से वाकिफ होना जरूरी है। तो, आइए, जानें अपने कम्प्यूटर (–) मित्र का स्वभाव।

16.2.1 कम्प्यूटर : एक परिचय

कम्प्यूटर एक मशीन है जो पूर्वनिर्धारित प्रोग्रामिंग और तयशुदा निर्देशों के अनुसार कार्य करता है। कम्प्यूटर का अर्थ और स्वरूप समय–समय पर बदलता रहा है। जो आधुनिक कम्प्यूटर हमारे सामने उपस्थित है वह बीसवीं शताब्दी के मध्य में लगभग 1940–45 के बीच सामने आया। हालाँकि कम्प्यूटर की अवधारणा और कम्प्यूटर से मिलती जुलती विभिन्न मशीनें पहले भी मौजूद थीं। जब प्रारंभ में इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटर का निर्माण हुआ था तो इसका आकार एक बड़े कमरे के बराबर था जिसमें सैकड़ों आधुनिक पर्सनल कम्प्यूटर के बराबर ऊर्जा का इस्तेमाल होता था। आधुनिक कम्प्यूटर लघु आकारीय समन्वित सर्किटों से संचालित है और यह जितना स्थान घेरता है उससे सैकड़ों लाखों गुना ज्यादा काम करता है। अब तो ऐसे भी कम्प्यूटर बनाए जाने लगे हैं जो छोटी घड़ी में समा सकते हैं। पर्सनल कम्प्यूटर सूचना–युग के प्रतिनिधि हैं और आमतौर पर इसे ही कम्प्यूटर के रूप में देखा जाता है। आजकल कम्प्यूटर तकनीक का इस्तेमाल लड़ाकू विमानों से लेकर प्रौद्योगिकी रोबोट, डिजिटल कैमरा और बच्चों के खिलौने तक में किया जाता है। कैलकुलेटर भी एक प्रकार का कम्प्यूटर ही है परंतु कम्प्यूटर में निर्देशों जिन्हें प्रोग्राम या कार्यक्रम के रूप में जाना जाता है को संग्रहीत और कार्य करने की क्षमता के कारण उससे अगल भी है और विकसित भी।

यह कहना तो बहुत मुश्किल है कि आरंभिक कम्प्यूटर किसे कहा जाए, क्योंकि कम्प्यूटर की अवधारणा में समय–समय पर बदलाव आता रहा है। आरंभ में उस व्यक्ति को कम्प्यूटर कहा जाता था जो मेकैनिकल गणना की मशीन से गणना किया करता था। यह एक प्रकार का मानव कम्प्यूटर था। आधुनिक कम्प्यूटर का इतिहास दो पृथक प्रौद्योगिकियों से आरंभ हुआ। मसलन स्वयं संचालित गणना और कार्यक्रमबद्धता (प्रोग्रामिंग)।

20वीं शताब्दी के दौरान कई प्रकार के कम्प्यूटर बनाए गए जो गणना के लिए मेकैनिकल या इलेक्ट्रिकल संसाधनों का इस्तेमाल करते थे परंतु आधुनिक कम्प्यूटरों का इस्तेमाल डिजिटल कम्प्यूटरों के आने से हुआ। डिजिटल इलेक्ट्रोनिक कम्प्यूटर का आविष्कार 1937 में काउडेन शैनन ने किया और इसे पहला डिजिटल इलेक्ट्रोनिक कम्प्यूटर कहा जा सकता है, परंतु आधुनिक परिभाषा में इन्हें कम्प्यूटर कहना मुश्किल है, क्योंकि आज के कम्प्यूटर मुख्य रूप से प्रोग्राम पर आधारित होते हैं जिसमें कई प्रकार के निर्देश भरे होते हैं। कम्प्यूटर में एक मेमोरी होती है और इसी मेमोरी में कम्प्यूटर का प्रोग्राम भरा रहता है। जैसे मनुष्य एक पुस्तक पढ़ता है और उसके मस्तिष्क में बातें समाती चली जाती हैं कम्प्यूटर भी वही काम करता है लेकिन कम्प्यूटर एक साथ अपने प्रोग्राम के तहत कई कार्य कर सकता है। कम्प्यूटर चूँकि एक प्रोग्राम से लैस रहता है इसलिए वह उन्ही निर्देशों का पालन करता है जो निर्देश उसमें रहते हैं। इसकी दो मूलभूत विशिष्टताएँ होती हैं :

- यह विशेष रूप से तय निर्देशों का सुपरिभाषित तरीके से पालन करता है।
- यह एक तयशुदा कार्यक्रमों के तहत काम करता है।

दूसरे शब्दों में तकनीकी रूप से कहें तो कम्प्यूटर एक कार्यक्रमशुदा (प्रोग्रामेबल) मशीन है जो कार्यक्रमशुदा निर्देशों का क्रियान्वयन कर सकता है और इसमें डाले गए नए कार्यक्रमों पर भी काम कर सकता है। हालांकि आमतौर पर आज डेस्कटॉप कम्प्यूटर को ही कम्प्यूटर के रूप में देखा जाता है जिसमें मॉनिटर, की–बोर्ड और माउस भी होते हैं। इन्हें ही आज समग्र रूप से कम्प्यूटर के रूप में देखा जाता है।

16.2.2 कम्प्यूटर के प्रकार

कम्प्यूटर कई प्रकार के होते हैं। आकार और शक्ति के आधार पर कम्प्यूटर को निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

- **पर्सनल कम्प्यूटर (पीसी)**

माइक्रो प्रोसेसर पर आधारित छोटे आकार के कम्प्यूटर को पीसी कहते हैं। घरों में जो कम्प्यूटर आप देखते हैं वह पी.सी. ही है। इसमें माइक्रो प्रोसेसर के अलावा एक की–बोर्ड, मॉनिटर और सीपीयू के रूप में स्टोरेज डिवाइस होती है। इसमें आप प्रिन्टर, वेबकैमरा, माइक, स्पीकर आदि लगा सकते हैं ताकि इसे आप मल्टीमीडिया के रूप में इस्तेमाल कर सकें और जो कुछ आप कम्प्यूटर पर लिखते हैं उसका मुद्रण भी कर सकें। आप इसमें स्कैनर भी लगा सकते हैं। इसमें आप किसी दस्तावेज को स्कैन कर अपने कम्प्यूटर में रख सकते हैं और इंटरनेट के द्वारा किसी दूसरे को भेज भी सकते हैं।

- **वर्क स्टेशन**

यह भी एक व्यक्तिगत कम्प्यूटर है जो पीसी की तरह ही काम करता है पर इसमें

शक्तिशाली माइक्रो प्रोसेसर और उच्च गुणवत्ता वाला मॉनिटर लगा होता है। यह भी सिंगल यूजर कम्प्यूटर है, यानी एक समय में एक ही व्यक्ति इस पर कार्य कर सकता है।

- **मिनी कम्प्यूटर**

यह मल्टीयूजर कम्प्यूटर है जिस पर 10 से लेकर सैकड़ों लोग एक साथ काम कर सकते हैं।

- **सुपर कम्प्यूटर**

यह अति तीव्र गति वाला कम्प्यूटर है जो प्रति सेकेन्ड लाखों निर्देशों के अनुरूप एक साथ काम करता है।

16.2.3 कम्प्यूटर के अंग

किसी भी प्रकार और आकार के कम्प्यूटर के दो प्रमुख अंग होते हैं: हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर।

कम्प्यूटर हार्डवेयर

इसके निम्नलिखित हिस्से होते हैं :

- **मेमोरी**

हरेक कम्प्यूटर में एक मेमोरी होती है। इसमें आंकड़ों और प्रोग्राम को संग्रहीत किया जाता है। यह एक प्रकार मास स्टोरेज डिवाइस है। यह सी. पी.यू. में स्थापित होता है जिसमें आंकड़े संग्रहीत होते हैं।

- **इनपुट डिवाइस**

की-बोर्ड, ट्रैक बॉल, ज्वाय स्टीक, गेम, पैड, गेम कंट्रोलर, इमेज स्कैनर, वेब कैम, माइकोफोन और माउस इनपुट डिवाइस हैं जिसके द्वारा आंकड़ों और निर्देशों को कम्प्यूटर में डाला जाता है।

- **आउटपुट डिवाइस**

कम्प्यूटर का स्कीन और अन्य माध्यम जैसे प्रिन्टर, स्पीकर, हैडसेट आदि जिसके द्वारा आप देख और सुन सकते हैं कि कम्प्यूटर क्या कर रहा है उसे आउअपुट डिवाइस कहते हैं।

- **सेन्ट्रल प्रोसेसिंग यूनिट (सी.पी.यू.)**

यह कम्प्यूटर का हृदय और मस्तिष्क है जिसके कई हिस्से होते हैं जिन्हें कुल मिलाकर मदर बोर्ड कहते हैं। मदर बोर्ड कम्प्यूटर का हृदय होता है। इसमें शामिल होते हैं : सी. पी.यू., कम्प्यूटर फैन, रैन्डम एक्सेस मेमोरी (RAM), रीड ओनली मेमोरी (ROM)। इसमें एक कन्ट्रोलर होता है जिसमें पैरेलल पोर्ट, सीरियल पोर्ट, यूएसबी लगा होता है। पावर सप्लाई के लिए इसमें एक ट्रांसफॉरमर भी लगा होता है। इसके अलावा इसमें एक स्टोरेज कन्ट्रोलर, वीडियो रोम ड्राइव, डी.वी.डी. राइटर, सीडी राइटर, डीवीडी रोम ड्राइव, यूएसबी प्लैश ड्राइव, कार्ड, मॉडेम, नेटवर्क कार्ड आदि लगे होते हैं।

कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर

कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर एक सामान्य शब्दावली है जिसके तहत कम्प्यूटर के सभी प्रोग्राम, प्रविधियाँ और दस्तावेजीकरण शामिल होता है। सॉफ्टवेयर शब्द का इस्तेमाल सबसे पहले जॉन डब्ल्यू टकी ने 1958 में किया था। कम्प्यूटर विज्ञान और सॉफ्टवेयर इंजीनियरिंग में सभी कम्प्यूटर कार्यक्रमों (प्रोग्राम) को सॉफ्टवेयर कहा जाता है। सॉफ्टवेयर को तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रणाली यानी सिस्टम सॉफ्टवेयर, कार्यक्रम यानी प्रोग्रामिंग सॉफ्टवेयर, और अनुप्रयोग यानी एप्लीकेशन सॉफ्टवेयर। हालांकि यह विभाजन बहुत बारीक है और अक्सर ये एक दूसरे में घुल–मिल जाते हैं।

सिस्टम सॉफ्टवेयर

कम्प्यूटर हार्डवेयर और कम्प्यूटर प्रणाली को चलाने में सिस्टम सॉफ्टवेयर सहायक होते हैं। इसमें ऑपरेटिंग सिस्टम, डिवाइस ड्राइवर, डायगनोस्टिक टूल्स, सर्वर, विन्डोइंग सिस्टम आदि शामिल होते हैं। सिस्टम सॉफ्टवेयर का उद्देश्य कम्प्यूटर को बेहतर ढंग से संचालित करना होता है और यह मेमोरी और अन्य हार्डवेयर विशिष्टताओं और कम्प्यूटर से जुड़ी अन्य प्रणालियों जैसे प्रिंटर, की–बोर्ड आदि को संचालित करने में मदद करता है।

- प्रोग्रामिंग सॉफ्टवेयर के जरिए आमतौर पर प्रोग्रामर कम्प्यूटर प्रोग्राम लिखता है और कम्प्यूटर के लिए प्रोग्रामिंग लैंग्वेज तैयार करता है मसलन टेक्स्ट एडीटर एक प्रोग्रामिंग सॉफ्टवेयर है। इससे कार्यक्रम को बनाने और उसे व्याख्यायित करने में मदद मिलती है।

- एप्लीकेशन सॉफ्टवेयर के द्वारा कई विशिष्ट कार्य किए जाते हैं मसलन बिजनेस सॉफ्टवेयर, शैक्षिक सॉफ्टवेयर, मेडिकल सॉफ्टवेयर, डाटा बेस और कम्प्यूटर का खेल। व्यवसाय और व्यापार में संभवतः एप्लीकेशन सॉफ्टवेयर का सबसे ज्यादा इस्तेमाल होता है, परंतु अब लगभग हर व्यक्ति किसी न किसी एप्लीकेशन सॉफ्टवेयर का प्रयोग करता है।

कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर कम्प्यूटर के हार्ड ड्राइव में अवस्थित होता है। एक बार हार्ड वेयर में डाले जाने के बाद कम्प्यूटर काम करने लगता है। यह कम्प्यूटर में डाले गए कार्यक्रम यानी प्रोग्राम के अनुसार कार्य करता है। सिस्टम सॉफ्टवेयर के जरिए एप्लीकेशन सॉफ्टवेयर हार्डवेयर को निर्देश देता है जो अन्ततः मशीन कोड के रूप में निर्देश प्राप्त करता है। इसके बाद कम्प्यूटर पर दिए गए निर्देशों का पालन होता है। उदाहरण के रूप में जब आप कम्प्यूटर में दिए गए मेन्यू से कॉपी पर जाकर सलेक्ट करते हैं तो यह हार्ड डिस्क में निर्देश देता है कि इस चीज को कॉपी करना है और दूसरे फाइल में जाकर जब आप पेस्ट करते हैं तो यह फिर निर्देश जाता है कि जिसकी कॉपी की गई उसको उस फाइल में पेस्ट कर दी जाए। व्यावसायिक जरूरतों के अनुसार एप्लीकेशन सॉफ्टवेयर अलग–अलग होते हैं जैसे रेलवे अपना सॉफ्टवेयर बनाता है, बैंक अपनी कार्यप्रणाली के अनुसार सॉफ्टवेयर तैयार करवाता है। निजी तौर पर कार्य करने वाला व्यक्ति अपनी उपयोगिता के अनुसार सॉफ्टवेयर लगवाता है।

16.3 कम्प्यूटर का संचालन

कम्प्यूटर पर बुनियादी तौर पर लेखन, दस्तावेजीकरण (डाटा एंट्री) , स्लाइड आदि बनाने जैसे काम किए जाते हैं। मुख्य तौर पर ये कार्य वर्ड, एक्सेल और पावर प्वाइंट पर किए जाते हैं। इसके अलावा कम्प्यूटर पर काम करने की अनन्त संभावनाएँ हैं जिसमें मुद्रण से लेकर तमाम तरह की प्रौद्योगिकियों के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है। यहाँ हम मुख्य रूप से वर्ड, एक्सेल तथा पावर प्वाइंट से संबंधित आधारभूत बातों की जानकारी दे रहे हैं।

- **वर्ड :**

इसमें हम टेक्स्ट एंट्री (टंकण) फॉरमेटिंग, वर्तनी सुधार और लेखन संबंधी सभी कार्य करते हैं। 'माइक्रोसॉफ्ट वर्ड' वर्ड प्रोसेसिंग सॉफ्टवेयर पैकेज है। इसका इस्तेमाल पत्र, रिपोर्ट और अन्य दस्तावेजों के टंकण के लिए किया जाता है। इसके लिए आप सबसे पहले माइक्रोसॉफ्ट वर्ड को क्लिक करें। क्लिक करते ही आपके कम्प्यूटर मॉनिटर पर वर्ड विन्डो खुलेगी, उसमें आप टंकण करना शुरू कीजिए। यदि आप हिन्दी में टंकण करना चाहते हैं तो विन्डो के ऊपरी हिस्से में बने फॉन्ट पर अपना कर्सर ले जाइए और उसमें हिन्दी फॉन्ट को सलेक्ट कर टंकण करना शुरू कीजिए। आपके फाइल में हिन्दी के शब्द छपने शुरू हो जाएंगे। नया अनुच्छेद शुरू करने के लिए एन्टर की दबाइए। जब भी आपको वर्ड विन्डो बन्द करना हो तो विन्डो की बाईं ओर बने 'फाइल' मैन्यू को क्लिक कीजिए और उसमें नीचे जाकर Exit दबाइए। Exit दबाते ही आपके सामने लिखा आएगा Do you want to save ...... । यदि आपको अपने टंकण को सुरक्षित रखना हो तो आप yes पर क्लिक कीजिए।

यदि आप अपने इस टंकण को किसी नाम से सुरक्षित रखना चाहते हैं तो फाइल मे जाकर save as को क्लिक करें और उस फाइल को एक नाम दे दें। आप जब भी अपनी वर्ड विन्डो खोलेंगे तो वह फाइल आपके कम्प्यूटर की बाईं ओर नजर आएगी और आप उसे क्लिक करेंगे तो वह फाइल आपके मॉनिटर पर आ जाएगी। एक बात का ध्यान जरूर रखें कि बिना save किए वर्ड विन्डो को बंद न करें अन्यथा आपका सारा किया हुआ काम खत्म हो जाएगा और जब आप किसी फाइल को save करते हैं तो यह सी ड्राइव या डी ड्राइव में save होता है। सी ड्राइव के बदले आप डी ड्राइव में save करें क्योंकि यदि कम्प्यूटर के हार्ड वेयर में कोई खराबी होती है तो डी ड्राइव में रखी सामग्री सुरक्षित रहती है। वर्ड में काम करते समय आपको कई तकनीकी सुविधाएँ मिल जाती हैं यानी एक जगह की सामग्री कॉपी कर दूसरे जगह पर पेस्ट की जा सकती है। डिलिट करना, बुलेटिंग, नम्बरिंग, बोल्ड, आदि।

- **एक्सेल**

एक्सेल में मुख्य रूप से डाटा एंट्री, फॉरमेटिंग, गणितीय परिगणना और लेखा कार्य किया जाता है। माइक्रोसॉफ्ट एक्सेल विन्डो खोलने पर एक वर्कशीट आपके सामने आएगा जिसमें खाने बने होते हैं। इन खानों में ऊपरी हिस्से में ए बी सी डी लिखा होता है और बाईं तरफ ऊपर से नीचे तक 1 2 3 4 नम्बर लिखे होते हैं। इसमें आप टूल्स में जाकर अपेक्षित कार्य कर सकते हैं। विन्डो के ऊपर बने Help में जाकर भी काम करना सीख सकते हैं। इसमें भी कम्प्यूटर बन्द करने से पहले ये सुझाव दिया जाता है कि आप अपने फाइल को Save जरूर कर लें।

पावर प्वाइंट

पावर प्वाइंट पर आधारभूत रूप से स्लाइड बनाने और प्रदर्शित किए जाने का कार्य किया जाता है। पावर प्वाइंट में आप अपने दस्तावेजों को स्लाइड के रूप में निर्मित कर इसे आप फ्लॉपी, सीडी या पेन ड्राइव में Save करके अपनी प्रस्तुति को कहीं भी कम्प्यूटर के माध्यम से प्रस्तुत कर सकते हैं।

मइक्रोसॉफ्ट पावर प्वाइंट पर क्लिक करते ही एक खिड़की खुलेगी जिसके ऊपर एक बॉक्स बना रहेगा जिसमें लिखा होगा क्लिक टू ऐड टाइटल इस पर आप अपनी प्रस्तुति को टंकित कर सकते हैं। इसमें आप चित्र, ग्राफ, चार्ट आदि भी सम्मिलित कर सकते हैं। इसमें आप अपने प्रस्तुतीकरण को प्रभावित कर सकते हैं।

कम्प्यूटर को खोलना और बंद करना

1) पावर ऑन करें
2) सी पी यू को चलाएँ
3) स्टार्ट बटन को क्लिक करें
4) प्रोग्राम को क्लिक करें
5) माइक्रोसौफ्ट ऑफिस पर प्वाइंटर ले जाएं और वर्ड, एक्सेल या पावर प्वाइंट (जिसमें आपको काम करना है) को क्लिक करें।
6) काम कर लेने के बाद इसे save कर लें।
7) स्टार्ट मेन्यू को क्लिक करें।
8) टर्न ऑफ को क्लिक करें।
9) नए उभरे बॉक्स में बनें टर्न ऑफ को क्लिक करें।
10) मॉनिटर के अपने आप ऑफ होने के बाद पावर ऑफ कर दें।
11) कभी भी कम्प्यूटर को एकबारगी बंद न कीजिए। इससे आपके कम्प्यूटर को नुकसान पहुंच सकता है।

16.4 कम्प्यूटर पर आधारित अन्य प्रौद्योगिकियाँ

प्रौद्योगिकी का कोई भी क्षेत्र अब ऐसा नहीं रह गया है जो कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी से अछूता हो। यह कहना अतिश्योक्ति न होगी कि अब सारे के सारे उद्योग और उससे जुड़ी प्रौद्योगिकी कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी पर आधारित हो गए हैं। जैसे कि ऊपर चर्चा हो चुकी है कि आधुनिक कम्प्यूटर इलेक्ट्रोनिक और डिजिटल मशीन है जिसमें विशेष रूप से निर्धारित निर्देशों को डाला जाता है और यह मशीन इन निर्देशों का तदनुरूप पालन करती है। अब यही इलेक्ट्रोनिक और डिजिटल कम्प्यूटर सभी प्रौद्योगिकियों का आधार हो गया है।

सूचना प्रौद्योगिकी, मुद्रण प्रौद्योगिकी, फिल्म प्रौद्योगिकी, संगीत प्रौद्योगिकी, कृषि, डिजाइन, ग्राफिक्स, कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं बचा है जो कम्प्यूटेशनल तकनीक से संचालित न हो। रोबोट और रॉकेट तकनीक भी कम्प्यूटेशनल तकनीक से ही काम करता है। शिक्षा, चिकित्सा और सेवा उद्योगों में भी कम्प्यूटर तकनीक के प्रयोग से मूलभूत और अभूतपूर्व

परिवर्तन आया है। अब मुद्रण प्रौद्योगिकी को ही लें। इसका स्वरूप अब इतना आसान और तीव्र हो गया है कि मुद्रण अब एक आसान सा कार्य नजर आता है। अब वह बीते समय की बात लगती है जब टाइप सेटिंग करके फर्मे को मशीन पर चढ़ाया जाता था और तब मुद्रण होता था। अब तो कम्प्यूटर पर कम्पोजिंग होती है और कम्प्यूटर द्वारा संचालित मशीनों पर छपाई होती है। छोटे–मोटे कार्य तो सीधे कम्प्यूटर से ही मुद्रित हो सकते हैं। फिल्मों में जो हम एनीमेशन या कार्टून फिल्में देखते हैं या लड़ाइयों के दृश्य वे सब कम्प्यूटर द्वारा ही संसाधित होते हैं। जुरासिक पार्क इसका ज्वलंत उदाहरण है। घरेलू उपयोग में आने वाले सामान भी अब कम्प्यूटर से ही परिचालित होते हैं। फोटोग्राफी के क्षेत्र में तो अब इसमें आमूल बदलाव आ गया है और डिजिटल फोटोग्राफी ने इसे आसान भी बना दिया है और सुलभ भी। कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी के उपयोग के कारण डिजिटल मल्टीमीडिया तकनीक, इमेजिंग तकनीक आदि का विकास हुआ है। कम्प्यूटर के आगमन से सूचना प्रौद्योगिकी का तो स्वरूप ही बदल गया है। अब सूचनाएं पलभर में पूरे संसार में फैल जाती हैं। इन्टरनेट के आगमन से इसमें और भी वृद्धि हुई है। अगली इकाई में इन्टरनेट के बारे में विस्तार से जानकारी दी जाएगी।

16.5 सारांश

इस इकाई में आपने कम्प्यूटर और अन्य प्रौद्योगिकियों की जानकारी प्राप्त की। आमतौर पर कम्प्यूटर से हमारा तात्पर्य सी.पी.यू., मॉनिटर और 'की बोर्ड' से होता है, परंतु यह कम्प्यूटर का ऊपरी आवरण है। कम्प्यूटर का तात्पर्य एक ऐसी मशीन से होता है जिसमें पहले से निर्धारित प्रोग्राम और निर्देश भरे होते हैं और उसी के अनुरूप कम्प्यूटर काम करता है। इसीलिए कम्प्यूटर का अर्थ समय–समय पर बदलता रहा है। पहले जो आदमी एक खास प्रकार के मशीन पर कम्पुटिंग का काम करता था उसे ही कम्प्यूटर कहा जाता था। उसके बाद ऐसे कम्प्यूटरों का निर्माण हुआ जिसका आकार एक कमरे के बराबर था। आज कम्प्यूटर का परिष्कार हो गया है और आज यह एक छोटी घड़ी में भी समा सकता है। कम्प्यूटर का आधार है –स्वयं संचालित गणना और कार्यक्रमबद्धता (प्रोग्रामिंग)। डिजिटल युग के आगमन के बाद अत्याधुनिक कम्प्यूटरों का आविष्कार हुआ। यह कहा जा सकता है कि कम्प्यूटर एक प्रोग्रामयुक्त मशीन है जो तदनुसार निर्देशों का कियान्वयन करता है।

आपने इस इकाई में कम्प्यूटर के अनेक प्रकारों की जानकारी प्राप्त की जैसेः पर्सनल कम्प्यूटर, वर्क स्टेशन, मिनी कम्प्यूटर और सुपर कम्प्यूटर।

कम्प्यूटर के दो प्रमुख अंग होते हैं हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर। हार्डवेयर में कम्प्यूटर की मेमोरी, इनपुट डिवाइस आदि शामिल होते हैं, जिनके अनुसार कम्प्यूटर काम करता है। सॉफ्टवेयर के भी कई प्रकार होते हैं जैसे– सिस्टम सॉफ्टवेयर, प्रोग्रामिंग सॉफ्टवेयर और एप्लीकेशन सॉफ्टवेयर।

बुनियादी तौर पर कम्प्यूटर में वर्ड, पावर प्वाइंट और एक्सेल पर काम किया जाता है। वर्ड में जहाँ टंकण का काम होता है वहीं एक्सेल में गणितीय परिगणना और लेखा कार्य किया जाता है तथा पावर प्वाइंट में स्लाइड का निर्माण किया जाता है।

कम्प्यूटर को खोलते और बंद करते समय एक तयशुदा प्रक्रिया अपनानी पड़ती है और

हमेशा कम्प्यूटर को खोलते और बंद करते समय इसका ध्यान रखना चाहिए।

दुनिया भर की तमाम प्रौद्योगिकियां अब कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी पर आधारित हैं। आधुनिक इलेक्ट्रोनिक और डिजिटल कम्प्यूटर का उपयोग सूचना, मुद्रण, फिल्म निर्माण, संगीत, रॉकेट निर्माण, खिलौनों, टेलीफोन, शिक्षा, चिकित्सा और सेवा उद्योगों में भी हो रहा है। कम्प्यूटर तकनीक ने प्रौद्योगिकी को डिजिटल बना दिया है और इससे इन प्रौद्योगिकियों में आधारभूत परिवर्तन आ गया है। इससे इन प्रौद्योगिकियों का परिष्कार तो हुआ ही है ये संचालन में भी काफी आसान हो गए हैं। यह कहना अतिश्योक्ति न होगी कि आज का युग कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी का युग है।

16.6 शब्दावली

Active program or window : ऐक्टिव प्रोग्राम या विन्डो उसे कहते हैं जो कम्प्यूटर पर काम करते वक्त मॉनीटर पर दिखाई पड़ता है।

Alert (alert box) : जब भी कम्प्यूटर पर काम करते वक्त कोई गलत कार्य हो जाता है, तो आमतौर पर कम्प्यूटर आपको चेतावनी देता है।

Backup : किसी भी फाइल या सामग्री को दो स्थानों पर संगृहीत करना।

Boot : कम्प्यूटर खोलना।

CD : कॉम्पैक्ट डिस्क (Compact Disc)का संक्षिप्त नाम।

CD-ROM : कॉम्पैक्ट डिस्क रीड ओनली मेमोरी (Compact Disc Read-Only Memory) का संक्षिप्त नाम।

Command : मेन्यू में जाकर या की (कुंजी पटल) के द्वारा कम्प्यूटर को निर्देश देना।

Control panel : ऐसा कार्यक्रम जिसके द्वारा आप अपने कार्यक्रम की रूपरेखा और स्वरूप में बदलाव लाते हैं। इसमें जाकर हार्डवेयर या सॉफ्टवेयर को कम्प्यूटर में डाला या हटाया जाता है।

CPU : सेन्ट्रल प्रोसेसिंग यूनिट (Central Processing Unit) एक प्रोसैसिंग चिप है जिसे कम्प्यूटर का मस्तिष्क कहा जाता है।

Cursor : कर्सर एक तरह का प्वाइंटर यानी एक सूचक होता है जो आमतौर पर तीर के निशान के जैसा दिखता है और जिसे माउस द्वारा नियंत्रित किया जाता है।

Database : सूचना की इलेक्ट्रोनिक सूची जिसे संगृहीत किया जा सकता है और ढूँढा भी जा सकता है।

Dialog box : आप जब भी कम्प्यूटर पर कोई आदेश देते हैं तो कम्प्यूटर स्क्रीन पर एक संवाद / संदेश बॉक्स उभरता है इसे ही डायलॉग

		बॉक्स कहते हैं। यह आपसे पूछता है कि आगे क्या करना है।
Document	:	आप काम करते समय जो फाइल बनाते हैं उसे डाक्यूमेंट कहते हैं।
Download	:	एक कम्प्यूटर से दूसरे कम्प्यूटर में हुए डाटा को प्राप्त करने की प्रक्रिया को डाउनलोडिंग कहते हैं (यदि आप उसे भेजते हैं तो उसे अपलोडिंग कहते हैं)।
Drag	:	जब आप माउस की बाईं ओर क्लिक करके उसे कम्प्यूटर पर चलाते (घसीटते) हैं तो उसे ड्रैग करना कहते हैं ।
File	:	यह अनुप्रयोग (एप्लीकेशन), डाक्यूमेंट, कंट्रोल पैनल या कम्प्यूटर के दूसरे प्रकार के डाटा के लिए एक सामान्य शब्द है।
Floppy	:	फ्लॉपी दस्तावेज संग्रहित करने का एक डिस्क है।
Folder	:	यह कम्प्यूटर की एक इलेक्ट्रोनिक डायरेक्टरी है जिसमें फाइल रहती है।
Font	:	कम्प्यूटर पर छपने वाले अक्षरों का आकार
Freeze	:	कम्प्यूटर में गड़बड़ी आने से जब कर्सर एक जगह पर अंटक जाए तो उसे फ्रीज़ होना कहते हैं।
Highlight	:	किसी डाक्यूमेंट में क्लिक करके किसी लाइन को सलेक्ट करने को हाइलाइट कहते हैं।
Icon	:	किसी फाइल या फोल्डर का प्रतीक चिह्न।
MB	:	मेगाबाइट का संक्षिप्त नाम।
Menu	:	विषयानुसार प्रोग्राम कमांड की सूची।
Paste	:	किसी एक फाइल से टेक्स्ट या अन्य सामग्रियों को अन्य फाइल में डालना।
Save	:	किसी फाइल में सामग्री को सुरक्षित करना।
UPS	:	Uninterruptible Power Source का संक्षिप्त नाम।

16.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कम्प्यूटर को परिभाषित कीजिए (पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए)।
2. कम्प्यूटर की कार्यप्रणाली का उल्लेख कीजिए (दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए)।
3. कम्प्यूटर के विभिन्न प्रकारों की चर्चा कीजिए (पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए)।
4. वर्ड, एक्सेल और पावर प्वाइंट की विशेषताएँ बताएँ (पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए)।

5. बताई गई विधि के अनुसार कम्प्यूटर को खोलिए और बंद कीजिए।

6. माइक्रोसॉफ्ट वर्ड खोलिए और उस पर एक पृष्ठ टंकण कीजिए ।

7. निम्नलिखित कार्य कीजिए

लिखी हुई सामग्री को

(क) सलेक्ट कीजिए

(ख) कॉपी कीजिए

(ग) दूसरी फाइल में पेस्ट कीजिए

☐

इकाई संख्या– 17 इन्टरनेट का उपयोग

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 इन्टरनेट का परिचय

17.3 इन्टरनेट का महत्त्व

17.4 इन्टरनेट का उपयोग

17.4.1 ई–मेल

17.4.2 ब्राउजिंग

17.4.3 दूर तक पहुँच

17.4.4 इन्टरनेट के खतरे

17.5 इन्टरनेट और हिंदी

17.6 सारांश

17.7 शब्दावली

17.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

17.0 उद्देश्य

यह इकाई इन्टरनेट के उपयोग के व्यावहारिक पक्ष पर केंद्रित है । इसे पढ़ने के बाद आप :

- इन्टरनेट का परिचय प्रस्तुत कर सकेंगे।
- इन्टरनेट के महत्त्व को रेखांकित कर सकेंगे।
- इन्टरनेट के व्यापक फैलाव को उद्घाटित कर सकेंगे।
- इन्टरनेट की उपयोगिता को व्याख्यायित कर सकेंगे।
- इन्टरनेट का उपयोग करना सीख सकेंगे, और
- इन्टरनेट पर हिंदी की विभिन्न वेबसाइट्स को ढूँढने और उनसे मनचाही जानकारी प्राप्त करने की विधि सीख सकेंगे

17.1 प्रस्तावना

इस इकाई में इन्टरनेट के उपयोग के विभिन्न पक्षों की जानकारी दी जा रही है। आरंभ में 'इन्टरनेट का परिचय' शीर्षक के अंतर्गत इन्टरनेट के अर्थ, इतिहास, क्षेत्र, उपयोग की चर्चा की जाएगी। इसमें आप इन्टरनेट का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

इसके बाद 'इन्टरनेट का महत्त्व' के तहत सूचना, शिक्षा, ज्ञान , मनोरंजन आदि की दुनिया में आई क्रांति और पूरी दुनिया पर पड़ने वाले दूरगामी प्रभाव को जानने का प्रयास किया जाएगा और इसके असीम और विराट रूप का अवलोकन किया जा सकेगा।

'इन्टरनेट का उपयोग' मुख्य तौर पर ई–मेल, ब्राउजिंग, चैटिंग आदि के लिए किया जाता है जिसकी जानकारी इकाई के इस भाग में दी जाएगी। इन्टरनेट का उपयोग काफी आसान है बशर्ते कि आप इसे अपना दोस्त बना लें और इसे संचालित करने की सामान्य विधियों से परिचित हो लें। इकाई के इस अंश में आपको इन विधियों से भी रू–ब–रू कराया जाएगा।

'इन्टरनेट और हिंदी' हिस्से में हिंदी की वेबसाइट के परिचय के साथ–साथ हिंदी में पत्राचार करने की विधि भी बताई जाएगी।

इकाई के अंत में सारांश, शब्दावली, और अभ्यासार्थ प्रश्न दिए गए हैं। इकाई का अध्ययन करते समय कई ऐसे तकनीकी शब्द से वास्ता पड़ेगा जिन्हें जाने बगैर आगे बढ़ना मुश्किल होगा। ऐसे तकनीकी शब्दों को समझने के लिए 'शब्दावली' की मदद ली जा सकती है। 'अभ्यासार्थ प्रश्न' आपके कौशल को तराशने के लिए शामिल किए गए हैं अतः सुझाव है कि इन्हें अवश्य हल करें।

17.2 इन्टरनेट का परिचय

एक जमाना था जब हम ट्रेन में स्थान आरक्षित कराने के लिए घंटों पंक्ति में खड़े रहते थे और तब मिलता था हस्तलिखित टिकट । अब स्थिति बदल गई है। आज टिकट काउंटर पर कम्प्यूटर से टिकट निकलते देखना आम बात हो गई है। यही नहीं, अब आप एक ही स्थान से कहीं से कहीं का टिकट प्राप्त कर सकते हैं। यह इन्टरनेट का ही कमाल है।

असल में इन्टरनेट एक विश्वव्यापी नेटवर्क है जिसके जरिए दुनिया के सारे कम्प्यूटर एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। कम्प्यूटर टेलीफोन लाइन (डायल–अप), केबल टी.वी., लैंड लाइन ब्रॉड बैंड, सैटेलाइट के जरिए एक वेब सर्वर से जुड़ा होता है जो उसे वर्ल्ड वाइड वेब (www) से जोड़ता है। वर्ल्ड वाइड वेब (www) में जुड़े दस्तावेजों, छवियों, और अन्य स्त्रोतों का विशाल भंडार है जो हाइपरलिंक और यू.आर.एल. के मार्फत जुड़े होते हैं। ये हाइपरलिंक और यूआरएल एचटीटीपी {http} {हाइपरटेक्स्ट ट्रान्सफर प्रोटोकॉल} के जरिए कम्प्यूटर तक सूचना पहुँचाते हैं । अब तो वायरलेस इन्टरनेट कनेक्शन भी उपलब्ध है। इन्टरनेट की सुविधा प्रदान करने वाली कम्पनियों से वायरलेस इन्टरनेट कनेक्शन का कार्ड खरीदिए अपने लैपटॉप में लगाइए और अपनी सुविधानुसार कहीं भी इन्टरनेट का इस्तेमाल कीजिए। इतना ही नहीं अब तो मोबाइल फोन पर भी इन्टरनेट का इस्तेमाल किया जा सकता है।

इन्टरनेट की विकास–यात्रा कम दिलचस्प नहीं है। इसका जन्म सोवियत संघ और अमेरिका की प्रतिस्पर्धा की कोख से हुआ है। सोवियत संघ द्वारा स्पूतनिक छोड़ने के बाद अमेरिका ने अपनी बढ़त बनाए रखने के मकसद से 1958 में ARPA (एडवांस रिसर्च प्रोजेक्ट एजेन्सी) की स्थापना की जिसका उद्देश्य रडार नेटवर्क को और सशक्त तथा कारगर बनाना था। इस प्रयास में सन् 1969 में ARPANET का विकास हुआ

जो इन्टरनेट की पूर्वपीठिका बनी। यह पहली अंतर्राष्ट्रीय नेटवर्क सेवा थी। 1981 तक आते–आते यूरोप, अमेरिका, कनाडा, हाँगकाँग और ऑस्ट्रेलिया तक इसका विस्तार हो गया। इन्टरनेट शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम दिसम्बर 1974 में विन्टन कर्फ, योगेन दलाल और कार्ल सनशाइन ने अपने शोधपत्र में किया था। इसे पूरी तरह कार्यान्वित होने में आगे नौ वर्ष लगे। 1 जनवरी 1983 से ARPANET ने तकनीकी बढ़त हासिल की और 1985 में इसे कम्प्यूटर से जोड़ा गया। 1988–1989 में पहली बार इसे बाजार के लिए खोला गया। हालाँकि पिछले एक दशक से इन्टरनेट का आधार निर्मित था पर 1990 के दशक से इसका सार्वजनिक इस्तेमाल शुरू हुआ। 6 अगस्त 1991 को CERN ने फ्रांस और स्वीटजरलैंड के बीच वर्ल्ड वाइड वेब परियोजना की शुरूआत की। 1989 में इस वेब का आविष्कार अंग्रेज वैज्ञानिक टिम बर्नर्स ली ने किया था। अमेरिका और अन्य विकसित देशों में इसका उपयोग तीव्र गति से बढ़ा और अब पूरी दुनिया को अपनी मुट्ठी में कर लिया है। 30 सितंबर 2007 तक 1.244 बिलियन लोग इसका उपयोग करने लगे हैं।

इन्टरनेट सेवा के नियमन और कार्यान्वयन के लिए ICANN की (इन्टरनेट कॉरपोरेशन फौर असाइन्ड नेम्स ऐंड नंबर्स) की स्थापना की गई। इसका मुख्यालय कैलिफोर्निया में है।

17.3 इन्टरनेट का महत्त्व

इन्टरनेट से पूरी दुनिया में एक सूचना क्रांति आ गई है और इसने सम्पूर्ण विश्व को एक गांव में बदल दिया है। तात्पर्य यह कि सूचनाएं इतनी तीव्र गति से स्थानान्तरित होने लगी हैं कि दुनिया एक क्लिक की दूरी पर रह गई है। बस कम्प्यूटर का माउस क्लिक करने की देर है आपका संवाद मनोवांछित स्थान पर पहुंच जाएगा और आपको तत्काल इसकी सूचना भी मिल जाएगी। इसी प्रकार आप किसी भी विषय पर क्षण भर में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

इन्टरनेट के आगमन के बाद इसका प्रयोग करने वालों की दुनिया ही बदल गई है। जो इसका प्रयोग नहीं करते वे आज की दौड़ में कोसों पीछे छूट गए हैं। आज का युग सूचना–युग है और जो इन्टरनेट जुड़ा है उसके पास सूचनाएँ पल भर में पहुँच जाती है।

अब समाचार को ही ले लें। अब आपको समाचार जानने के लिए सुबह–सुबह अखबार आने का इन्तजार नहीं करना है। लगभग हर प्रमुख समाचार इन्टरनेट पर उपलब्ध है। इसी प्रकार इन्टरनेट पर रेडियो समाचार सुने जा सकते हैं और टेलीविजन द्वारा प्रसारित समाचार देखे जा सकते हैं। इतना ही नहीं इन्टरनेट पर प्रमुख पत्र–पत्रिकाएँ भी उपलब्ध हैं। तीव्र गति से समाचार प्राप्त करने के लिए टेलीविजन चैनल भी इन्टरनेट का इस्तेमाल करते हैं। म्यांमार के सैनिक शासन के खिलाफ हुए प्रदर्शन और प्रदर्शनकारियों पर हुए दमन की खबर इन्टरनेट के जरिए ही पूरी दुनिया में फैली। ध्यातव्य है कि शासन ने सभी समाचार माध्यमों पर सेंसर लगा दिया था, सारे टी.वी. चैनलों का प्रसारण पर रोक लगा दी थी और किसी भी विदेशी पत्रकार को वहां प्रवेश की इजाजत नहीं थी, तब वहाँ के स्थानीय लोगों ने इन्टरनेट और एसएमएस के जरिए समाचार चैनलों तक सचित्र खबरें पहुँचाई। पाकिस्तान में इमरजेंसी के दौरान भी ठीक ऐसा ही हुआ। अभी फिदेल कास्त्रो ने इस्तीफा दिया नहीं कि खबर पूरी दुनिया में फैल गई। समाचार भेजने के लिए संवाददाता भी इन्टरनेट का ही इस्तेमाल करते हैं।

इस प्रकार लोकतांत्रिक समाज में इन्टरनेट एक राजनैतिक औजार बन गया है। इतना ही नहीं, इससे सामाजिक संबंधों का एक नया अध्याय शुरू हो गया है। इसके जरिए शादी–विवाह होने लगे हैं और मित्रों की मंडली बनने लगी है।

इन्टरनेट का आगमन शिक्षा और ज्ञान के क्षेत्र में वरदान साबित हुआ है। यह एक विशाल ज्ञान–कोश है। यह एक विशाल पुस्तकालय है। इसकी सहायता से किसी भी विषय पर कोई भी जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

इन्टरनेट मनोरंजन का माध्यम भी है। कई वेबसाइटों पर टी.वी. के कार्यक्रम, सिनेमा आदि देखे जा सकते हैं, मनपसंद के गाने सुने जा सकते हैं, खेल खेल सकते हैं । इन्हें डाउनलोड भी किया जा सकता है।

वाणिज्य के क्षेत्र में भी इन्टरनेट का काफी प्रभाव पड़ा है। यह खरीद–बिक्री का तीव्र माध्यम हो गया है। अब घर बैठे ट्रेन, हवाई जहाज, सिनेमा आदि का टिकट खरीदा जा सकता है, होटल में आरक्षण कराया जा सकता है, बिना दुकान गए जरुरत के सामान खरीदे जा सकते हैं। इन्टरनेट के जरिए बैंक के एक खाते से दूसरे खाते में राशि स्थानान्तरित की जा सकती है।

17.4 इन्टरनेट का उपयोग

इन्टरनेट के महत्त्व के अंतर्गत चर्चा करते हुए हमने इसके उपयोगों का भी खुलासा किया। इस भाग में इन्टरनेट के उन उपयोगों का विस्तार से वर्णन किया जा रहा है। इन्टरनेट आदान–प्रदान का तीव्र वाहक है जिसके माध्यम से हम अपनी बात दूसरों तक पहुंचा सकते हैं, किसी भी प्रकार की सूचना प्राप्त कर सकते है । कैसे? आइए जानते हैं।

17.4.1 ई–मेल

ई–मेल इलेक्ट्रॉनिक मेल का संक्षिप्त और पुकारू नाम है। ई–मेल इलेक्ट्रॉनिक संचार प्रणलियों के द्वारा संदेश कम्पोज करने, भेजने और प्राप्त करने का साधन है। ई–मेल 'ई क्रांति' है, जिसके द्वारा संदेशों को भेजना और पाना पल भर की बात रह गई है। जो इन्टरनेट का इस्तेमाल करते हैं उनके लिए परम्परागत डाक व्यवस्था से चिट्ठी–पत्री भेजना और पाना अतीत की बात हो गई है। इतना ही नहीं इन्टरनेट से राखी के अवसर पर बहन भाई को राखी भेज सकती है और भाई बहन को उपहार भेज सकता है। ई–मेल से संदेश भेजना और पाना बहुत आसान है। आप अपने घर–दफ्तर से ही नहीं, बल्कि सफर करते हुए और कही से भी ई–मेल कर सकते हैं, बशर्ते कि आपके पास कम्प्यूटर और इन्टरनेट कनेक्शन हो। इस प्रकार ई–मेल के आगमन से समय और स्थान की पाबंदी हट गई है और व्यक्ति की जरूरत और सुविधा महत्त्वपूर्ण हो गई है। यह सदा आपके साथ रहने वाला आपका अपना डाकघर है।

इन्टरनेट का प्रयोग न करने वालों को यह सब अजूबा लग सकता है पर यह अजूबा नहीं है और इसका प्रयोग भी काफी आसान है।

आइए, जानते हैं कि इसका इस्तेमाल कैसे करते हैं।

सबसे पहले अपना एक ई–मेल एड्रेस (पता) बनाना पड़ता है। इसके लिए याहू (www.yahoo.com), हॉटमेल (www.hotmail.com), रेडिफ (www.rediffmail.com), जीमेल / गुगल (www.gmail.com/

www.google.com/ www.gmail.co.in), स्काइप (www.skype.com) आदि जैसे मेल डोमेन में निशुल्क पंजीकरण कराना होता है। जब आप अपने कम्प्यूटर पर बने e-internet explorer पर कर्सर ले जाकर माउस को क्लिक करेंगें तो आपके कम्प्यूटर स्क्रीन पर एक पृष्ठ खुलेगा जिसके ऊपरी हिस्से में लिखा होगा : Address इसके आगे ऐसा बॉक्स बना होगा जिसमें लिखा होगा 'e' इस बॉक्स में आप ऊपर बताए गए किसी पते को टाइप करें और की–बोर्ड पर एन्टर (Enter) दबाएँ या कम्प्यूटर के स्क्रीन पर बॉक्स के आगे बाहर लिखे go पर कर्सर ले जाकर माउस क्लिक करें। msn का वेब पेज खुलेगा। पृष्ठ की बाईं ओर ऊपर लिखा होगा hotmail. उसे क्लिक करें। आगे आप पंजीकरण के निर्देशों का पालन करते जाएं आपका पंजीकरण हो जाएगा। यदि आपने राजीव के नाम से पंजीकरण कराया है तो आपका पता होगाः

rajiv@hotmail.com

पासवर्ड

e http://www.msn.com/

पंजीकरण करते समय आपको अपना एक पासवर्ड भी बनाना होगा जब भी आप ई मेल करने के लिए अपना पता खोलेंगे तब आपको अपने इस पासवर्ड का उपयोग करना होगा। यदि संभव हो तो पासवर्ड को कहीं लिखें नहीं बल्कि उसे अपने मन में ही याद रखें और कोशिश करें कि पासवर्ड ऐसा हो जिसका कोई दूसरा व्यक्ति अंदाजा न लगा सके। आप अपना पासवर्ड समय–समय पर बदलते रहिए। इसके लिए आपको अपने एकाउंट में जाना होगा और वहाँ बताए गए निर्देशों के अनुसार आप अपना पासवर्ड बदल सकते हैं।

यदि आपको ई मेल के जरिए किसी को पत्र लिखना हो तो पहले अपने पते का पृष्ठ खोलिए और उसमें कम्पोज मेल में जाइए। जब आप कम्पोज मेल को क्लिक करेंगे तो उसमें एक पृष्ठ खुलेगा। अब आप T0 के सामने बने बॉक्स में उस व्यक्ति के ई मेल का पता लिखें जिसको संदेश भेजना है। उसके बाद उसके नीचे subject के सामने एक बॉक्स बना हुआ मिलेगा जिसमें संदेश का सार/शीर्षक लिखिए। T0 और subject के खाने के बीच में Add cc/ Add bcc लिखा हुआ है। cc का मतलब होता है कार्बन कॉपी और bcc का मतलब होता है ब्लाइंड कार्बन कॉपी। यदि आपको यह संदेश कई लोगों को भेजना है तो पहले cc को और यदि ज्यादा लोगों को भेजना है तो क्लिक करके उसमें बने खाने में सारे ई मेल के पते लिख दें। यदि आपको कोई फाइल भेजनी हो जैसे अपना कोई लेख, फोटो, कोई ऑडियो–वीडियो तो आप Attach a file को क्लिक करें और जिस फाइल को भेजना है उस फाइल में जाकर उसे डबल क्लिक करें। यह फाइल आपके पत्र के साथ संलग्न हो जाएगी और Attach a file के नीचे आपको पूरा विवरण मिल जाएगा कि कौन सी फाइल Attach हुई है। आप यह सब संदेश लिखने के बाद भी कर सकते हैं। अब आप नीचे संदेश लिखने वाले बड़े बॉक्स में चले आइए। वहाँ अपना संदेश लिखिए। संदेश बॉक्स के नीचे और सबसे ऊपर तीन बॉक्स बने हुए हैं &send, save now, discard।

यदि आप इस दस्तावेज को भेजने से पहले अपने कम्प्यूटर में save करना चाहते हैं तो save now पर कर्सर ले जाएं और उसे क्लिक करें। send को क्लिक करने के बाद

आपके पास संदेश आएगा messeges has been sent यानी आपका संदेश भेजा जा चुका है। आप इसे देख सकते हैं। इसके लिए आपको पुनः संदेश वाले पृष्ठ पर जाना होगा। वहाँ आपको पूरी सूचना मिल जाएगी। यदि आपने कोई पता गलत लिखा है तो तुरंत आपके बॉक्स में इसकी सूचना प्राप्त हो जाएगी। यदि आपको लगता है कि संदेश नही भेजना है तो discard पर क्लिक कर अपना संदेश खारिज भी कर सकते हैं।

जब आपका ई मेल पता कम्प्यूटर में होगा तो जैसे ही आप कम्प्यूटर खोलेंगे वैसे ही आपको यह सूचना मिल जाएगी कि आपके पास कोई संदेश आया है। इसके लिए आपको अपना मेल पेज खोलना पड़ेगा। उसकी विधि यह होगी कि आप अपना ई मेल पता टाइप करें और पासवर्ड की जगह पर पासवर्ड डालें और नीचे लिखे sign पद पर क्लिक करें। आपका डाक पृष्ठ खुल जाएगा और एक सूची सामने आएगी जिसमें पद इवग लिखा होगा। आप पद इवग को क्लिक करेंगे तो जितने भी संदेश आपके नाम पर आए हैं वे सभी कम्प्यूटर पर आपके सामने आ जाएँगे। अब आप संदेश पर क्लिक करके देख सकते हैं। जब आप अपना पृष्ठ खोलें तो आप देखेंगे कि कुछ ऐसे ई मेल भी हैं जिसे भेजने वाले को आप नहीं जानते। ऐसे ई मेल को न खोलें और इन्हें delete कर लें। delete का बॉक्स संदेश सूची के ऊपर बना हुआ है। आप जिन–जिन संदेशों को हटाना चाहते हैं उनकी बाईं ओर बने चौकोर बॉक्स में क्लिक करें क्लिक करते ही उसमें सही (v) का निशान बन जाएगा तब आप delete वाले बॉक्स को क्लिक कर दें वह संदेश आपके पते से हट जाएगा।

जब आपको कोई संदेश मिलता है तो आप उस संदेश को अपने कम्प्यूटर में डाउनलोड भी कर सकते हैं। संदेश के साथ यह लिखा मिलेगा कि आप इसे केवल पढ़ना चाहते हैं या डाउनलोड करना चाहते हैं तो आप उसी अनुरूप उस पर क्लिक करें या तो पढ़ें या डाउनलोड करें।

17.4.2 ब्राउजिंग

अभी हमने इन्टरनेट के एक महत्त्वपूर्ण उपयोग यानी संदेशों को भेजने और पाने की जानकारी प्राप्त की। अब हम इसके दूसरे उपयोगों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

इंटरनेट का एक और प्रमुख उपयोग है ब्राउजिंग यानी पृष्ठ उलटना। वर्ल्ड वाइड वेब (www) और इंटरनेट के अन्य स्त्रोतों को देखने या उनमें विचरण करने के लिए उपयोग में लाए जाने वाले तरीकों को ब्राउजिंग कहते हैं। इसके जरिए किसी भी वेबसाइट तक पहुँचा जा सकता है। इंटरनेट एक्सप्लोरर, फायर फॉक्स और नेट स्केप प्रमुख वेब ब्राउजर हैं। वेब दस्तावेजों में फोटोग्राफ्स, ग्राफिक्स, ध्वनि ,टेक्स्ट, वीडियो, मल्टी मीडिया, कई प्रकार के खेल, ऑफिस एप्लिकेशन यानी दफ्तर में कामकाज के अनुप्रयोग और वैज्ञानिक झलकियाँ शामिल होती हैं।

किसी भी वेब को ढूँढने के लिए सर्च इंजन भी मौजूद हैं। yahoo और Google सर्वाधिक लोकप्रिय सर्च इंजन है। लाखों लोग विविध, व्यापक और तीव्र सूचना ऑनलाइन पर प्राप्त करने के लिए इन सर्च इंजनों का इस्तेमाल करते हैं। इन्साइक्लोपीडिया यानी ज्ञानकोशों या परम्परागत पुस्तकालयों की तुलना में वर्ल्ड वाइड वेब त्वरित सूचना और आँकड़ा प्राप्त करने का बेहतर, सुविधाजनक और त्वरित माध्यम है।

वेब का इस्तेमाल करना बहुत आसान है। इंटरनेट एक्सप्लोरर को क्लिक कीजिए।

क्लिक करने के बाद एक पृष्ठ आपके सामने खुलेगा उसमें ऊपर Adress की जगह पर अपना मनोवांछित वेब पता टाइप कीजिए और की बोर्ड (key board) पर एन्टर (Enter) दबाइए आपको मनोवांछित वेब मिल जाएगा। यदि आपको उस वेबसाइट का पता नहीं मालूम है तो www.Google.co.in टंकित करके और एन्टर दबा कर Google के साइट पर पहुँचें और वहाँ बने बॉक्स में जिस विषय पर आप जानकारी प्राप्त करना चाहते है वह लिख दें। जैसे यदि आप हिन्दी के किसी कवि, रचनाकार, अथवा कृति पर सूचना प्राप्त करना चाहते हैं तो उसका नाम लिख दें और फिर Google search को क्लिक करें। Google search अंग्रेजी और दुनिया की तमाम भाषाओं के साथ–साथ हिन्दी, बंगला, तेलगु, मराठी और तमिल जैसी भारतीय भाषाओं में भी उपलब्ध है।

आजकल कई लोग और कई कम्पनियाँ या समूह वेब लॉग्स (web logs) या ब्लॉग्स (blogs) का भी उपयोग कर रहे हैं। यह एक प्रकार की ऑनलाइन चिट्ठी–पत्री है या फिर आप इसे दैनिक डायरी भी कह सकते हैं। हिन्दी में उपलब्ध blogs के बारे में आगे जानकारी दी जाएगी।

17.4.3 दूर तक पहुँच

अब आप यह जान चुके है कि इंटरनेट के द्वारा कम्प्यूटर के माध्यम से किसी भी अन्य कम्प्यूटर पर पहुँचा जा सकता है, आसानी से सूचना प्राप्त की जा सकती है और दी जा सकती है। इसके द्वारा कम लागत और तीव्रता से विचारों का आदान–प्रदान किया जा सकता है। यही नहीं इंटरनेट के द्वारा हम लिखकर या बोलकर अपनी बात एक दूसरे तक पहुँचा सकते हैं। इंटरनेट बींज आजकल बहुत ही आम बात हो गई है। इंटरनेट के द्वारा आप किसी से भी बींज कर सकते हैं। इसी प्रकार आप अपने साथी, सहकर्मी या किसी को भी अपने कम्प्यूटर की कोई भी फाइल ई मेल कर सकते हैं। कभी–कभी साझा उपयोग के लिए इस फाइल को किसी वेबसाइट पर अपलोड भी किया जा सकता है ताकि इसका उपयोग और लोग भी कर सकें। आजकल इंटरनेट पर विचारों और फाइलों को साझा करने का प्रचलन हो गया है।

जनसंचार माध्यम, खासकर रेडियो और टेलीविजन, इंटरनेट के माध्यम से अपने श्रोताओं और दर्शकों से संबंध स्थापित करते हैं। बीबीसी के वेबसाइट पर have your say के नाम से आप अपनी बात प्रसारणकर्ताओं तक पहुँचा सकते हैं। इसके अलावा Archive में जाकर पिछले दिनों के समाचार भी सुन और देख सकते हैं। इस प्रकार आपको खबर बार–बार सुनने का मौका मिल सकता है।

इसके अलावा आप अपने कम्प्यूटर पर इंटरनेट के जरिए गाने भी सुन सकते हैं, फिल्म भी देख सकते हैं और किसी किसी वेबसाइट से तो फिल्म और गाने डाउनलोड भी कर सकते हैं। you tube नामक वेबसाइट पर आप कई दृश्य–श्रव्य कार्यक्रम देख सकते हैं। इस प्रकार की वेबसाइटों की सूची अगले भाग में दी जाएगी।

कुछ ई मेल सेवा प्रदान करने वाली एजेंसियों के माध्यम से आप अपने इंटरनेट का इस्तेमाल टेलीफोन के रूप में भी कर सकते हैं और यदि आपके पास वेब कैमरा है तो आप एक दूसरे को देख भी सकते हैं। yahoo और skipe में आप बात भी कर सकते हैं और एक दूसरे को देख भी सकते हैं। वहीं Google में आप केवल लिखकर या बोलकर बात कर सकते हैं।

17.4.4 इंटरनेट के खतरे

इंटरनेट का उपयोग करते समय कई प्रकार की सावधानियाँ रखनी चाहिए। सबसे बड़ा खतरा तो यह है कि जो भी संदेश आप इंटरनेट के द्वारा भेजते हैं वह मुख्य सर्वर एजेंसी के खाते में सुरक्षित रहता है और आपके इस संदेश को कभी भी पढ़ा या सुना जा सकता है। इस पर आपका कोई वश नहीं है। यह इंटरनेट प्रदान करने वाली एजेंसियों पर निर्भर है कि वह कितनी ईमानदारी से काम करती है। लेकिन आपको जो सबसे बड़ी सावधानी रखनी है वह है spam यानी अनचाहे संदेश। आप इन्हें खोलते वक्त सचेत रहें क्योंकि इसके द्वारा आपके कम्प्यूटर में वायरस भेजा जा सकता है। इससे बचने के लिए आप अपने कम्प्यूटर में एन्टी वायरस सॉफ्टवेयर जरूर डलवाएँ और अनचाहे संदेशों को अपने कम्प्यूटर से हटा दें।

17.5 इन्टरनेट और हिंदी

इन्टरनेट का प्रयोग अब हिंदी में भी संभव है। इसके लिए आपके कम्प्यूटर में यूनिकोड हिंदी फौंट (शब्दावली) होना चाहिए। गुगल में जाकर जब आप यूनिकोड हिंदी फौंट लिखकर खोज करेंगे तो आपके सामने कई विकल्प होंगे। www.vazu.jp साइट पर जाकर यूनिकोड हिंदी फौंट डाउनलोड किया जा सकता है। इसके बाद आप किसी को भी हिंदी में संदेश भेज सकते हैं।

इन्टरनेट पर हिंदी के सैकड़ों वेब साइट और ब्लौग मौजूद हैं जिन पर आप खबरें सुन–देख सकते हैं, हिंदी गाने सुन सकते है, टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों को देख सकते है।

हिंदी में समाचार सुनने के लिए आकाशवाणी, बीबीसी और वॉयस ऑफ अमेरिका की साइट का उपयोग किया जा सकता है:

www.allindiaradio.org

www.newsonair.com

www.bbc.co.uk/hindi

www.voanews.com/hindi

मनोरंजन के लिए अन्य साइट

www.youtube.com

www.smashits.com

www.imbd.com

www.earthmusic.net

www.filmigeek.net

www.filmimusic.com

www.kaustubh.com

www.crimsonbay.com

www.maxtelevision.com

www.techsatish.com

हिन्दी में कई blogs भी उपलब्ध हैं। आप गूगल में जाकर blogs in hindi टाइप करें और सर्च पर क्लिक करें तो आपको बहुत सारे इसवहे नजर आएंगे। blogs पर व्यक्ति अपने निजी विचार रखता है। आप अपनी कविताएँ, रचनाएँ भी blogs में डाल सकते हैं। ब्लॉग्स बनाना बहुत ही आसान है। आप www. blogs.com में जाएँ और उसमें अपना नाम और पासवर्ड लिखें आपका अपना ब्लॉग तैयार हो जाएगा। अब आप इस पर कोई भी संदेश लिखकर अपलोड कर सकते हैं। इसके बाद इंटरनेट का प्रयोग करने वाला कोई भी व्यक्ति ब्लॉग्स खोलकर आपका विचार पढ़ सकता है और अपनी टिप्पणी दे सकता है।

17.6 सारांश

इस इकाई में हमने मुख्य रूप से इंटरनेट के उपयोग के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्षों का खुलासा किया है। इंटरनेट का उपयोग करने के लिए आपके पास एक मल्टीमीडिया कम्प्यूटर और इंटरनेट होना चाहिए। इन दोनों सुविधाओं के साथ आप किसी भी वेबसाइट पर जा सकते हैं और सूचना प्राप्त कर सकते हैं। यदि आप इंटरनेट से जुड़े व्यक्तियों को सूचना भेजना चाहते हैं या प्राप्त करना चाहते हैं तो आपको अपना इंटरनेट पता किसी ई मेल की सुविधा प्रदान करने वाली वेबसाइट पर अपना पंजीकरण कराना होता है जैसे गूगल, स्काइप, याहू आदि। आज इंटरनेट का प्रयोग काफी बढ़ गया है, लेकिन इंटरनेट का प्रयोग करते समय कुछ सावधानियाँ आपको रखनी होगी ताकि आपके कम्प्यूटर पर वायरस का आक्रमण न हो। आपको बार–बार कम्प्यूटर आगाह करेगा कि यह साइट सुरक्षित नहीं है इसलिए आप अपने विवेक से इंटरनेट पर आई सूचनाओं को देखने या न देखने का निर्णय लें। एक बार कम्प्यूटर में वायरस आ जाने पर आपकी फाइल प्रभावित हो सकती है और आपका कम्प्यूटर काम करना बंद कर सकता है। फिर कम्प्यूटर की नए सिरे से फॉरमेटिंग करानी होगी जिसमें आपके फाइल और आँकड़े नष्ट हो जाने का डर है इसलिए आप अपनी फाइल और आँकड़े लोकल डिस्क D में रखा करें और लोकल डिस्क C को सॉफ्टवेयर के लिए और हार्ड डिस्क डिवाइस के लिए छोड़ दें।

इंटरनेट के प्रयोग ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व क्रांति ला दी है सूचनाओं का आदान प्रदान इतनी तेजी से हो रहा है कि पूरा विश्व एक छोटे से गाँव में तब्दील हो गया है। आप क्षणभर में अपनी बात कहीं से कहीं पहुँचा सकते हैं। अपने किसी अजीज मित्र से बात कर सकते हैं, उन्हें देख सकते हैं। जब तक आप इंटरनेट का प्रयोग नहीं करेंगे तब तक इसका हौवा बना रहेगा, लेकिन जैसे ही इंटरनेट का प्रयोग करना शुरू करेंगे आपकी दिलचस्पी बढ़ेगी और खुद–ब–खुद इसमें कुशल और प्रवीण हो जाएँगे।

17.7 शब्दावली

ब्राउजर (Browser) : यह वर्ल्ड वाइड वेब (www) को देखने और खोजने का अनुप्रयोग हैं। इसी की सहायता से आप विभिन्न साइटों पर जाते हैं। बहु प्रचलित

ब्राउजर हैं : इंटरनेट एक्सप्रोरर, फायर फॉक्स और नेट स्केप।

कुकीज (Cookies) : जब आप किसी वेबासाइट को देखते हैं तो कुकीज में उसकी तिथि और दिन दर्ज हो जाता है।

सेन्ट्रल प्रोसेसिंग युनिट (CPU) : यह आपके कम्प्यूटर में लगा एक प्रोग्राम है जो कम्प्यूटर को कार्य करने का निर्देश देता है।

डोमेन नेम (Domain name) : यह एक ऐसा नाम है जब आप इंटरनेट का प्रयोग करने के लिए उपयोग करते हैं तो यह आपका इंटरनेट पता भी होता है। इंटरनेट का प्रयोग करने वाले इस डोमेन नेम का प्रयोग कर आपके वेबसाइट पर पहुँच सकते हैं।

डाउनलोड (Down load): जब इंटरनेट के द्वारा आप अपने कम्प्यूटर पर कोई फाइल और छवि कॉपी करते हैं तो उस प्रक्रिया को डाउनलोड कहा जाता है।

हाइपर टेक्स्ट मार्क लैंग्वेज (HTML) : इंटरनेट के द्वारा वर्ल्ड वाइड वेब के लिए प्रयुक्त सॉफ्टवेयर भाषा है। वर्ल्ड वाइड वेब पृष्ठों का निर्माण करने के लिए HTMLका प्रयोग किया जाता है।

हाइपर टेक्स्ट ट्रांसफर प्रोटोकॉल (HTTP) : यह एक ऐसा वास्तविक संचार प्रोटोकॉल है जिससे वेब ब्राउजिंग संभव हो पाती है।

इंटरनेट प्रोटोकॉल एड्रेस (IPAdressed) : यह इंटरनेट से जुड़े प्रत्येक कम्प्यूटर का एक पता होता है जिसे इंटरनेट प्रोटोकॉल एड्रेस कहते हैं।

मॉडेम (Modem) : यह मॉडुलेटर/डीमॉडयुलेटर का संक्षिप्त नाम है। यह एक ऐसा संचार साधन है जो एक प्रकार के सिग्नल को दूसरे प्रकार के सिग्नल में बदलता है और आपके कम्प्यूटर पर सूचना पहुँचाता है। इंटरनेट का प्रयोग करने वाले मुख्य रूप से केबल मॉडम/और ADCL मॉडेम का प्रयोग करते हैं।

ऑनलाइन (online) : कम्प्यूटर द्वारा जब हम इंटरनेट पर कोई काम करते हैं तो उसे ऑनलाइन कहा जाता है।

पोर्टेबल डॉक्युमेंट फॉरमेट (PDF) : यह एक ऐसा डॉक्युमेंट इनकोडिंग प्रक्रिया है जिसके द्वारा पेज लेआउट, फॉन्ट और ग्राफिक्स का संयोजन किया जाता है। इसके लिए आपके पास Acrobat Reader सॉफ्टवेयर होना चाहिए। इसके द्वारा आपकी फाइल को संक्षिप्त रूप से एक दूसरे के पास भेजा जा सकता है।

सर्वर (Server) : यह एक ऐसा कम्प्यूटर है जो नेटवर्क से जुड़ा होता है और आपकी भेजी हुई सूचना को दूसरे कम्प्यूटर से जोड़ता है।

अपलोड (Upload) : जब आप अपने कम्प्यूटर द्वारा किसी दूसरे कम्प्यूटर पर सूचना भेजते हैं तो उसे अपलोडिंग कहा जाता है।

यूनिफॉर्म रिसोर्स लोकेटर (URL): यह इंटरनेट के किसी स्त्रोत का पता होता है। वर्ल्ड वाइड वेब, यू आर एल, एच टी टी पी से शुरू होता है।

17.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) याहू, गुगल या स्काइप जैसे वेबसाइटों पर जाकर अपना पता रजिस्टर कराऐं।

(गुगल पर पंजीकरण कराने के लिए आप अपने ऐसे मित्र से सम्पर्क करें जिसके पास गुगल का कनेक्शन हो। वह आपको इनवाइट करेगा तब आपका पंजीकरण होगा। अन्य साइट पर सीधे पंजीकरण करा सकते हैं। यह निःशुल्क होता है)।

(2) अपना पता बनाने के बाद अपने किसी मित्र को इंटरनेट से पत्र लिखें और भेजें।

(3) अपने मेल में कोई फाइल Attach करें।

(4) इंटरनेट पर प्राप्त सूचनाओं को डाउनलोड करें। विभिन्न सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए विकिपीडिया (www.wikipedia.org/ यह एक ज्ञानकोष का वेबसाइट है) में जाएँ।

(5) हिन्दी के प्रमुख वेबसाइटों की खोज करें।

(6) हिन्दी के प्रमुख ब्लॉग्स की सूची बनाएँ।

(7) इंटरनेट के द्वारा हिन्दी के गाने और समाचार सुनें।

(8) अपने नाम से एक कम्प्यूटर ब्लॉग बनाएँ।

□